4000

STATE MUSEUM, LUCKNOW
LIBRARY
Acc. No.
Book No.

ब्रजभारती

ज्येष्ठ सं० २०२३ वि०

4000
18.2.71
Museum Library, Lucknow

सम्पादक :
वृन्दावनदास
बी० ए०, एल-एल० बी०

प्रकाशक :
किशन प्रसादजैन
संयुक्त प्रधान मन्त्री

अखिल भारतीय ब्रज साहित्य मंडल, मथुरा

वर्ष २०]

[अङ्क १

* अनुक्रमणिका *

क्रमांक	लेख	लेखक	पृष्ठांक
१—	आँखिमिचौनी (कविता)	पं० हृषीकेश चतुर्वेदी	१
२—	अपनी बात (संम्पादकीय)	श्री वृन्दावन दास	२
३—	परख (कविता)	श्री भगवान दत्त चतुर्वेदी	५
४—	भागवत्सार (कविता)	श्री रामगोपाल श्रोत्रिय "गुपाल"	६
५—	सत्यनारायण कविरत्न	श्री बनारसीदास चतुर्वेदी	८
६—	महाकवि सूरदास और मुरलीधर चतुर्वेद	श्री रामदत्त भारद्वाज	९
७—	शास्त्रो-श्रद्धाञ्जलि (कविता)	श्री कैलाशचन्द्र "कृष्ण"	१०
८—	कूबरी (ब्रजभाषा खण्ड काव्य)–एक समीक्षा	श्री कृष्णदत्त बाजपेयी	१२
९—	महाकवि सूर (कविता)	श्री गोविन्द चतुर्वेदी	१४
१०—	मथुरा के जैन स्तूप आदि सम्बन्धी एक अज्ञात रचना	श्री अगरचन्द नाहटा	१५
११—	ब्रजभाषा के केरलीय कवि "स्वाति तिरुनाल"	डा० आनन्दस्वरूप पाठक	१८
१२—	गुप्तकाल में भारतीय सभ्यता का चरमोत्कर्ष	श्री वृन्दावनदास	२५
१३—	राधा सरस्वती वन्दना (कविता)	महाकवि ग्वाल	३३
१४—	महाकवि ग्वाल का नीति परक काव्य	श्री भगवानसहाय पचौरी "भवेश"	३४
१५—	निम्बार्क सम्प्रदाय के सन्तों की साहित्य सेवा	ज्यो० राधेश्याय द्विवेदी	३८
१६—	पूंछरी कौ लौठा (समीक्षा)	पं० पद्मसिह शर्मा "कमलेश"	४४

ब्रजभारती

[अखिल भारतीय ब्रज-साहित्य-मण्डल की मुख-पत्रिका]

वर्ष २०] मथुरा ज्येष्ठ सं० २०२३ [अङ्क १

"आँखि-मिचौनी"

[रचयिता—श्री हृषीकेष चतुर्वेदी, आगरा]

हरि आज सखन-संग खेलत आँख-मिचौनी ।
जागे भाग नन्द-मन्दिर के, भई धन्य ब्रज-छौनी ।। हरि आजु० ।।
'श्रीदामा', 'सुबलादि' बाल बहु, लिये-बोलि 'बल'-भाई ।
'माखन-चोर', 'चोर' आपुहिं बन, 'धाई' जननि बनाई ।।हरि आजु०।।१।।
द्वार, कोट, द्वादस-दूरिन महँ दुरन-हेतु सब दौरें ।
घुसत पौरि, कोठी, कोठारन, अटा, कौन अरु कौरें ।।हरि आजु०।।२।।
" 'चोर' न बनें, 'चोर' के परसें", या भय सों दृग चोरें ।
अध, ऊरध भाजत बचि-बचि, पुनि धावत 'धाई'-धोरें ।।हरि आजु०।।३।।
'सुबल'-ब्याज मुरि-मुरारि, चुरि-चुरि 'श्रीदामहि' हेरें ।
ह्वै तिरछे तेहि तकि, औचक गहि, लाए जननी-नेरें ।।हरि आजु०।।४।।
अचरज-भरि, भोरें मोहन की लखि ऐसी चतुराई ।
"हृषीकेश" मन-मुदित जसोमति, बार-बार बलि जाई ।।हरि आजु०।।५।।

छौनी=भूमि । परसें=स्पर्श करने से । ब्याज=बहाना ।

◆

सम्पादकीय

अपनी बात

यह अङ्क सम्वत् २०२३ का प्रथम अङ्क है । सम्वत् २०२२ में हमारे सम्पादकत्व में ३ अङ्क निकले ही थे कि वर्ष पूरा हो गया । हमें हर्ष है कि अब ब्रज भारती नियमित रूप से निकल रही है । इस वर्ष में नियमित रूप से इस त्रैमासिक पत्रिका के चार अङ्क प्रकाशित होंगे ।

अभी हाल में उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा ६८ लेखकों को पुरस्कार घोषित हुए हैं । ये पुरस्कार हिन्दी, संस्कृत और उर्दू की पुस्तकों पर हैं । वितरित की गई धनराशि ५५ हजार ७५० रु० है । इन सब में विशेष उल्लेखनीय पुरस्कार डा० नगेन्द्र को उनके रस सिद्धांत नामक ग्रन्थ पर पाँच हजार रुपये का है । डा० नगेन्द्र इस पीढ़ी के उच्चातिउच्च साहित्यिक महारथियों में से हैं । सरकार ने डा० नगेन्द्र को सम्मानित कर वास्तव में हिन्दी जगत के प्रति अपने औचित्य का पालन किया है ।

इस अङ्क में हम अन्यत्र डा० शरण बिहारी गोस्वामी द्वारा लिखित पूंछरी कौ लौठा नामक ब्रज भाषा के उपन्यास की समीक्षा प्रकाशित कर रहे हैं । वास्तव में डाक्टर गोस्वामी का ब्रज भाषा में उपन्याय लिखने का कार्य एकदम सराहनीय है । हम तो चाहेंगे कि श्री गोस्वामी जी इसी प्रकार ब्रज भारती की सेवा करते रहें । ब्रज भाषा में प्रस्तुत किसी भी साहित्यिक कृति का तो हमें स्वागत ही करना है । ब्रज भाषा के पद्य में लिखने की प्रवृत्ति तो बहुत से साहित्यिकों में दृष्टि गोचर होती है परन्तु गद्य में क्वचित् ही लिखा जा रहा है । डा० गोस्वामी का ब्रजभाषा में लिखा हुआ यह उपन्यास वास्तव में ब्रज भाषा के गद्य में लिखने के लिए एक आह्वान है । जैसा कि अन्यत्र प्रकाशित समीक्षा में लिखा है डा० गोस्वामी अपने प्रयास में सफल हुए हैं ।

आदरणीय श्री बनारसीदास जी चतुर्वेदी ने हमारे पास कुछ मुद्रित सामग्री भेजी है । हम उसमें से "भगवान वेदव्यास का पाणिवाद" शीर्षक के अन्तर्गत लिखी हुई पंक्तियों को अक्षरशः उद्धृत करते हैं । आशा है ये पाठकों को प्रेरणादायक सिद्ध होंगी ।

"भगवान वेदव्यास का पाणिवाद,
अर्थात् हाथों से श्रम करने की महिमा ।

आज से लगभग बीस वर्ष पूर्व बन्धुवर डाक्टर वासुदेव शरण अग्रवाल ने हमारे पास महाभारत से संकलन करके निम्नलिखित श्लोक अनुवाद सहित भेजे थे :—

अहो सिद्धार्थता तेषां येषां सन्तीह पाणयः ।
अतीव स्पृहये तेषां येषां सन्तीह पाणयः ।।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

पाणिमद्भवः स्पृहाऽस्माकं यथा तव धनस्य वै ।
न पाणि लग्भादधिको लाभः कश्च न विद्यते ।।

अर्थात, जिनके हाथ हैं वे क्या नहीं कर सकते ? जिनके पास हाथ हैं उन्हीं के काम सिद्ध हैं। जिनके पास हाथ हैं उन्हीं की मैं सबसे अधिक सराहना करता हूँ।

तुम तो सदा धन की चाहना किया करते हो पर मैं सदा हाथ वाले मनुष्यों की प्राप्ति रहता हूँ। हाथ होने से बढ़कर दूसरा लाभ नहीं है—

अथयेषां पुनः पाणि देवदत्तौ दशांगुली
अधिष्ठाय च गो लोके भुंजते व वाद्यन्ति च
उपायै बहुभिश्चैव वश्यानात्मनि कुर्वंते
पाणिमन्तो बलवन्तो धनवन्तो न संशयः
ते खल्वपि रमन्ते च मोदन्ते च हसन्ति च

जिनके पास देवों के दिये हुए दस अंगुलियों वाले हाथ हैं वे पृथ्वी के अधिपति होकर अनेक प्रकार के भोग, भोग सकते हैं और नाना उपायों से औरों को अपने वश में कर सकते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि हाथ वाले (पाणीमन्त) पुरुष ही बलवान और धनवान बनते हैं। वे ही भाँति-भाँति से मौज करते और हँसते खेलते हैं।"

भगवान वेदव्यास ने हाथों की कैसी सुन्दर महिमा गाई है। आज हम अपनी इस दैव प्रदत्त शक्ति के प्रति विस्मृत होकर किस प्रकार पराश्रित होते जा रहे हैं ? इस शक्ति का पूर्ण संचय और उपयोग करके हमारे लिए संसार की कौन सी उपलब्धि आलभ्य हो सकती है ? यदि हम इस शक्ति का यथावत् स्मरण रक्खें तो जीवन की बहुत ही कमियाँ जिनसे आज हम दुःखित हैं स्वप्नवत् हो जांयगी।

सूर सागर

वयोवृद्ध साहित्यकार श्री जवाहर लाल चतुर्वेदी आजकल सूर सागर का सम्पादन कर रहे हैं। उनका संकल्प सूर सागर को १६ विशाल खण्डों में प्रकाशित करने का है। प्रथम खण्ड स्वर्गीय श्री गोवर्द्धन दास जी विनानी के सौजन्य से प्रकाशित भी हो चुका है। इसी प्रथम खण्ड का विमोचन संस्कार ब्रज साहित्य मण्डल द्वारा दिल्ली में एक विचार गोष्ठी के माध्यम से सम्पन्न किया गया था। हमारे प्रधान मन्त्री श्री जगदीश नारायण चतुर्वेदी के सत्प्रयासों से यह विचार गोष्ठी बड़ी सफलता पूर्वक सम्पन्न हुई। अध्यक्ष थे समालोचना शास्त्र के सुप्रसिद्ध आचार्य और मूर्धन्य साहित्यकार डा० नगेन्द्र। अनेक विद्वानों के सूर पर भाषण हुए। आदरणीय श्रीजवाहरलाल चतुर्वेदी जी की कृति की भूरि-भूरि प्रशंसा की गई।

मण्डल के कार्यवाहक अध्यक्ष श्री वृन्दावनदास ने श्री जवाहर लाल चतुर्वेदी का परिचय देते हुए कहा कि सूर पर श्री चतुर्वेदी का एक पूरे जीवनकाल का प्रयत्न है । उनके विशाल प्रथम खण्ड के पढ़ने से पाठक को ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होंने 'सूर-सागर' के जितने संस्करण प्रचलित हैं वे सब पढ़ लिए हैं । चतुर्वेदी जी ने समस्त भारत का भ्रमण कर अनेक प्रतियों का का अध्ययन कर प्रस्तुत ग्रन्थ का सम्पादन किया है । चतुर्वेदी जी सूर पर अधिकारी विद्वान हैं और उन्होंने 'सूर सागर' का सम्पादन कर न केवल हिन्दी साहित्य की श्री वृद्धि की वरन् ब्रजवासियों का भी मुख उज्वल किया है ।

केन्द्रीय श्रममन्त्री श्री जगजीवन राम ने गोष्ठी का उद्घाटन करते हुए कहा कि 'सूर-सागर' वास्तव में सागर है जहाँ गोता लगाने वाले को मोती भी मिल सकते हैं और सीप भी । उन्होंने सूर पर खोज करने पर बल दिया । श्री डा० विजयेन्द्र स्नातक ने सूर सागर की समस्याओं पर प्रकाश डाला और चतुर्वेदी जी में रचयिता की दृष्टि बताई । डा० ब्रजेश्वर वर्मा ने उसकी प्रमाणिकता की समस्या की चर्चा की । श्री वियोगीहरि ने चतुर्वेदी जी को इस बात के लिए बधाई दी कि उन्होंने पाठ शुद्धि का स्तुत्य प्रयास किया और अनेक भ्रमों को दूर किया । डा० बच्चन, भगवती चरण वर्मा और सेठ गोविन्द दास ने भी अपने उद्गार प्रगट किये ।

अन्त में श्री चतुर्वेदी ने उनके प्रयास का अभिनन्दन किये जाने के लिए वक्ताओं को धन्यवाद दिया । डा० नगेन्द्र ने अपने अध्यक्षीय भाषण में कहा कि पाठ-विज्ञान अपने आप में ठीक है परन्तु साहित्य की अजस्र धारा के प्रवाह में उसे बाधक सिद्ध न होना चाहिये ।

सूर समारोह

अबकी बार मण्डल ने सूर समारोह मथुरा में ही श्री प्रभु दयाल मीतल की अध्यक्षता में मनाया । समारोह का उद्घाटन केन्द्रीय हिन्दी संस्थान के निदेशक डा० ब्रजेश्वर वर्मा ने किया । डा० वर्मा ने कहा कि सूरदास बहुत बड़े हैं, उन्हें किसी सम्प्रदाय की सीमा में लपेट कर रखना गलत है । वे व्यक्तित्व हैं व्यक्ति नहीं और उनके लिए तो वे एक भावना हैं । आपने कहा कि सूरदास ने सारे उत्तर भारत को एक नया जीवन प्रदान किया , सम्पूर्ण कृष्ण काव्य उसमें समा सकता है । सूरदास ने उन्हीं प्रवृत्तियों को विकसित किया जिनसे नये निर्माण को बल मिला । इस गोष्ठी में अध्यक्ष श्री प्रभूदयाल मीत्तल, श्री जवाहर लाल चतुर्वेदी, और श्री वृंदावन दास के सूर पर भाषण हुए तथा सर्व श्री हृषीकेश चतुर्वेदी, राम लला, गोविन्द चतुर्वेदी, बाल मुकुन्द चतुर्वेदी दीना नाथ सुमनेश, कैलाश चन्द्र कृष्ण भगवान दत्त चतुर्वेदी और रामगोपाल ने सरस रचनाओं का पाठ किया ।

ब्रज में आकाश वाणी केन्द्र

ब्रज क्षेत्र के दस संसद सदस्यों ने भारत सरकार के सूचना एवं प्रसारण मंत्री को ज्ञापन भेज

कर उनसे अनुरोध किया था कि पूर्वी उत्तर प्रदेश में आकाश वाणी ने इलाहाबाद, वाराणसी, लखनऊ, और कानपुर निकटस्थ नगरों में चार प्रसारण केन्द्र खोल रक्खे हैं जबकि ब्रज भाषा भाषी क्षेत्र में जिसमें मथुरा, वृन्दावन, आगरा, अलीगढ़, एटा, मैनपुरी, इटावा, हाथरस, धौलपुर, करौली भरतपुर एवं बुलन्दशहर आदि अनेक सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक महत्व के नगर होते हुए किसी स्थान पर प्रसारण केन्द्र नहीं है। ज्ञापन पर सर्व श्री अचल सिंह, दिगम्बर सिंह, नरदेव स्नातक, शम्भू नाथ चतुर्वेदी, कन्हैया लाल बाल्मीकि, कृष्ण पाल सिंह, जगन्नाथ पहाड़िया, बादशाह गुप्त और विशन चन्द सेठ के हस्ताक्षर थे। ब्रज साहित्य मण्डल ने और भी इस सम्बन्ध में अनेक प्रयास किये। हर्ष का का विषय है कि माननीय श्री राज बहादुर जो, सूचना एवं प्रसारण मंत्री भारत सरकार ने अब स्पष्ट रूप से आश्वासन दे दिया है कि ब्रज क्षेत्र के अन्तर्गत आकाश वाणी केन्द्र मथुरा नगरी में ही स्थापित किया जायगा। हम माननीय मंत्री महोदय से साग्रह अनुरोध करते हैं कि वे ब्रज क्षेत्र की इस कमी को शीघ्र पूरा कर अक्षय यश के भागी बनें।

—वृन्दावन दास

परख

(रचियता – श्री भगवान दत्त, चतुर्वेदी, मथुरा)

॥ दोहा ॥

मूरख ने पथ में परचौ, लख्यौ मलिन नग गोल।
हतभागी जान्यों न वह, है यह रतन अमोल॥

॥ कवित्त ॥

मारग में धूरि सन्यों रतन परचौ हो एकु,
ताहि ज्ञान हीन दीन जानहू न पायौ है।
काच मानि पथ सों हटाय ढेर कूरे भरे,
घूरे पै उछारि फेंकि हिय हरसायौ है॥
वाही राह चलते निगाह पारखी को परी,
भाग कों सराहि ताहि तुरत उठायौ है।
महुर हजार में महीपति कों सोंपि तानें,
हीरक कौ फेरि पूर्व गौरव बढ़ायौ है॥

भागवत् सार

[रचयिता—श्री रामगोपाल श्रोत्रिय "गुपाल"]

प्रथम स्कन्ध सुनों ऋषि गान

व्यासहि तुष्टी भई न हिय में रच-रच ग्रन्थ महान्।
नारद प्रति तव प्रश्न किये वहु संतोषन मन जान।
पूर्व चरित वर्णन कियौ मेटन भ्रम सुज्ञान।
जाविध दुष्ट बुद्धिऽस्वसथामा द्रोपदि पुत्र नसाये।
अर्जुन मान मर्द राक्षस कौ मणि मस्तक लैं आये।
गर्भहि में परिक्षत रक्षा कर लीने प्राग बचाय।
पांडु बंशकी वारी नैय्या जग में यश गयौ छाय।
भीष्म पिता ने प्राण त्यागते स्तुति प्रभुहिं सुनाई।
राज्य युधिष्ठिर सोंप प्राण प्रिय रहे द्वारिका छाई।
विदुर आय धृतराष्ट्र उपदेशौ वन पठये कुरु राय।
राज तिलक परिक्षत कौ जिम भयौ शुकनें कही समुझाय।
लख उत्पात युधिष्टिर चिंतित अर्जुन ध्यान लगाय।
तव अर्जुन लौट कथा सब वरणी विध विधान बतराय।
स्वर्गारोहन करन गये मिल समाचार को पाय।
कलियुग नें उत्पात मचायौ धर्म कर्म बिनसाय।
खिन्न धर्म भू निकट परिक्षत कलि की गाथा गाई।
उभय सम्वाद सुनत तत्कालहिं दमन कियौ कलि जाई।
ऋषित शमीक आश्रम में पहुँचे दियौ सर्प गरडार।
तक्षक उसै शाप इव दीयौं शृङ्गी त्याग विचार।
परिक्षत स्राप सुन्यौ जब ही सों अनशन वृत हिय ठान।
गङ्गा तट पहुँचे तहँ आये शुक योगी सुज्ञान।

पूछन ज्ञान अनूपम लागें

रूप विराट स्थूल अरु सूक्ष्म क्रम मुक्ती अनुरागें।
इच्छा मय इच्छित फल चाहै वैसेई देवन ध्यावै।
प्रेम भक्ति रस लूटन चाहै श्री कृष्ण चरित चित लावै।
परिक्षत प्रश्न कियौ स्रष्टी कौ का विध भई निर्मान।
विराट रूप सों जग प्रघटायौ जिम सब कही बखान।
लीलामय श्रीकृष्ण विभूती जैते भये अवतार।
क्रम सों शुक वर्णंन सब कीने हेत समय अनुसार।
विविध प्रश्न परिक्षत नें कीये तिनकौ कहा विस्तार।
समाधान शंका शुक कीनी दै प्रमाण श्रुति सार।
उत्पति वृह्मा ज्ञान भागवत चार श्लोक में गायौ।
पुराणन के लक्षण वर्णंन कर संशय हीय मिटायौ।

सत्य नारायण कविरत्न

(लेखकः– श्री वनारसी दास चतुर्वेदी)

सत्य नारायण कविरत्न का जन्म आज से ८६ वर्ष पहले २४ फरवरी सन् १८८० को हुआ था और मृत्यु १५ अप्रेल सन् १९१८ को। इस प्रकार वे कुल जमा अड़तीस वर्ष जीवित रहे। उनका विद्यार्थी जीवन १८९० से १९१० तक रहा। उनका काव्य जीवन १५--१६ वर्ष से अधिक न रहा होगा। सन् १९०३ में पं० श्रीधर पाठक ने उनकी एक कविता भारत मित्र में छपने के लिए बाबू बाल मुकुन्द गुप्त को भेजी थी उस पर टिप्पणी लिखते हुए गुप्त जी ने लिखा था :—

"यह एक बालक की कविता श्री युत पं० श्रीधर पाठक जी की मार्फत हमारे पास पहुँची है। बालक तबियतदार है। यदि अभ्यास करेगा तो भविष्य में अच्छी कविता कर सकेगा। अपनी तरफ से हम इतना ही कहते हैं कि भाषा जरा वह और साफ करे और कुछ नये ढंग की कविता में अभ्यास बढ़ावे, क्योंकि जैसे ढङ्ग की वह कविता है वैसी हिन्दी में बहुत अधिक और उत्तम से उत्तम हो चुकी हैं।"

सत्य नारायण जी ने बी० ए० तक शिक्षा पाई थी पर वह बी० ए० पास नहीं कर सके।

उन्होंने भवभूति के दो संस्कृत नाटक उत्तर रामचरित और मालती माधव का ब्रज भाषा में अनुवाद किया था और लार्ड मैकाले की 'होरेशश' नाम की कविता का पद्य में अनुवाद किया था। इसके अतिरिक्त उनकी कुछ फुटकर कविताओं का संग्रह हृदय तरङ्ग के नाम से नागरी प्रचारिणी सभा आगरा ने छापा था।

कविवर सत्य नारायण जी की जीवनी मैंने सन् १९२१ में लिखी थी और हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग ने उसको प्रकाशित किया। इसके सिवाय सम्मेलन में सत्य नारायण कुटीर भी बनवा दी गई थी, जहाँ साहित्य सेवी बन्धु प्रायः ठहरा करते है।

सत्य नारायण कविरत्न के जीवन चरित का सारा मसाला मैंने सम्मेलन को सौंप दिया था, दुर्भाग्य से वह वहाँ से चोरी चला गया।

सत्य नारायण की कविताएँ अपने समय में काफी लोक प्रिय हुई थीं और उत्तर रामचरित तथा मालती माधव तो पाठ्य पुस्तकों के रूप में भी पढ़ाई जाती थी।

दुर्भाग्यवश अब वे पुस्तकें बिल्कुल अप्राप्य हो गई हैं। क्या यह संभव नहीं है कि हिन्दी साहित्य सम्मेलन उन्हें फिर से प्रकाशित करदे ? कविरत्न जी विषयक अमूल्य सामग्री को अपनी असावधानी से खोकर उसने जो पाप किया है उसका प्रायश्चित इसी ढंग से हों सकता है।

ब्रजवासियों का कर्तव्य है कि उस ब्रज कोकिल की कीर्ति रक्षा के लिये भरपूर प्रयत्न करें। कम से कम धांधूपुर में उनके निवास स्थान उस मंदिर का तो जीर्णउद्धार हो ही जाना चाहिए। क्या आगरे के साहित्य:प्रेमी इस ओर ध्यान देंगे।

महाकवि सूरदास और मुरलीधर चतुर्वेद

शैली–साम्य

[श्री रामदत्त भारद्वाज, एम. ए. (त्रय), एल-एल. बी.]

"ब्रज भारती" के दशम वर्षीय द्वितीय अङ्क में श्री जवाहर लाल जी चतुर्वेदी ने महाकवि सूरदास कृत "सूर-गीता" का उल्लेख किया है। महाकवि ने जिस शैली का अवलम्बन किया है, उससे बहुत मिलती-जुलती शैली में ही सोरों के श्री मुरलीधर चतुर्वेद ने आजसे एक सौ अस्सी वर्ष पूर्व गोस्वामी तुलसीदास की पत्नी का "रत्नावली" नामक जीवन-चरित्र लिखा था।

निम्न-लिखित उद्धरणों से पाठकों को विदित होगा कि महाकवि सूरदास की और श्री मुरलीधर चतुर्वेद की शैलियों में कितना प्रबल साम्य है।

"सूरगीता"

अति धर्म्म छेत्र कुरुछेत्र मध्य। सुत मेरे अरु पाँडव प्रसिद्ध ।।
जुध हेत जुरे जे सरब आय। सो करत कहा संजय बताय।।
देखी पांडव सैंना उदार। करि ब्यूह की रचन सम्यक प्रकार ।।
दुरजोधन आचारज समीप । ए बाकि कहे सुनियें पृथीप ।।
पाँडव सैंना दीरघ विचारि। द्रोनाचारज लोचन निहारि ।।
है धृष्टिदुमन तब सिष बलिष्ट। तिहैं करी बिहु रचना प्रति प्रतिष्ठ ।।
अति सूर धनुरधर वपु प्रचंड। अरजुन्न भीम जोधा अखंड ।।
जुजधान और भूपति बिराट। संग्राम ब्रिरारम सत्रु थाट ।।

"रत्नावली"

वन्दों विकट वराह ईस। वन्दों सनकादिक मुनीस ।।
सती सारदहि सीस नाइ। सवित्री सिय गुनन गाइ।।
अरुन्धती दमयन्ति नारि। अनुसूया पुनि गान्धारि ।।
सती भईं जे जगत धाम। तिनहिं सवनु कहं करि प्रनाम।।
रत्नावलि की लिषहुँ गाथ। तिहि चरनन में नाइ माथ ।।
जासु चरित है अति गंभीर। तदपि लिषहुँ कछु धारि धीर ।।
विदित वेद अघ हरन हारि। पतितनु पावन करन हारि ।।

* * *

शास्त्री-श्रद्धाञ्जलि

[रच०—श्री कैलाश चन्द्र 'कृष्ण' मथुरा]

भारती भूषन भव्य पूषन महान भूरि
पूत तू सपूत सान्ति दूत कित अरिगौ ।
कम्य कविता के ललिता के ललित जोग
कोटि कोटि जनताकें वियोगयोग करिगौ ।।
तासकन्द भूमि तोहि अति सुखकन्द लगी
सुभग समृद्धि सुख हेतु जाय लरिगौ ।
जौ तौं हम नेहरू की याद हू न भूलि पाये
तौ लौं अचानक बज्रपात आन परिगौ ।।१।।

राष्ट्र उन्नायक सहायक गरीबन कौ सु
दीन बरदायक दीन असहाय करिगौ ।
ललिता सी रानी पटरानी कौ सुहाग भूरि
सुभग सिंदूर दूर कूख धूर भरिगौ ।।
छोड़े बिलखते नर नारी परिवारी जन
विस्व भयहारी आज कितमें डिगरिगौ ।
जोलौं हम नेहरू की याद हू न भूलि पाये
तौलौं अचानक बज्रपात आन परिगौ।।२।।

रीति भरी नीति भरी परम पुनीत प्रीत
रंच ही न भीति ईति दलन दले गये ।
सत्रु उर सालक दीन प्रतिपालक लाल
खल कुल घालक नैन चकित चितै गये ।।
ललिता सी रानी सेदसानी बिलखानी छोड़
पंच तत्व सानी देह तत्व में मिलै गये ।
पूत हे सपूत भाव नूतन प्रसून गहें
सान्ति दूत भारती के कितमें चले गये ।।३।।

संकट घरीन हिन्द नौका पतबार गही
पार के समै पै पारकर्ता झट पार भौ ।
अट्ठारह अंगुल सौ देह मास अट्ठारह
करि कछु कौतुक से जन हिय हार भौ ।।
जौ लौं नेंकु आसा सुख सान्ति की बिसासा भई
तौ लौं सरिता के कूल तरु पतझार भौ ।
प्यारे बहादुर लाल हाल में बिहाल परे
तेरौ ये बियोग हिन्द वासिन पहार भौ ।।४।।

संकट असीम सीम भीम रजनी में सदा
भारतीय जनता के उजीते कों सोम सौ।
सेस सौ सहैया हिमगिरि सौ घिरैया लाल
सब्दन सभोइबे में व्यापक हौ ब्योम सौ ॥
बज्र सौ कठिन नीतिनायक हौ 'कृष्ण' सौ सु
खल गज मृगेन्द्र सौ तापी रवि तोम सौ।
दीन दया राखन कों नेह सरसामन कों
जाकौ मन माखन सौ दाखन सौ मौम सौ ॥५॥

जन जन मानस के कारज सुधारे भले
जाकी जग जाहिर सुकीरति ललाम है।
नेहरू पटैल बोस बापू जी बिभूति दिव्य
चित्रित विचित्र चित्र नैन अभिराम है ॥
कैसौ है अनूठौ सुठि लाल बहादुर नाम
भारतीय जनता के मन कौ विराम है।
साधना में लीन औ अराधना में लीन सदा
पूर्ति भव्य भावना को कोटिश प्रनाम है ॥६॥

जाहु तुम जाहु हरसाय मन माँहि तहाँ
सान्ति कौ सँदेसौ विस्व हू कों देत रहियो।
नेहरू पटैल बोस बापू ना अधीर होय
साहसी सपूत तिन्हें धीरज बँधइयो।
लाल है बहादुर तू पाक ते समर जीत
अमर सहीदन कों सुख सरसइयो।
भावना बिभोर भूरि भाब के प्रसून जुक्त
'कृष्ण' कविता की पुष्प माला नेंकु गहियो ॥७॥

जौ लौं निज मस्तक पै धरि हैं भू भार सेस
गंगा जमुना की सुचि धार तौ बहैगी ही।
जौ लौं मरजाद पयनिधि में बनी है दिव्य
'कृष्ण' कविता की कम्य कलम चलैगी ही ॥
जौ लौं छपाकर छबि छमताहै छौनी माँहि
रस्मि रवि हू की तम तोम कों हरैंगी ही।
अमर सहीद सुख सान्ति जन भावना की
तौ लौं कीर्ति तेरी जग अमर रहेगी ही ॥८॥

कूबरी (ब्रजभाषा खण्ड काव्य)—एक समीक्षा

(श्री कृष्णदत्त बाजपेयी)

[कूबरी (ब्रजभाषा खण्ड काव्य) रचयिता श्री रामनारायण अग्रवाल, राज्यश्री प्रकाशन, मथुरा, १९६५ मूल्य दो रुपए ।]

ब्रजभाषा में काव्य-रचना की प्रवृत्ति दिन-दिन घटती जा रही है । यह समय का प्रभाव है । परन्तु कभी-कभी उत्तम कोटि की रचनाएं ब्रज-भाषा में दिखाई पड़ जाती हैं । यह इस बात का परिचायक है कि ब्रजभाषा में साहित्य-निर्माण की तथा इस साहित्य के समादार की प्रवृत्ति अभी विद्यमान है । वस्तुत: ब्रज भाषा साहित्य उस कल्पवृक्ष के समान है जो युग-युग के साहित्य रसिकों की तृप्ति करता आया है और जिसकी छाया में कोटि-कोटि जन शांति का अनुभव करते रहे हैं ।

प्रस्तुत कृति नौ सर्गों का एक खण्ड काव्य है । इस काव्य की नायिका कुब्जा (कूबरी) है । मथुरेश कंस की इस दासी के संबंध में संस्कृत तथा ब्रजभाषा साहित्य में प्रचुर साहित्य उपलब्ध है । कुब्जा का प्रारम्भिक चित्रण प्राय: एक कुरूपा स्त्री के रूप में मिलता है । भगवान् कृष्ण के संसर्ग में आने पर उसका कुब्जत्व दूर हुआ तथा उसे सुन्दरी महिला का रूप प्राप्त हुआ । इस प्रसंग को लेकर पुराणों तथा परवर्ती साहित्य में कुब्जा की रोचक कथा मिलती है । ब्रजभाषा के अधिकांश साहित्यकारों ने कुब्जा को हास्य-व्यंग्य के एक आलंबन के रूप में लिया है और उसके चरित में किसी उदात्त भावना की कल्पना नहीं की । इस खण्ड काव्य के रचयिता श्री रामनारायण का ध्यान 'उपेक्षिता' कुब्जा की ओर आकर्षित हुआ । उन्होंने उसके जीवन में अनेक सद्‌गुणों को स्पष्ट रूप से देखा और उनका चित्रण बड़ी सहृदयता के साथ किया है । हरिऔध की राधा की तरह उन्होंने कुब्जा को समाज-सेविका के रूप में चित्रित किया है और उसे एक आदर्श नारी का रूप प्रदान करने की चेष्टा की है ।

कवि ने विभिन्न सर्गों में विविध छन्दों का प्रयोग किया है । इनमें कवित्त, सवैया दोहा, सोरठा, कुंडलियां आदि हैं । काव्य की भाषा मथुरा की ठेठ ब्रज भाषा है । इस मिठबोली में कूबरी का चरित खिल उठा है । इस दीन नारी के जन्म से लेकर उसके अवसान तक की कथा कवि के द्वारा भाव-भीने शब्दों में गाई गई है । काव्य के अनेक स्थल अत्यन्त सुन्दर बन पड़े हैं । उदाहरण के लिए कुछ पंक्तियां नीचे दी जाती हैं—

१–किशोरी कुब्जा का वर्णन–

सो कुरूप की ढाल सों ढाँकी भई, जग-आखर एक न बाँचन पाई ।

(सर्ग १, छन्द ६)

नृपराज की नाज भरी नगरी, नविकै सुर-कन्या जहाँ चलतीं ।
बहु किन्नरी सुन्दरी नारी बनीं, दबिकै भरी त्रास तहाँ चलतीं ।।
वर अंधक बंस उजागरी नागरी ही नवरंगी वहाँ चलतीं ।
ये कलंकिनी अंग सो हीन तहाँ, कुबरी चलती तो कहाँ चलती ।।
(सर्ग १, छंद ७)

२—कृष्ण-कुब्जा मिलन—

सुन बैन स्याम के निहारी जो कुअंगिनी तौ,
मुख मुसकाय नैंक नैंनन नँचायगे ।
कूबरी की प्रीति पहिचानि कै छबीले छैल,
आगे आय ताके, मन्द-मन्द मुसिकायगे ।।
देख नंदलाल कौं कृपालु सो निहाल भई,
बोलन न पाई, नैंन रुंधि के मुंदायगे ।
अपने ही आप हाथ, माथे नंद-नंदन के,
कंस के निकंदन पै चंदन चढ़ायगे ।।
(सर्ग ४, छन्द १४)

३—गोपियों के प्रति कुब्जा का उपालम्भ—

ब्रज की गोपियान समान नहीं, हम हाटन बाटन सोर मंचायेंगे ।
(सर्ग ५, छन्द ९)

४—कुब्जा का यशोदा के प्रति संदेश—

कहियों जसुदा माय सों, औरन-सी मैं नांय ।
लरिकै घर में सास सों, जो न्यारी बसि जांय ।। (सर्ग ६, छन्द ५०)

प्रेम और वियोग के मार्मिक वर्णन काव्य में गुंफित हैं । कुब्जा-संदेश, श्री कृष्ण से कुब्जा का वियोग, ब्रज में निवास करते समय कुब्जा का त्याग और सेवा पूर्ण जीवन तथा राधा के प्रति उसका सहज भक्तिभाव इस काव्य की विशेषताएँ हैं । ब्रज भाषा के अनेक ठेठ शब्दों का प्रयोग काव्य में किया गया है । दत्तो, निठल्लो, घिसगिल्लो, निगुहा, कडूला, ढोक, भिड़ाबा आदि शब्द इसी प्रकार के हैं । कुछ शब्दों का ठीक अर्थ समझने में साधारण हिन्दी-ज्ञाताओं को कठिनाई होगी । उनके भावार्थ पाद टिप्पणियों में दे देने चाहिए थे । प्रारम्भ में ऐसे कुछ शब्दों के अर्थ कवि ने दिए हैं ।

कई स्थानों पर रचना में शिथिलता परिलक्षित है । प्रथम सर्ग छन्द संख्या १७, १८ तथा चौथे सर्ग के छन्द संख्या २,१९ आदि इस कोटि में आते हैं । कुछ स्थानों के छन्दो-भंग दूर किए जा सकते थे । यथा, प्रथम सर्ग के दसवें छन्द की प्रथम पंक्ति में 'स्नान' की जगह 'असनान' होना चाहिए था । प्रथम सर्ग में छत्तीसवें कबित्त की प्रथम पंक्ति का पूर्वार्द्ध यदि इस प्रकार होता तो अच्छा रहता—

'रावरी पुरी में सुख संपति कुबेर की है ।'

चतुर्थ सर्ग के १८ वें छन्द की अन्तिम पंक्ति इस प्रकार लिखी जा सकती थी—

शेस औ महेश, सारदादि, शम्भु-नन्दना ।
तिहारी नन्द नन्दना न पावैं करि बन्दना ।।

इसके ऊपर वाले छन्द की अन्तिम पंक्ति में 'हैं' शब्द की आवश्यकता नहीं थी ।

आशा है इन दोषों को पुस्तक के अगले संस्करण में दूर किया जा सकेगा । कवि ने एक भूले हुए भक्त की कथा को अत्यन्त सरस-रोचक ढङ्ग से चित्रित किया है । इस प्रयास के लिए कवि साहित्य-रसिकों के साधुवाद का पात्र है ।

❖

महाकवि सूर

रचयिता—श्री गोविन्द चतुर्वेदी, मारूगली, मथुरा

रेनुका खेत सो हेत कियौ अरु
जन्म के आँधरे नेह के नायक ।
चंद सरोवर साधनाभूमि,
सदा व्रज वासिन के सुखदायक ।
पुष्टि प्रमान किए निरमान,
अनन्यता आन चुभी चित चायक ।
'गोविंद' के गुन गायक भायक
प्रेम भरे पद सूर के सायक ।।१।।
श्रीमद वल्लभदेव के सेवक
प्रेम भरे रस सूर न होते ।
'गोविंद' कृष्ण सखा भरपूर जो
सुन्दरता के सरूर न होते ।
सागर हू रचिते नहि नेह कौ
तौ हिय के तम दूर न होते ।
ह्याँ करते कविताई कहा कवि
जौ पै महाकवि सूर न होते ।।२।।

मथुरा के जैन स्तूप आदि सम्बन्धी एक अज्ञात रचना।

—ले० श्री अगरचन्द नाहटा

भगवान पार्श्वनाथ और महावीर जैन धर्म के प्रवर्तक २४ तीर्थंकरों में ऐतिहासिक व्यक्ति माने जाते हैं। भगवान पार्श्वनाथ का जन्म वाराणसी में हुआ और महावीर का वैशाली के क्षत्रिय कुण्ड नगर में। इन दोनों का धर्म प्रचार का केन्द्र उत्तर-प्रदेश और बिहार रहे हैं। बिहार में भयंकर दुष्काल पड़े तब जैन मुनियों ने उधर से उत्तर, पश्चिम और दक्षिण की ओर धर्म प्रचार करना प्रारम्भ किया। यद्यपि मथुरा के आस-पास का प्रदेश भगवान नेमिनाथ के जन्म स्थान सौरिपुर को लिये हुये है पर भगवान नेमिनाथ और श्रीकृष्ण द्वारिका में चले गये थे अतः नेमिनाथ की दीक्षा, केवल्य ज्ञान और निर्वाण सौराष्ट्र के गिरनार पर्वत पर हुआ था। इसलिये मथुरा की ओर उन दिनों जैन धर्म का प्रचार इतना नहीं हो सका। मथुरा की खुदाई में जो जैन अवशेष प्राप्त हुये हैं उनमें देव-निर्मित-स्तूप सबसे प्राचीन है और इसकी उत्पत्ति के सम्बन्ध में जिन प्रयसूरि के विविध तीर्थ कल्प में आवश्यक विवरण मिलता है। पार्श्व नाथ और सुपार्श्वनाथ के तीर्थ के रूप में जैन समाज में मथुरा की प्रसिद्धी रही है। आम राजा ने इस स्तूप का जीर्णोद्धार करवाया। आचार्य बपभट्ट सूरि ने मथुरा में महावीर प्रतिमा स्थापित की। जीवन्त स्वामी की प्रतिमा भी मथुरा की प्रसिद्ध रही है। जैन शासन की भक्त कुबेर देवी और अम्बा देवी का वर्णन भी पाया जाता है। मथुरा के इन जैन स्थानों व प्रतिमाओं के वर्णन वाली एक अपभ्रंश रचना २५ पद्यों का प्राप्त हुई है। प्राप्त प्रति १५ वीं-१६ वीं शताब्दी की लिखी हुई है। सम्भवतः इस रचना का निर्माण १४ वीं या १५ वीं के प्रारम्भ में हुआ होगा। २० वें पद्य का कुछ अंश त्रुटित मिला है। जिन प्रयसूरि ने विविध तीर्थ कल्प में मथुरा के जैन पुरातत्व व इतिहास सम्बन्धी जो विवरण दिया है उस अनुश्रुति की इस रचना से भी पुष्टि होती है। संवत् १३९३ तक के खरतरगच्छ के इतिहास का महत्वपूर्णं विवरण प्रधानाचार्य गुर्वावली में मिलता है। उसमें संवत् १२१४ से १२१७ के के बीच मणिधारी जिनचन्द्र सूरिजी ने मथुरा की यात्रा की, लिखा है। फिर संवत् १३७५ में अन्य जिनचन्द्र सूरि जी ने मथुरा महातीर्थ की संघ सहित यात्रा की इसका महत्वपूर्ण उल्लेख है। दिल्ली के सुल्तान कुतुबुद्दीन के कथन से वे श्रावण महिने में मथुरा तीर्थ की यात्रा कर वापस दिल्ली आये—"श्रावण मासे संघ भार–निर्वाहक–ठ० अचल–श्री महावीर तीर्थं कराणां महता विस्तरेण यात्रा कृता। श्रीसंघेन च अवारितसत्र श्री सार्धमिक वात्सल्यादिभिर्महती प्रभावना चक्र।"

मथुरा मंडप सुपार्श्व पार्श्वस्तूपादिस्तव

सत्तम तेवीसम नमवि जिणुत्तम, महुराउरि सुरि निमिवीहिं ।
उप्पत्ती जेम निरूत्ती कहिउ, मुणिउ तिम सथुणउं ।१
सत्त तित्थेसर तित्थि दुन्नि, धम्मरूइ धम्मघोस मिहाण मुनि ।
दुक्करू तव सोहिय नाय तत्त, गुणनिहि विहरंतति महुर पत ।२
न हुइ नव बारहीय आसि, चउवन्न पसासिय रिद्धि आसि ।
पुण थल बारह वण सरिय सार, दढ गढ मढ मन्दिर वर विहार ।३
तहि भूय रमणि वणि मण भिरामि, नर वाहिणि देवि कुब्र नाभि ।
तसु भवणि दुन्निय साहु सीह, चउ मासि रह्या निसण निरीह ।४
तहि मुणि गुणि आगम झुणि सुणेत्रि, संतुट्ठ लहइ संम्मत्तु देवि ।
नितु निम्मल मुणि गुण दीण चित्त, अभिथुणइं अच्चंत भत्ति ।५
अह कत्तिय सिय अट्ठमिहि रत्ति, सिज्जायरि मणि मुणिवरिहिं झत्ति ।
आपुच्छिउ भणइ न किं करेहिं, जिण आण तमह किं आयसेह ।६
तो भणहि ति अम्ह महाणु भावि, संथहसउं सुर गिरि जिण वंदावि ।
सा भणइ ससंघह नत्थि सत्ति, तुम्ह बिहुं वंदावउं नेमि झत्ति ।७
मुणि चिंति अम्हिहि आगमि सुदिट्ठ, तुह धम्म पमाविहिं होज सुट्ठ ।
स बिलक्ख स अक्खइ जइ भणेह, इहु थूम करउं तहिं जिण नमेह ।८
होउ ति भणीय तिणि मेरू चंगु, किउ कंचण मउ दुइ कोस तुंग ।
मेहल धय तोरण छत्त वारू, सुप्पास पमुह बहु पडिम सारू ।९
तं पिक्खि पमाइ परतित्थियाउ, वन्नंता निय निय देवयाउ ।
कलहंति परूप्पर अम्ह एहु, पुणु कोइ न जाणइ तासु भेउ ।१०
निवि भणिउं तुम्हि इम कलि करेह, निय देवलि हविं धयवड़ महेह ।
जिण निम्मिउ इह सु जि पयडु इत्थु, जसु पडु पूएसिइ तासु तित्थु ।११
तिम करिसिय दंसण गह गहंति, जिण भत्ति सुपासह पडु महंति ।
निसि मज्झि पवण सवि पड हरेवि, जिण पडु पूएवि कुबेर देवि ।१२
तो विम्हिउ मणि निवु संघ लोय, जिण पडु परि भामिउ गुरू पमोय ।
तो अज्जत्रि तह दसमी दिणंमि, पड़ जत्त पवत्ताइं बहु जणंमि ।१३
इअ थूम महिम मिलियइ जणंमि, न्हवणत्थ कलह पुण तहि घणंमि ।
निसि लियह पत्ति नवि रोस राउ, नामागमि धुरि हुइ रोर राउ ।१४
ग्यारसि दिणि पंचाभिएण, घण चंदण कुंकुम मीसिएण ।
करि न्हवण विलेवण पूय भत्ति, आभारण महाधज दिसि ससत्ति ।१५
बारसिहिं अवारिय दाण दिंति, निसि माल पमुह बहु विह करंति ।
जिण नाह नमह ते विहु मुणीस, इम जत्त मिलइं तहि च्यारि दीस ।१६

ते मुणि चिरू विहरवि सिद्धि जत्थ, सो सिद्ध खित सुपसिद्ध तित्थ ।
सा देविय नर भवि सिद्धि पत्त, तसु पइ अवराहिव तित्थ भत्त ।१७
महु मित्त मक्खय पुर किलेसि, सतरिस वयणि कय संति रेसि ।
सा थूमि ठविय घरि घरि दुवारि, सिरि पास पडिम रिसि पडिम बारि ।१८
को लोभिउ राउ कुहाड़ देवि, छेयतउ हणिउ कुबेर देवि ।
तसु पट्टि सु जीवइ जोस दिट्ठि, अनु पव्व पयडु कुहाड़ छट्ठि १९
अह पासि कहिउ दूसम सुणेवि, गोविउ सु थूम कुव्बेर देवि ।
.. .. वि सय विकमाउ, उद्धार करावइ आम राओ ।
तहि वीर पडिम तहिं सुह मुहत्ति, बपहट्टि पयट्ठिउ संघ जुत्ति ।२०
हरिकेस तिव ट्ठिय पुव्व जम्म, हुंडी जख मुंग जक्ख कन्ह जम्म ।
गोदेव निठुइ कंन अम्बिय पुत्र, कंबल सबलाइ अढार नत्त ।२१
इच्चाइ अणेगय बंधवाय, जहि अज्जवि मंगल चेइयाइं ।
पूइज्जइ लोगे इवि गेहि गेहिं, सा महुर किं दीसइ जेहिं तेहिं ।२२
सिरि निम्मिउ थूमु सुपास नामि, अनुपास पडिम जीवंत सामि ।
बपहट्टि पयट्ठिउ वीरू वंदि, नर नारि लिहाविय नाम चंदि ।२३
जिण सासण भत्ति कुबेर देवि, चलणीय नाम तह अम्ब देवि ।
अन्ने वि सुरासुर खयर जक्ख, अज्जवि इह तित्थ करंति रक्ख ।२४
इय महुरा मण्डण दुरिय विहंडण, सिरि निम्मिय संथुय पवर ।
निसुणंत गुणंतह मणि झायंतह, होउ भविय आणंदयरो ।।२५

खरतर गच्छ गुर्वावली के अनुसार संवत् १३७५ तक तो मथुरा श्रीसुपार्श्व, पार्श्व और महावीर के जैन तीर्थ रूप में प्रसिद्ध था इसके बाद में मुसलमानों ने इस तीर्थ को काफी क्षति पहुँचाई । १७ वीं शताब्दी में मथुरा के स्तूपों का जीर्णोद्धार हुआ जिसका विवरण राजमल्ल, के जम्बू चरित्र प्रशस्ति में मिलता है । १७ वीं शताब्दी से फिर जैन यात्रियों के मथुरा यात्रा का उल्लेख मिलने लगता है । संवत् १४०० से १६०० के बीच की स्थिति का ठीक पता नहीं चलता । जैन तीर्थ मालाओं आदि में मथुरा का जहाँ-जहाँ उल्लेख हुआ है उन सबके उद्धरण संग्रहीत किये जाने चाहिए । समय-समय पर यहाँ जो जैन मुनि व श्रावक तीर्थ यात्रा करने के लिये आये उनके किये हुये विवरणों से कुछ उपयोगी सूचनायें मिल सकती हैं । उपलब्ध जैन पुरातत्त्वों से मथुरा में जैन धर्म का प्रचार प्राचीन काल की तरह नहीं रहा, स्पष्ट है । पर जैन तीर्थ के रूप में तो उसकी प्रसिद्धि लम्बे समय तक रही है । यहाँ के पुरातत्त्व ने जैन इतिहास पर अच्छा प्रकाश डाला है । श्वेताम्बर तीर्थ मालायें तो अनेकों प्राप्त हैं दिगम्बर सम्प्रदाय के उल्लेखों को ही प्रकाश में लाना आवश्यक है ।

* * *

ब्रजभाषा के केरलीय कवि

"स्वाति-तिरुनाल"

[ले० डा० आनन्द स्वरूप पाठक, एम० ए०, पी० एच० डी०]

हिन्दी साहित्य के विभिन्न इतिहासों में ऐसे उल्लेख मिलते हैं कि पूर्वी पश्चिमी और उत्तरी भारत में ब्रजभाषा में रचनाएँ की गई हैं, किन्तु किसी भी इतिहासकार ने दक्षिण भारत के किसी ऐसे कवि का उल्लेख नहीं किया है जिसने ब्रजभाषा में कविता की हो । इसके दो ही कारण हो सकते हैं या तो वहाँ हिन्दी या ब्रजभाषा का कवि उत्पन्न ही नहीं हुआ था अथवा वे उस रचना या कवि का पता लगाने में असमर्थ रहे । हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों के प्रति उचित सम्मान करते हुए इस तथ्य को भी नकारा नहीं जा सकता है कि प्रत्येक की अपनी-अपनी सीमाएँ होती है । अब तक की ज्ञात सूचनाओं से पता चलता है कि दक्षिण भारत में हिन्दी सम्बन्धी जितना कार्य हुआ है वह नागरीलिपि में नहीं लिखा गया है । उदाहरण स्वरूप दक्खिनी हिन्दी की पुस्तकें भी फारसी नसतालीक में ही मिलती है । ऐसी स्थिति में, यह कल्पना करना कि हिन्दी की प्राचीन रचनाएँ नागरी लिपि में ही मिलेंगी या वहाँ हिन्दी या हिन्दी की किसी विभाषा की रचना हुई ही नहीं दोनों ही अतिवादी कल्पनाएँ हैं । दक्षिण भारत की भाषाओं में अब भी ऐसी पुस्तकें प्राप्त हैं जिनकी भाषा हिन्दी है तथा लिपि दक्षिणी भाषाओं की है । इस प्रकार की कृतियाँ केवल हिन्दी या केवल दक्षिणी भाषा जानने वाले व्यक्ति के लिए दुरूह होती है । ऐसी कृतियों के समझने के लिए दोनों भाषाओं का ज्ञान होना आवश्यक है । हम हिन्दी भाषी अपने दक्षिण भारतीय भाइयों से यह अपेक्षा करते हैं कि हिन्दी पढ़ें किन्तु स्वयं यह प्रयत्न नहीं करते कि हम भी दक्षिण भारतीय भाषा पढ़कर अपने नैतिक और राष्ट्रिक कर्तव्य का पालन करें । यदि दक्षिण भारतीय भाषाओं के पढ़ने की प्रवृत्ति हिन्दी के विद्वानों में जागृत हो जाये तो दक्षिण में हिन्दी का विरोध तो समाप्त हो ही जायगा साथ ही हिन्दी को अनेक ग्रन्थ रत्न भी प्राप्त होंगे ।

अपने केरल निवासी के समय मुझे भी एक ऐसे हिन्दी के केरलीय कवि के विषय में ज्ञात हुआ जिसने ब्रजभाषा में कविता की थी किन्तु वह कविता मलयालम भाषा की लिपि में लिखी हुई थी । वहां रहकर मैंने भी मलयालम भाषा का यथाशक्य ज्ञान प्राप्त किया था फलतः उस कविता का हिन्दी में लिप्यंन्तरण कर सका । इस कवि की सामग्री जुटाने में और उसके पदों के लिप्यंन्तरण में मुझे केरल भारती के सहा० सम्पादक और मेरे मित्र श्री सी० आर०

नारणप्पा और मेरी सहयोगी कु० वी० पी० मेरी फ्रान्सिस से सहायता मिली वे निश्चित साधुवाद के पात्र हैं उनकी ही सहायता से दक्षिण भारत के एक रत्न को जो कि उत्तर भारतीयों के भाषा विषयक अज्ञान के कारण उपेक्षित पड़ा हुआ था प्रकाश में लाने का सुयोग उपस्थित हुआ है। उस समय भी मैंने केरल में हिन्दी के अग्रदूत* नामक एक लेख लिखा था किन्तु उस लेख में कवि की रचना प्रकाशित नहीं हो सकी थी और न वह लेख उत्तर भारतीयों तक ही पहुँच सका था। प्रस्तुत लेख में ब्रजभाषा कविता करने वाले उस कवि का परिचय और उसके प्राप्त पद नीचे उल्लिखित हैं।

सह्याद्रि वलयिता, नारकेल वृक्ष संकुला केरल की शस्य श्यामला भूमि में उत्पन्न ब्रजभाषा के इस कवि का नाम महाराज रामवर्मा "स्वाति-तिरुनाल" था। महाराज रामवर्मा का जन्म तिरवितांकुर के प्राचीन राज कुल में १६ अप्रैल सन् १८१३ को स्वातिनक्षत्र में हुआ था। स्वाति नक्षत्र में जन्म लेने के कारण आप 'स्वाति तिरुनाल" नाम से विश्रुत हैं। 'तिरुनाल" शब्द 'तिरु' और 'नाल' दो शब्दों के संयोग से बना है, 'तिरु' का अर्थ सम्मान सूचक 'श्री' है और 'नाल' का अर्थ नक्षत्र होता है अतएव इस सम्पूर्ण शब्द का अर्थ 'शुभ स्वाति नक्षत्र में उत्पन्न" बालक है। आपके पिता का नाम श्री राजराज वर्मा को यित्तंपुरान** था। केरल में मातृसत्तात्मक समाज (मेट्रिआर्किकल सोसाइटी) होने के कारण तथा माता-पिता की एकमेव सन्तान होने के कारण ये जन्म से ही राज्य के अधिकारी थे इसलिए इन्हें "गर्भ श्रीमान" नाम से भी अभिहित किया जाता है। जब आपकी आयु केवल दो वर्ष की ही थी तब दैवदुर्विपाक से आपकी माँ राजेश्वरी लक्ष्मीबाई का निधन हो गया। इसलिए आपका पालन पोषण आपकी मां की छोटी बहिन रानी पार्वती बाई ने ही किया था। आपको देशी और विदेशी भाषाओं की शिक्षा दी गई। कुशाग्र बुद्धि होने के कारण श्री राम वर्मा ने अँग्रेजी, मलयालम, संस्कृत हिन्दी, तामिल, तेलगू कन्नड तथा मराठी का ज्ञान प्राप्त किया।

आज से डेढ़ सौ वर्ष पूर्व दक्षिण के अन्तिम छोर पर स्थित केरल में आपको किसने हिन्दी का ज्ञान कराया यह प्रश्न अभी तक जिज्ञासा का विषय बना हुआ है। वैसे तो केरल के कोचीन और ट्राबनकोर राज्यों में मंदिरों के पास धर्मशाला के रूप में "गोसाई मठम्" नामक स्थान होते थे जिनके भग्नावशेष अब भी मिलते हैं। वहाँ बाहर से आये हुए यात्री लोग ठहरते थे उन स्थानों में 'दुभाषिये' होते थे जिन्हें हिन्दी का पर्याप्त ज्ञान होता था सम्भव है ऐसे ही किसी

(*) केरल में हिन्दी के अग्रदूत—ले० आनन्द स्वरूप पाठक—केरल भारती दिसम्बर १९६१

(**) कोचीन के राजपरिवार की पुत्रियों से विवाह करने वाले यह उपाधि लिखते हैं।

व्यक्ति से कविवर रामवर्मा को हिन्दी की शिक्षा मिली हो। दूसरी बात यह भी हो सकती है कि महाराज रामवर्मा स्वयं अनेक कला विज्ञ थे और उनके दरबार में कलाविज्ञ आते रहते थे सम्भव है कि बाहर से आये हुए किसी विद्वान ने इन्हें हिन्दी पढ़ाई हो। कुछ भी हो यह तो निश्चित है कि उनके दरबार में हिन्दी पोषक वातावरण था। वे स्वयं बड़े निपुण संगीतज्ञ थे दूर-दूर के प्रवीण संगीतज्ञों का जमाव उनके दरबार में रहता था। सरकारी अभिलेखों से ज्ञात होता है कि उनके दरबार में हिन्दी संगीतज्ञ स्थायी और अस्थायी रूप से आकर रहे थे। ग्वालियर के लक्ष्मणदास और तंजौर के मंगम्भाल ने उन्हें हिन्दुस्तानी संगीत सुनाया था तथा उड़ीसा के नर्तक और नर्तकी उनके दरबार में स्थायी रूप से रहते थे और हिन्दी संगीत प्रस्तुत करते थे।

सोलह वर्ष की अवस्था से ही आप बड़ी चमत्कार पूर्ण रचनाएँ करने लगे थे। आपने संस्कृत में भी बड़ी प्रौढ़ रचनाऐं की है। "भक्ति मञ्जरी", "अजामिलोपाख्यानम्" और 'कुचेलोपाख्यानम्' आपके संस्कृत ग्रंथ केरल में अति प्रसिद्ध हैं। आप सूर, तुलसी एवं त्यागराज जैसे ही भक्त कवि हैं। आपने अपने हिन्दी पदों में अपने नाम की छाप नहीं लगाई है अपितु अपने इष्टदेव एवं कुलदेव "पद्मनाभ" के नाम की छाप लगाकर अपनी श्रद्धा, आस्था एवं विनय सम्पन्नता का परिचय दिया है। आप ललित कलाओं के पोषक थे संगीत आपको विशेष प्रिय था। आपने मलयालम में भी कीर्तन या पद लिखे हैं। अँग्रेज सरकार के राज्य में हस्तक्षेप करने के कारण आपने अन्तिम दिनों में सन्यास ले लिया था। चौंतीस वर्ष की अल्पायु में २५ दिसम्बर सन् १८४६ को आप परलोक वासी हुए।

आपके प्राप्त पदों की संख्या ३७ है जिनमें १ सरस्वती वन्दना, २ पद्मनाभ वन्दना, ३ शिव-भक्ति तथा ४ रामपरक पद हैं, शेष २७ पद कृष्ण परक हैं। कृष्ण परक पद लिखते समय कवि की दृष्टि कृष्ण भक्त कवियों की भाँति कृष्ण जीवन के सभी रसमय स्थलों पर गई है। किशोर और बालकृष्ण ही कवि के उपास्य हैं। अन्य कृष्ण भक्त कवियों की भाँति उन्हें तो कृष्ण के ललित और मधुर जीवन से काम है उनके राजनैतिक जीवन से भक्तों को क्या सरोकार। कृष्ण परक पदों में कवि की रूप विधायिनी तूलिकावत लेखनी से कृष्ण जीवन साकार हो गया है। आपकी उत्कृष्ट कवित्व प्रतिभा और संगीतमर्मज्ञता का सुन्दर उदाहरण इस श्लिष्ट पद रचना में मिलता है :—

"सोहनी स्वरूप कान्त मुख तेज दीप चन्द,
चले चाल विभास श्री मल्हार बन में।
मणिरंग गुण फुलवाण मन सो रटूँ कान्हड़ो,
स्वरूप लागे सारंग मन में।
गुजरी हिंडोल फूल जिससे अठान छोड़,
तरो ही स्वरूप श्याम ! पद्मनाभ तन में।

उपर्युक्त पद में साधारण अर्थ के अतिरिक्त कवि ने सोहनी, दीप, विभास, मल्हार, मणिरंग, कान्हड़ा, सारंग, गुर्जरी हिंडोल, अठाण और श्याम रागों के नामों की परिगणना करके अपने संगीत विषयक ज्ञान का परिचय भी दिया है। आपका प्रत्येक पद किसी न किसी राग से अनुप्राणित है।

आपकी भाषा पूर्णतः ब्रजभाषा है दो चार शब्द दक्खिनी हिन्दी के भी आ गये हैं जो नगण्य हैं। आपने संस्कृत के तत्सम शब्दों का भी प्रयोग किया है। अहिन्दी भाषियों को हिन्दी के लिंग वचन का ज्ञान प्राप्त करने में बहुत कष्ट होता है तदुपरान्त भी वे शब्द का ठीक लिंग वचन में प्रयोग करने में असमर्थ रहते हैं कविवर रामवर्मा के पदों में भी कतिपय लिंग वचन सम्बन्धी भ्रामक प्रयोग मिलते हैं। जैसे "मेरी दरद", "बाजन के पति बीन" आदि। आपकी भाषा में 'मौ' शब्द का प्रयोग 'में' के अर्थ में हुआ है यथा "हस्त कमल मौ वीण विराजै।" आपने 'के ऊपर" के अर्थ में "के पर" शब्द का प्रयोग किया है, 'फणिपुर के शाही" में यही अर्थ है। आपके पदों में एक दो स्थल ऐसे भी हैं जहां अर्थ स्पष्ट नहीं हो पाता हैं।

आपके पद चिदंबर बाध्यार की 'स्वाति तिरुनाल संगीत कृतिकल" नामक पुस्तक में प्राप्त हैं। रंगभागवतार की 'बालामृतम्' में भी कुछ पद प्राप्त होते हैं। ये पुस्तकें मलयालम लिपि में हैं। अतएव लिप्यंन्तरण में साधारण अशुद्धियाँ रह जाना सम्भव है क्यों कि मलयालम ए ऐ ऐ और ओ ओ औ तीन स्वर होतेहैं दूसरे मलयालम भाषी 'न'के स्थान पर 'ण' बोलने के अति अभ्यासी हैं इसलिए न के लिए 'ण' हो जाना अति स्वाभाविक है। कुछ संस्कृत शब्दों की वर्तनी (स्पेलिंग) ब्रजभाषा में बदल जाती है किन्तु संस्कृत से सीधे लेकर प्रयोग करने में उसमें कोई अन्तर कवि ने नहीं किया है। कुछ भी हो ये कतिपय त्रुटियाँ गुणों की तुलना में नगण्य हैं।

कविवर रामवर्मा के कीर्तन पदों को नीचे प्रस्तुत किया जा रहा है :—

सरस्वती वन्दना

(राग यमन कल्याणी)

जय जय देवि जग जननी जय जय सरस्वती माई।
जय जय भवानी जय शर्वाणी जय त्रिभुवन सुखदाई॥
तेरी ही माया अनन्त अपार न्यारा जाकू कोई नहीं पाई।
हस्त कमल मो वीण विराजे जामे सबै सुर गाई॥
दूसरे हाथ विराजत पुस्तक वेद श्रुति उपजाई।
तेरो रे रूप भयो सब विद्या सुर नर चरण मनाई॥
पद्मनाम-प्रभु-चरण सरोरुह सेवक के मन माई॥

पद्मनाम वन्दना

(राग कान्हड़ा)

देवन के पति इन्द्र, तारा के पति चन्द्र । विद्या के पति श्रीगणेश दुःख भार हरी ।।
राग पति कान्हड़ा, बाजन के पति बीन । ऋतुपति है वसंत रति सुख कारी ।।
मुनि जन पति व्यास पंछी पति हंस है । नरपति राम अवध बिहारी ।।
गिरपति हिमाचल, भूतन के पति महेस । तीन लोक पति श्री पद्मनाम गिरधारी ।।

(राग धनाश्री)

नन्द नन्द परमानन्द ब्रजभूमि पूर्ण चन्द्र । दर चक्रधर मुकुन्द कुन्द दन्त भज रे ।।
चिदानन्द मुनिवृन्द गावै तेरौ मान छन्द । सोहै भाल तिलक बिंद श्रीगोविंद धर रे ।।
नतामन्द करे बन्द जोडै हाथ शुक सनन्द । काटो मेरे दुरित फंद पद्मनाम-पद-रे ।।

राम परक पद

(राग काफी)

अवध सुखदाई अब बाजै बधाई ।
रतन सिंहासन ऊपर रघुपति सीता सहित सुहायौ ।
राम भरत सुमित्रानन्दन ठाड़े चामर चतुर डुलायौ ।
गाम गाम जन मंगल गावत, देवन बजायौ ।
राम, रावण मारे. असुर सबु मारे, राज विभीषण पायौ ।
मात कौसल्या करत आरती निज मन बांछित पायौ ।
राम पदमनाथ प्रभु ! फणि पर शायी त्रभुवन सुखकारी आयौ ।

(राग गौरी)

बजत बधाई नगरी रघुराई ।
धनुख बाण उठाबै लछमन ठाड़े नेरी, त्रिभुवन के सुखदाई ।
सरजू तीर बिहारी रति पति के समछाई जनक सुता के सहायो ।
पद्मनाथ हमारो शरण चरण तुम्हारो फणिवर के पर शायी ।

(राग भैरवी)

रामचन्द्र प्रभु ! तुम बिन कौन खबर ले मेरी ।
बाज रही जिनकी नगरी माँहि सदा धरम की भेरी ।
जाके चरण कमल की रज से तिरिया तन कूँ फेरी ।
औरन कूँ कछु और भरोसा हमें भरोसा तेरी ।
पद्मनाम प्रभु फणि पर शायी करो कृपा, क्यों देरी ।

कृष्ण भक्ति

(राग हमीर कल्पा)

रूप माधुरी

करुणा निधान कुञ्ज के बिहारी। तुम्हारी बंसी लाला मेरो मन हारी।
इस बंसी से सुर नर मुनि मोहे। मोह गई सारी ब्रज की नारी।।
जब श्याम सुन्दर का तन देखी। जनम जनम के मैं संकट तारी।।
मोर मुकट पीताम्बर सोहे। कुण्डल की छबि मैं बलिहारी।।
दशम स्कन्ध भागवत गावै। नख पर गोवर्धन गिरिधारी।।
पद्मनाथ प्रभु फणि पर शायी। दनुज कुल हरण नाथ मुरारी।।

विनय-पद

(राग-अठाण)

सुमरण कर जदुनाथ हरी के। वास कियो जिन धर्म दरो के।।
एक क्षण में केते पतित सिधारे प्यारे।
पीपा तारे, सुदामा तारे वेश्या तारे, अजामिल न्यारे।।
मीन कच्छ सूकर नरहरि प्रभु वामन रूप बलिमद हारे।।
शिव सनकादिक अज ब्रह्मादिक। जिन कूँ निस दिन मन में धारे।।
सात रात भर गिरवर धारौ। सो मन मोहन नन्द दुलारे।।
भज ले राम कृष्ण मधुसूदन। पुरुषोत्तम ब्रजराज मुरारे।।
जांबवंत राखे अघम उधारण। पद्मनाभ प्रभु नाथ हमारे।।

(राग-साल)

सोहनी स्वरूप कान्त मुख तेज दीपचन्द। चले चाल नट विभास श्रीमल्हार बन में।।
मणि रंग गुण फूल वाण ए मन सो रंटू कान्हडो। स्वरूप लागे सारंग मन में।।
गुजरी हिंडोल भूल जिससे अठान छोड़। तेरौ ही स्वरूप श्याम! पद्मनाभ तन में।।

(राग-झिंझोंटी)

कान्हा ने बजाई बांसुरी मन मोहे जिनसे। जब तब श्याम बजाई बांसुरिया ले।।
गई मेरी मन की करारी। कान्हा ने बजाई बांसुरी।।

(राग चर्चरी)

बाजत मुरली मुरारि सुन्दर जमुना किनारे। रास रंग ग्वाल बाल संग मदन प्यारे।।
टीक भाल प्रेमजाल लसत जैसे चन्द्रबाल। सांवरौ दया विशाल मुक्तमाल धारे।।
देव बन्द पद मुकुन्द मोहनो आनन्द वृन्द। गोपिका चकोर चन्द नन्द के दुलारे।।

कोटकांतन ललाम तीन लोक नाथ श्याम । गावत श्रुति जाके नाम भक्त उतारे ॥
तान मान सरसवान बीच बीच मधुर गान । श्री हरि कृपानिधान दनुज मान हारे ॥
गोपरूप ! दुरित कूप गमन तापहर ! प्रताप । पापरूप तिमिर दीप ! श्रीकलाप ! न्यारे ॥
मन उमंग भरे कुरंग, सुर नरेश मुनि विहंग । मोहत श्री पद्मनाभ भाव सूँ तुम्हारे ॥

वियोग शृंगार

(राग रेखता)

आन मिलौ महबूब हमारौ । होऊँ, तोरी दासी लाला नन्द कुंवर प्यारौ ॥
चुन चुन कलियाँ सेज बनाऊँ । सेज पलग रंग महल तुम्हारौ ॥
अतर अबीर गुलाब लगाऊँ । प्रेम कटारी से मो कूँ नहिं मारौ ॥
पद्मनाम प्रभु फणि पर शायी । कबहुँ नहिं मोकूँ नाथ बिसारौ ॥

उद्धव गोपी संवाद

ऊधौ सुनिए मेरी सन्देस । चले जब से पिया परदेस ॥
गौवां तृण नीर त्याग कीन्हो । सब ग्वाल बाल शोच कीन्हों ॥
जल जमुन नहिं भावै । घडी भर कुञ्ज कुम्हलावै ॥
हाथे मुरली गले माला । चले जब नन्द के लाला ॥
मोहे ब्रज के जो नर नारी । भूले कैसे मो कूँ बनवारी ॥
जब लीनो जनम ब्रज में । हरौ सब ताप क्षण भर में ॥
ऐसे प्रभु के वियोग सहे । कैसे हम कूँ सो छोडि रहे ॥
जाकी महिमा पुकारे वेद । जा कूँ नहिं लोक लोक विभेद ॥
जा के बल से हिले तनुभूत । ताके मुखचन्द्र से कर दूत ॥

(राग-विहाग)

सुनो सखि मेरी दरद री ।
जब फिरती में रङ्ग-महल में । सेज पलंग पर तडके जाती ॥
वेला चमेली दाना मरुवा । चंपई गुलाब की हार बनाती ॥
जैसे जल बिन तरसत पंछी । तरस रही मेरो पिय बिन छाती ॥
सोवत नाहि लगे गोरी निद्रा । बीच बीच पिया कूँ बुलाती ॥
निस दिन भर भर चोवा रे चंदन । अतर अरगजा अङ्ग लगाती ॥

◆

गुप्तकाल में भारतीय सभ्यता का चरमोत्कर्ष

[लेखक—श्री वृन्दावनदास]

गुप्त वंश के संस्थापक का नाम श्रीगुप्त था । श्रीगुप्त समस्त गुप्त सम्राटों और राजाओं के आदि पुरुष थे । श्रीगुप्त एक प्रतापी राजा हुए हैं, उनके द्वारा स्थापित इस राजवंश ने चौथी शताब्दी में बड़ी उन्नति की । इतिहास में श्रीगुप्त के शासन का वृत्तान्त विशेष रूप से उपलब्ध नहीं है ।

श्री गुप्त के पुत्र का नाम घटोत्कच था । घटोत्कच के पुत्र चन्द्रगुप्त प्रथम का पाटलिपुत्र के राज सिंहासन पर चौथी शताब्दी के आरम्भ में आविर्भाव हुआ । चन्द्रगुप्त ने ३०८ ई० के लगभग लिच्छवि वंश की राजकुमारी कुमार देवी के साथ विवाह किया । इस विवाह से दो राज्य शक्तियों का महत्वपूर्ण सम्मेलन हो गया और इससे चन्द्रगुप्त प्रथम की शक्ति बहुत बढ़ गई । उन्होंने तिरहुत, दक्षिण बिहार, अवध और आस-पास के प्रदेशों पर अपना आधिपत्य स्थापित किया । चन्द्रगुप्त की विजयों ने मगध राज्य को उसका वह गौरव पूर्ण स्थान प्राप्त करा दिया जो उसे सम्राट अशोक के समय में प्राप्त था । सन् ३२० ई० में चन्द्रगुप्त प्रथम ने महाराजाधिराज की उपाधि धारण की और एक महान् यज्ञ किया जिसके उपलक्ष में उन्होंने गुप्त सम्वत् चलाया जो कई शताब्दियों तक कई प्रदेशों में चलता रहा। यद्यपि गुप्तवंश के प्रवर्तक महाराज श्री गुप्त थे परन्तु गुप्त साम्राज्य का आरम्भ चन्द्रगुप्त प्रथम के राज्य काल से ही होता है । ऐसा प्रतीत होता है कि चन्द्रगुप्त प्रथम की मृत्यु ३३० ई० में हो गई ।

समुद्र गुप्त

चन्द्रगुप्त प्रथम के देहावसान के उपरान्त उनके पुत्र युवराज समुद्रगुप्त जो लिच्छवि वंश की राजकन्या कुमार देवी से उत्पन्न थे उनके उत्तराधिकारी हुए । समुद्रगुप्त ने अनेकों युद्ध करके अपने राज्य का बड़ा विस्तार किया । अनेकों राजा महाराजाओं ने उनकी वश्यता स्वीकार करली और उनको अपना अधिपति माना । जिन राजाओं ने युद्ध की ठानी वे रणभूमि में पराजित हुए और उन्हें अपने राज्य से हाथ धोना पड़ा, ऐसे राजाओं के राज्य समुद्र गुप्त ने अपने राज्य में मिला लिये ।

समुद्र गुप्त के राज्य काल में पंजाब में बहुत से स्वतन्त्र गण-राज्य थे जिनके निवासी युद्ध प्रिय थे । इन गण-राज्यों ने सिकन्दर की सेनाओं का बड़ी बहादुरी से सामना किया था । समुद्रगुप्त ने इन सब गण-राज्यों को जीतकर अपने राज्य में मिला लिया । समस्त उत्तरी भारत को अधिकार में करके समुद्र गुप्त ने दक्षिण की ओर अपना पग बढ़ाया । उन्होंने

अल्प काल में ही समुद्र पर्यन्त सम्पूर्ण दक्षिण प्रदेश पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया। कवि हरिषेण की प्रशस्ति में इन नौ राजाओं के नाम एक शिला लेख पर खुदे हुए मिले हैं जिनको समुद्र गुप्त ने रणक्षेत्र में परास्त किया था। सन् ३३० ई० से लेकर सन् ३५० ई० तक बीस वर्ष में समुद्रगुप्त ने समस्त भारत में दिग्विजय करके अपना चक्रवर्ती साम्राज्य स्थापित किया। समुद्रगुप्त ने "नौ राजाओं को उत्तर में और ११ राजाओं को दक्षिण में हराया था।" समुद्रगुप्त का राज्य पश्चिम में यमुना तट से लेकर पूर्व में हुगली के किनारे तक और उत्तर में हिमालय से लेकर दक्षिण में नर्मदा तक फैला हुआ था। आसाम, बंगाल नेपाल, कमाऊँ और पंजाब के राजाओं ने उनकी अधीनता स्वीकार करली थी। दक्षिण की विजयों के उपरान्त सम्राट समुद्रगुप्त ने एक बहुत बड़ा अश्वमेध यज्ञ किया।

अश्वमेध तथा धार्मिक सहिष्णुता

इस यज्ञ में लाखों ब्राह्मणों को भोजन कराया गया और प्रचुर मात्रा में धन धान्य पुण्य में दान किया गया। अश्वमेध की स्मृति स्थिर करने के लिए मुद्रा ढाली गई, यज्ञ के सिक्के अनेक अजायबघरों में आज भी संचित निधि की भांति विद्यमान हैं। सम्राट समुद्रगुप्त परम भागवत वैष्णव धर्म के अनुयायी थे तथा हिन्दू परम्परा के अनुसार उनके राज्य में महान् धार्मिक सहिष्णुता व्याप्त थी। उन्होंने लंका के बौद्धराज मेघवर्ण को बोध गया में एक बुद्धमठ बनाने की स्वीकृति तुरन्त दे दी। यह मठ बड़ा शानदार था और कई शताब्दियों तक स्थिर रहा। चीनी यात्री युवानच्वांग का कथन है कि इस मठ में सहस्त्रों भिक्षु निवास करते थे। समुद्र गुप्त के राज्य में यद्यपि ब्राह्मण धर्म की प्रधानता थी तथापि बौद्ध और जैन धर्म भी निष्कंटक रूप से प्रचलित थें, जनता को धार्मिक जीवन में किसी प्रकार की बाधा का अनुभव न करना पड़ता था।

कला और साहित्य

समुद्रगुप्त के राज्य में राजधानी पाटलिपुत्र से उठकर अयोध्या आगई। अयोध्या को साम्राज्य की राजधानी के लिए पाटिलपुत्र की अपेक्षा अधिक उपयुक्त और सुरक्षित समझा गया। यद्यपि गुप्त काल में पाटलिपुत्र का महत्व कम हो गया तथापि वह एक महान् नगर था। गुप्तकाल में अयोध्या नगरी विभव शालिनी हुई।

कवि हरिषेण ने समुद्रगुप्त पर जो प्रशस्ति लिखी है उसमें सम्राट के विषय में लिखा है है कि वे स्वयं एक महान् संगीताचार्य थे, उनके दरबार में संगीतज्ञों और विद्वानों को प्रश्रय मिलता था। बहुत सी मुद्राओं में राजा की सितार बजाते हुए आकृति विद्यमान हैं। हरिषेण के अनुसार सम्राट समुद्रगुप्त के राज दरबार में शास्त्र और काव्य चर्चा प्रचुर मात्रा में हुआ करती थी और विद्वानों को प्रत्येक प्रकार का प्रोत्साहन राज्य की ओर से उपलब्ध था। समुद्रगुप्त के काल में विद्या, संगीत और कला की सर्वतोमुखी उन्नति हुई।

चन्द्रगुप्त द्वितीय

लगभग ४५ वर्ष राज्य करने के उपरान्त सन् ३७५ ई० में सम्राट समुद्र गुप्त का देहान्त हो गया। सम्राट समुद्रगुप्त के पीछे उनके पुत्र चन्द्रगुप्त द्वितीय का राज्य काल सन् ३७५ ई० से सन् ४१३ ई० तक अर्थात् लगभग ३८ वर्ष रहा। ये महान् प्रतापी हुए और अपने पराक्रम के कारण इन्होंने विक्रमादित्य की उपाधि धारण की। इतिहासकारों का कहना है कि भूतकाल में मालवा की उज्जयिनी नगरी में विक्रम नाम के एक अति पराक्रमशाली, धर्मात्मा, न्यायशील, नर पुङ्गव सम्राट हो गये हैं जिनकी चर्चा बहुतायत से जनश्रुति में चली आती है। उनका व्यक्तित्व इतना महान् था कि बाद की पीढ़ियों में कई प्रतापी सम्राटों ने यशोपार्जन की दृष्टि से अपने नाम के आगे विक्रमादित्य शब्द का प्रयोग किया। ये शब्द पूर्ववर्ती विक्रम के यश और गौरव का द्योतक था। चन्द्रगुप्त द्वितीय बड़े सच्चरित्र संस्कृत के विद्वान तथा विष्णु के उपासक थे। वे कवियों तथा विद्वानों का बड़ा आदर करते थे। इन्होंने सन् ३८८ से सन् ४०१ तक तेरह वर्षों में निरन्तर युद्ध करके सम्पूर्ण भारत पर अपना साम्राज्य स्थापित कर दिया। मालवा, सौराष्ट्र और गुजरात के शासकों को फिर से परास्त कर इन प्रदेशों को पूर्णतः अपने राज्य में मिला लिया। शकों ने सम्राट समुद्रगुप्त का आधिपत्य स्वीकार न किया था परन्तु चन्द्रगुप्त द्वितीय ने शक महाक्षत्रपों को परास्त किया और इस कारण वे शकारि विक्रमादित्य प्रसिद्ध हुए। विक्रमादित्य ने सत्यसिंह के पुत्र रुद्रसिंह की हत्या करके भारत में शकों के शासन को सदा के लिए समाप्त कर दिया।

चीनी यात्री फहियान

विक्रमादित्य के समय में चीनी यात्री फाहियान सन् ४०५ ई० से सन् ४११ ई० तक तक भारत वर्ष में रहा। इस यात्री के भारत आने का अभिप्राय बौद्ध कथाओं की आश्चर्यमयी घटनाओं और रहस्यों की जानकारी करना था। वह स्वयं बौद्ध था और उसने यहाँ सबसे पहिले पाटलिपुत्र में बने अशोक के महल के समीप एक मठ में संस्कृत विद्या सीखी। यह मठ भी अशोक का बनवाया हुआ था और इसमें फाहियान ने तीन वर्ष पर्यन्त संस्कृत का अध्ययन किया फाहियान ने यद्यपि सम्राट के सम्बन्ध में कुछ नहीं लिखा है परन्तु तत्कालीन समाज और उसकी व्यवस्था पर फाहियान की लेखनी से विशद प्रकाश पड़ता है। उसने जनसाधारण के विषय में लिखा है कि वे प्रसन्न तथा समृद्धशाली थे। उसने अनेकों चिकित्सालयों का उल्लेख किया है जिनमें सहस्त्रों रोगियों की निःशुल्क चिकित्सा की जाती थी। राज्य प्रबन्ध दया तथा कोमलता से पूर्ण था। फाहियान के चित्रण का सार निम्नलिखित शब्दों में मनोरंजक प्रतीत होगा, "लोग बड़े अच्छे हैं तथा राज दण्ड इतना मृदु है कि किसी को कष्ट नही पहुँचता। प्राण दण्ड किसी को मिलता ही न था और बहुत से अपराधों के लिए केवल अर्थ दण्ड दिया जाता था अपराध स्वीकार कराने में किसी को भी शारीरिक यातना न दी जाती थी राजद्रोहियों का बार बार द्रोह करने पर एक हाथ काट दिया जाता था। सरकारी आय का मुख्य

ओत भूमि का लगान था। राजकर्मचारियों को उचित वेतन मिलता था और वे भ्रष्टाचार में कतई रत न थे। भारत भर में कोई किसी जीव जन्तु का बध नहीं करता था। लोग न तो मद्यपान करते और न प्याज और लहसुन का सेवन करते। भारतीय लोग मुर्गा व शूकर नहीं पालते थे और न उनकी हत्या किये जाने के लिए उनका विक्रय करते थे। चाण्डाल लोग ही केवल मद्यपी और मांसाहारी थे और वे नगर के बाहर बस्ती में रहते थे। जब वे नगर में आते तो किसी प्रकार का काष्ट बजाते हुए आते जिससे लोग उनसे छू न जांय। सड़कों पर किसी प्रकार की लूटमार नहीं होती थी। फाहियान का कहना है कि उसे उसकी भारतवर्ष में ठहरने की अवधि में कभी किसी ने कोई कष्ट नहीं पहुँचाया। सिक्कों में कौड़ियों का चलन अधिक था। धार्मिक सहिष्णुता थी, राजा किसी के साथ पक्षपात न करता था। सब धर्मावलम्बियों को अपने-अपने धर्म के अनुसार भजन पूजन का पूर्ण अधिकार था। कोई व्यक्ति अपने धार्मिक अनुष्ठान में किसी प्रकार का बन्धन या नियन्त्रण अनुभव न करता था। सम्राट की ओर से बौद्ध मठों को भी मुक्त हस्त से आर्थिक सहायता दी जाती थी। राजा और जन साधारण की उदारता के कारण भिक्षुओं को किसी प्रकार का कष्ट न था।”

एक विदेशी बौद्ध द्वारा गुप्त काल के ऐसे सुन्दर और गौरव पूर्ण वर्णन से यह सिद्ध हो जाता है कि गुप्तवंश के सम्राटों ने हिन्दू आदर्श और परम्पराओं को पूर्ण रूप से निबाहा और उनका उज्वलतम रूप संसार के आगे रक्खा। वस्तुतः उनके द्वारा प्रचलित परिपाटी मौलिक थी और उसका शाश्वत रूप इस बात से सिद्ध हो जाता है कि बहुत अंशों में वह आज तक चली आती है।

संस्कृत-साहित्य

मौर्योत्तर काल में संस्कृत साहित्य का विकास आरम्भ हुआ। शनैः शनैः यह उन्नति गुप्तकाल में चरम सीमा को पहुँच गई। भास और शूद्रक आदि महान् कवियों ने काव्य की ओर नाटक में एक परम्परा को जन्म दिया था। गुप्त-काल में कालिदास और विशाखदत्त आदि कवियों ने उसे परमोत्कर्ष पर पहुँचा दिया। संस्कृत का सबसे महान कवि कालिदास चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य के नवरत्नों में से एक था। महाकवि कालिदास के लिखे हुए ग्रन्थ संस्कृत साहित्य के जाज्वल्यमान् रत्न हैं। वस्तुतः उनकी तुलना विश्व के सर्वोच्च ग्रन्थों में की जा सकती है। बहुत से विद्वानों का मत है कि कालिदास द्वारा प्रणीत साहित्य विश्व-साहित्य में अतुलनीय है। कालिदास के लिखे हुए ऋतु संहार, मालविकाग्निमित्र, कुमार सम्भव, मेघदूत, शकुन्तला और रघुवंश आज भी उपलब्ध हैं। प्रसाद आदि गुणों और उपमा आदि अलंकारों की दृष्टि से ये ग्रन्थ संस्कृत काव्य में सर्वोत्कृष्ट हैं। विश्व भर के साहित्यकार कालिदास को संसार का सर्वश्रेष्ठ कवि मानते हैं। जबतक संस्कृत साहित्य का संसार में अध्ययन होता रहेगा कालिदास का नाम “यावच्चन्द्र दिवाकरौ” अमर रहेगा। कालिदास के ग्रन्थों पर गुप्तकाल की गौरवमयी महिमा की अमिट छाप है। यदि कालिदास गुप्तकाल जैसे शानदार युग में जन्म न लिए होते उनकी रचनाऐं भी इतनी उत्कृष्ट न होती।

विक्रमादित्य के नवरत्न

कालिदास के अतिरिक्त चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य के आठ रत्न और थे। उनमें से कुछ के नामों का उल्लेख आवश्यक है, कारण इन महान् व्यक्तियों ने अपनी प्रतिभा से देश को जगमगा दिया और यह उनकी सामूहिक योग्यता, दक्षता और चरित्रबल का ही परिणाम था कि गुप्तकाल में भारतवर्ष की सर्वाङ्गीण उन्नति हुई।

अमर कोष के निर्माता अमरसिंह का जन्म भी गुप्तकाल में हुआ था। यह बौद्ध धर्म का अनुयायी था। अमर कोष संस्कृत के विद्यार्थियों में बहुत लोकप्रिय था। उसकी उपयोगिता सर्वविदित है।

धन्वंतरि नाम के एक महान् वैद्यराज भी विक्रमादित्य के नवरत्नों में से एक थे। परन्तु यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि यह वही वैद्यराज थे जिन्हें वैद्य आयुर्वेद का देवता अथवा अधिष्ठाता मानते हैं। धन्वंतरि आयुर्वेद के प्रथम प्रधान आचार्य के रूप में माने जाते हैं। आयुर्वेद का एक ग्रन्थ जिसका नाम नवनीतकम् है और जो चरक, सुश्रुत, हारीत जातुकर्ण, क्षार पाणि और पाराशरसंहिता का सार प्रतीत होता है पूर्वी तुर्किस्तान में मिला है, यह ग्रन्थ गुप्त-काल में लिखा गया प्रतीत होता है।

प्रसिद्ध ज्योतिषी वराह मिहिर भी चन्द्रगुप्त द्वितीय के नवरत्नों में से थे। इनके द्वारा लिखित ग्रन्थों के नाम हैं पंचसिद्धान्तिका, वृहज्जातक, वृहत्संहिता और लघुजातक। वराह मिहिर की पुस्तकों में फलित ज्योतिष की विस्तार से चर्चा की गई है। प्रसिद्ध मुसलिम विद्वान् अलबरूनी ने वृहत्संहिता और लघुजातक का अरबी भाषा में अनुवाद किया था। गुप्तकाल में ज्योतिष के अन्य ग्रन्थों की भी रचना हुई जिनमें सूर्यसिद्धान्त का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इसके लेखक का नाम अज्ञात है। भारतीय ज्योतिषी इस ग्रन्थ को प्रामाणिक मानते हैं तथा इसका उनके द्वारा बहुत उपयोग किया जाता है।

प्रसिद्ध वैज्ञानिक आर्य भट्ट भी चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के नवरत्नों में से एक था। वह एक महान् गणितज्ञ था और दशमलव प्रणाली का प्रवर्तक था। अलबरूनी का कथन है कि दशमलव के सिद्धांत का आविष्कार हिन्दुओं ने किया। अरबों ने इसे हिन्दुओं ने सीखा। अरबों से इस सिद्धांत को ग्यारवीं सदी में यूरोप वालों ने सीखा। आर्यभट्ट का ग्रन्थ आर्यभट्टीयम् बड़ा महत्वपूर्ण है। इसमें अङ्कगणित, बीजगणित और रेखागणित के अनेक सिद्धान्तों और सूत्रों का प्रतिपादन किया गया है। आर्यभट्ट ज्योतिष का भी महान् ज्ञाता था। प्रसिद्ध ज्योतिषाचार्य निःशङ्कु स्वामी, पांडुरंग और आर्य-भट्ट लाटदेव आर्यभट्ट के शिष्यों में थे। आगे चलकर लाटदेव बहुत प्रसिद्ध हुए। ज्योतिषियों ने इनको सर्वसिद्धान्त गुरु की उपाधि दी। इन्होंने पौलिस और रोमक सिद्धान्तों की व्याख्या बड़े विशद रूप से की थी। सूर्य और चन्द्र का ग्रहण राहु और केतु के ग्रसने के कारण होता है इस धारणा का खण्डन सबसे पहिले आर्यभट्ट ने ही कर दिया था। उन्होंने यह सिद्ध कर दिया था कि ग्रहण पृथिवी की छाया के कारण होते हैं। आर्यभट्ट के प्रतिपादित ज्योतिष-सिद्धान्त आधुनिक वैज्ञानिकों

के निष्कर्षों के अति निकट हैं, अर्थात् जिन तथ्यों को वैज्ञानिक आज घोषित करते हैं आर्यभट्ट ने उनका दिग्दर्शन अपने काल में ही कर दिया था।

शासन पद्धति

मौर्यकाल और उसके कुछ समय बाद तक पुराने जनपदों की सत्ता के स्मृति चिह्न अवशिष्ट थे। जनपदों की अपनी शासन-प्रणालियाँ थीं और उनके धर्म, चरित्र और व्यवहार पृथक् रूप से थे। इनके न कोई पृथक् राजा थे और न सेनायें थीं। परंतु गुप्तकाल में सामंत पद्धति का विकास हुआ। गुप्तकाल में छोटे और बड़े सब प्रकार के सामन्त थे और वे अपनी-अपनी सेनाएँ रखते थे। गुप्त सम्राटों ने इन सामन्तों को जीतकर अपने अधीन तो कर लिया परन्तु उनके स्वतन्त्र अस्तित्व को समाप्त न किया। शक, यवन कुषाण आदि विदेशियों के आक्रमणों से जो अशान्ति और अव्यवस्था उत्पन्न हो गई थी वही इस पद्धति की जननी थी। सामन्त लोग वंशक्रम के अनुसार अपने-अपने प्रदेश में स्वतन्त्र रूप से राज्य करने लगे। बहुत-से महत्वाकांक्षी शासकों ने अशान्ति का लाभ उठाया और अपने बाहुबल से अपने राज्य का विस्तार किया। गुप्त सम्राटों ने इन छोटे बड़े राजाओं और सामन्तों को समाप्त नहीं किया वरन् अपनी वश्यता स्वीकार करने को बाध्य किया। गुप्त सम्राटों ने कुछ राजाओं को हरा कर उनका राज्य अपने राज्य में मिला लिया और कुछ को आधिपत्य स्वीकार कर लेने पर वैसे ही छोड़ दिया। परिणामतः गुप्तकाल में एक बड़े साम्राज्य की स्थापना हुई जो कई शताब्दियों तक चली।

गुप्तकाल में और उसके बाद तक प्रत्येक सम्राट महाराजाधिराज परम भट्टारक, परमेश्वर कहलाता था। कभी-कभी सम्राट राजाधिराज चक्रवर्ती और परमदैवत भी कहलाते थे। साम्राज्ञी को महादेवी और युवराज को कुमार अथवा भट्टारक कहते थे। महासामन्त और महाराज अपने-अपने राज्यों में स्वतन्त्र रूप से शासन करते थे परन्तु उन्हें सम्राट महाराजधिराजा की सहायता करनी पड़ती थी। ये लोग सम्राट के दरबार में उच्च पदों पर भी नियुक्त किये जाते थे और कभी सेनाओं के सेनापति भी होते थे।

कुमारगुप्त प्रथम

सन् ४१३ ई० में महाराज चन्द्रगुप्त द्वितीय की मृत्यु हो गई। उनके बाद उनके पुत्र कुमारगुप्त प्रथम राज्यसिंहासन पर बैठे। कुमारगुप्त प्रथम का राज्य सन् ४१३ ई० से ४५५ ई० पर्यन्त रहा। इनके राज्य में गुप्त साम्राज्य को किसी प्रकार की हानि न हुई वरन् कुछ समृद्धि ही हुई। कुमार गुप्त ने भी अश्वमेघ यज्ञ किया। इनके राज्य में सन् ४५० ई० में पुष्यमित्रों से जो कि नर्मदा के तट पर रहने वाली एक जाति थी बड़ा भयङ्कर युद्ध हुआ, पहिले तो ऐसा प्रतीत हुआ कि पुष्य मित्रों की विजय हो जायगी और गुप्त साम्राज्य अस्त व्यस्त हो जायगा परन्तु कुमार स्कन्दगुप्त के अद्भुत पराक्रम द्वारा पुष्य मित्रों की पराजय हुई। उन्होंने अपने पिता के राज्य को बचा लिया।

स्कंद गुप्त

अपने पिता की मृत्यु के उपरांत सन् ४५५ ई० में महाराज स्कन्ध गुप्त राज्य सिंहासन पर आरूढ़ हुए। इन्होंने ४८० ई० पर्यन्त राज्य किया। सिंहासनारूढ़ होते ही महाराज को हूणों से युद्ध करना पड़ा। हूण लोग टीढ़ी दल के सदृश मध्य एशिया से भारत की ओर आये। ये शारीरिक स्थिति में बलवान् परन्तु असभ्य एवं जङ्गली जाति के लोग थे। सम्राट स्कन्दगुप्त स्वयं बड़े प्रवीण और शूरवीर थे। वे युद्ध विद्या में पारंगत थे। अपने पिता के राज्य में उन्होंने पुष्यमित्रों की एक बड़ी सेना को हराया था। उन्होंने हूणों को करारी हार दी और कुछ वर्षों के लिए भारत को इस बर्बर जाति से मुक्ति मिली। स्कन्द गुप्त ने गोरखपुर के भीतरी नामक ग्राम में हूणों की पराजय के उपलक्ष में एक विजय स्तम्भ का निर्माण कराया। स्कन्द गुप्त ने सौराष्ट्र को पुनः जीता।

यद्यपि हूण कई बार स्कन्द गुप्त द्वारा पराजित हुए परन्तु वे तो टीढ़ी दल के सदृश थे। वे बराबर भारत पर आक्रमण करते ही रहे। उन्होंने भारतीय जनता पर बड़े भीषण और अमानुषिक अत्याचार किये। स्कन्धगुप्त को उनसे निरन्तर युद्ध करना पड़ा और युद्ध करते-करते उनका समस्त कोष रिक्त हो गया। हूणों के एक सरदार तोरमाण ने महाराज की उपाधि धारण कर मालवा में अपना राज्य स्थापित कर लिया। तोरमाण सन् ५०० ई० में मर गया और उसके बाद उसका पुत्र मिहिर गुल गद्दी पर बैठा। वह बड़ा दुष्ट और अत्याचारी था।

बालादित्य

स्कन्द गुप्त निःसन्तान थे। सन् ४८० ई० में उनकी मृत्यु होगई। उनके बाद उनके भाई पुरु गुप्त राजा हुए। पुरु गुप्त ने ५ वर्ष राज्य किया और सन् ४८५ ई० में उनकी मृत्यु के उपरांत उनके पुत्र नरसिंह गुप्त बालादित्य राज्य सिंहासन पर बैठे। बालादित्य ने सन् ५३५ ई० पर्यन्त ५० वर्ष तक राज्य किया। उन्होंने मध्य प्रदेश के राजा यशो धर्मन से संधि कर हूण सरदार मिहिरगुल पर चढ़ाई करदी और सन् ५३१ ई० में उसे पूर्ण रूप से परास्त कर बन्दी बना लिया। इतिहासकार हूणों की पराजय का सम्पूर्ण श्रेय बालादित्य को देते हैं परन्तु यशोधर्मन ने भी इस विजय के उपलक्ष्य में एक स्तूप बनवाकर अपनी कीर्ति फैलाई। बालादित्य ने शत्रु पर दया करके उसे बन्धन मुक्त कर दिया और उसे हूण देश की ओर निर्वासित कर दिया। मिहिरगुल ने प्रपंच से काश्मीर हड़प लिया और गांधार का राजा बन बैठा।

कुमार गुप्त (द्वितीय)

सन् ५३५ ई० में बालादित्य का देहान्त हो गया। कुमार गुप्त उनके उत्तराधिकारी हुए इनके काल में यद्यपि साम्राज्य समाप्त हो गया था परन्तु राज्य चलता रहा। कुमार गुप्त द्वितीय ने विदेशों से धार्मिक सम्बन्ध स्थापित किये। उन्होंने प्राचीन ग्रन्थों की खोज कराई और विद्वानों

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

को विदेशों में भेजा। परमार्थ नाम के एक ब्राह्मण ने चीन में बहुत से ग्रन्थों का अनुवाद किया।

वस्तुतः गुप्त सम्राज्य का अन्त तो सन् ४८० ई० में सम्राट स्कन्द गुप्त की मृत्यु के बाद ही हो गया। सन् ५५३ ई० में १८ वर्ष राज्य करने के बाद कुमार गुप्त का देहान्त हो गया। इस राजा की मृत्यु के साथ गुप्त वंश का राज्य भी एक तरह से समाप्त हो गया। इसके बाद ऐसा प्रतात होता है कि इस वंश के लोग मगध और मालवा में पृथक् रूप से छोटे छोटे राजाओं के रूप में राज्य करते रहे।

गुप्त कालीन सामाजिक दशा

संदर्भ रूप से ऊपर लिखा जा चुका है कि गुप्त काल में सामाजिक दशा बड़ी समुन्नत थी। चौथी सदी में गुप्त सम्राटों द्वारा भारत में एक विशाल साम्राज्य की स्थापना हुई। राजनीतिक दृष्टि से उस काल में यह देश एकता के सूत्र में बँध गया। गुप्त सम्राटों के शासन काल में इस देश ने असाधारण उन्नति की और इस कारण से यह युग भारतीय इतिहास में स्वर्ण युग कहलाता है। प्रसिद्ध अङ्गरेज इतिहासकार विसेंट स्मिथ का कथन है "पूर्वीय शासन पद्धति में चन्द्र गुप्त विक्रमादित्य के पीछे ऐसा सुन्दर राज्य शासन भारत में फिर कभी न हुआ। बौद्ध धर्म की अहिंसा और दया का विस्तार चहुँ ओर था किन्तु हिन्दू सम्राट होने के कारण बोद्धों और जैनों को कभी यह अनुभव न हुआ कि उनके धर्म पालन में किसी प्रकार का हस्तक्षेप हो रहा है। प्रजा सुखी थी अपने धर्म का चयन और पालन करने में पूर्णरूपेण स्वतन्त्र थी।" जैसाकि फाह्यान ने लिखा है यज्ञों का प्रचलन था और सम्राट परम भागवत वैष्णव धर्म का पालन करने वाले थे परन्तु वे बौद्ध मठों को प्रचुर मात्रा में धन दिया करते थे दीनों असहायों की सहायता उनके धर्म का विचार किये बिना ही सरकार द्वारा यथेष्ट परिमाण में होती थी।

हिन्दू राज्य के अनेक गुणों के कारण बौद्ध और जैन धर्मों का ह्रास होने लगा। जनता शासन के सुप्रबन्ध से सुखी थी और वह हिन्दू शास्त्रीय परम्पराओं में जो उसे अधिक रुचिकर प्रतीत हुई अत्यन्त निष्ठा रखने लगी। बौद्ध और जैन धर्म में व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का विरोध था जो जन-साधारण को ग्राह्य न हुआ।

गुप्त काल में धर्म और साहित्य के साथ कला की भी बड़ी उन्नति हुई। गुप्त काल के भग्नावशेष इस बात के सूचक हैं। गुप्त काल में भारतीय प्रतिभा खूब विकसित थी। गोरखपुर जिले के भीतरी गाँव में मिट्टी की मूर्तियाँ तथा बनारस के पास सारनाथ तथा दूसरे स्थानों पर बने मंदिर के अवशेषों में प्राप्त मूर्तियों की कला बड़े उच्च प्रकार की है। समुद्र गुप्त के समय का लोहे का स्तम्भ तत्कालीन निपुणता का परिचायक है। गुप्त काल में बनी गुफाओं के भीतर प्रदर्शित चित्रकारी अलौकिक है। ये गुफाएँ अजन्ता ऐलोरा में हैं और चट्टानों को काट कर बनाई गई हैं। इन गुफाओं की चित्रकारी को देखकर गुप्त कालीन चित्रकारों की प्रतिभा का अनुमान लगाया जा सकता है।

"भारतवर्ष का इतिहास" नामक रचित अपने ग्रन्थ में मिश्रबन्धुओं ने लिखा है, " भारत में बुद्ध और जैन मतों के निर्मूल होने का कारण गुप्तकालीन उच्च शासन प्रणाली तथा उनके सुन्दर स्वभाव थे। कई शताब्दियों पीछे हिन्दुओं की मानसिक, साहित्यिक एवं अन्य प्रकार की उन्नति इसी समय में हुई, यह सनातन आर्य धर्म तथा भारतवर्ष गुप्त सम्राटों का सदा के लिए ऋणी रहेगा।

गुप्त काल में हिन्दुओं ने लंका, बर्मा, स्याम, कम्बोडिया, मलय प्रायद्वीप, अनाम, और पूर्वी द्वीप समूह में उपनिवेश स्थापित कर अपनी संस्कृति का प्रसार किया। बाली द्वीप में अब भी बहुतसा ऐसा साहित्य मौजूद है जिसमें धर्म, राजनीति कला सम्बन्धी अनेकों ग्रन्थ हैं। इन ग्रन्थों में ब्राह्मण और बौद्ध दोनों धर्मों के तत्व हैं।

गुप्त काल में व्यापार भी सुदूर देशों से होता था। जलयानों द्वारा दूर २ से माल आता और भारत से जाता था। इस समय के यूनानी और रोमन लेखकों के आधार पर यह स्पष्ट है कि भारत के तट पर अच्छे अच्छे बन्दरगाह थे जिनके द्वारा पश्चिमओर पूर्व से समुद्री व्यापार प्रचुर मात्रा में होता था।

राधा-सरस्वती-वन्दना

(महाकवि ग्वाल)

बीन कर वर हंस कलित बखानियत,
कीरति तनैया सुर गावत मुनीसुरी।
धुनि रूप मुख चंद प्रसिधि प्रमानियत,
जलजन माल म्रदुलता बिसै बोसुरी।।
ग्वाल कवि निगम पुरान को अधार कहैं,
सुन्दर तरंग करि सकै को कबीसुरी।
बरनै विसेस कवि पावत नहीं है थाह,
संपति भरैया महा राधा जगदीसुरी।।

प्रेषक—भगवान सहाय पचौरी 'भवेश' एम. ए. कृष्णापुरी, मथुर

महाकवि ग्वाल का नीति परक काव्य

[ले० श्री भगवानसहाय पचौरी 'भवेश', एम० ए०]

नीति साहित्य की सर्जना में भारतीयों के समकक्ष विश्व की कोई जाति नहीं ठहरती। हिन्दी साहित्य के इस अंग की समृद्ध अवस्था की सम्पुष्टि डा० विण्टरनिट्ज प्रभृति विदेशी विद्वानों ने भी की है। हिन्दी का स्वर्ण युग मध्य काल नीति काव्य के पुष्पित और पल्लवित होने की पर्याप्त उर्बरता रखता है। गुरु गोरख नाथ, कबीर आदि सन्त कवि सूर, तुलसी प्रभृति भक्त कवि गङ्ग, रहीम वृन्द, गिरधर, दीनदयाल गिरि, बाकी दासी, बुधजन, हरिऔध, रामचरित उपाध्याय दुलारे लाल भार्गव आदि के व्यङ्ग, अन्योक्त, उपदेश श्रेष्ठ नीति काव्य की श्रेणी में गिने जाते हैं। इनमें से गिरधर, दीनदयाल गिरि आदि कुछ कवियों ने तो केवल चुटीली अन्योक्तियाँ लिखकर ही अमरता प्राप्त की और आज तक जनप्रियता की चोटी पर हैं। इतर अन्य लब्ध प्रतिष्ठ प्रबन्धकार कवियों ने यथावसर नीति और उपदेशों की राशियाँ काव्य में विकीर्ण की हैं नीति परक काव्य सर्जना रीति काव्य की तो एक अपरिहार्य अनिवार्य विशिष्ट प्रवृत्ति ही थी। प्रत्येक रीति कवि ने प्राय: भक्ति, वैराग्य और नीति की त्रिवेणी में अवश्यमेव अवगाहन किया। महाकवि ग्वाल का कविता काल सं० १८७९ से १९२४ वि० तक रहा। विशेषकर उनकी प्रौढ़ रचनाएँ बीसवीं विक्रमीय शताब्दी में हुई जो आधुनिक युग का उषा काल था। ये इन दोनों काव्य युगों के संधि स्थल पर खड़े थे। ग्वाल रीति कविता के सीमान्त के वैदूर्य और आधुनिक विकासोन्मुख काव्य प्रभात के सूर्य थे। इन पर आकर रीति परम्परा की नियताप्ति हुई। उनमें रीति रमी जमी और कदाचित थमी भी। परिणामतः जिस नीति के दर्शन हमें ग्वाल की रीति में होते हैं उनके पश्चात् नीति ने आधुनिक व्यङ्ग का कलेवर धारण करके नई प्रतीक सम्पत्ति हिन्दी को प्रदान की। गिरधर, और ग्वाल की अन्योक्तियों और तीखे व्यङ्गों के मान उदाहरण अब कदाचित दुर्लभ ही हैं। रीति नीति के अन्तिम पुरोधा के रूप में ग्वाल अभिनन्दनीय अथच विवेचनीय हैं। ग्वाल के नीति साहित्य में आधुनिक व्यंग्य विधा के लक्षण स्पष्ट दृष्टव्य हैं। ग्वाल का अभीष्ट रीति कथन था, मात्र नीति प्रणयन नहीं। अत: मात्र नीति कवि के रूप में यदि हम उन्हें आकें तो भूल होगी। उनके पूरे रीति काव्य के गवाक्ष से दृष्टि पात करने पर हमें पर्याप्त मात्रा में तीखे व्यंग्य के दर्शन तो होते ही हैं, केवल नीति पर ही लिखी गई उनकी अन्योक्तियाँ और अनुभव की ठोस धरती पर अधिष्ठित उपदेश उनको गिरधर और गिरि प्रभृति कुशल नीतिकारों से उत्कृष्ट ही ठहराते हैं। वह इस कारण कि उक्त नीति कार जहाँ कोरे नीति लेखक पद्यकार हुए वहाँ ग्वाल पहिले कवि और अन्त में नीतिकार थे। उनके नीति सवैया और कवित्त मात्र सूक्तियाँ बन कर ही नहीं रह गये बल्कि उनमें काव्य के भाव पक्ष और कला पक्ष दोनों का ही सम्यक् उत्कर्ष हुआ है।

किसी कवि के किसी विशिष्ट विषयगत काव्य प्रकर्ष के मूल्यांकन करने से पूर्व तद्विषयक काव्य शास्त्रीय विधान पर दृष्टिपात करना समीचीन होगा। 'नीति' शब्द 'नी' धातु से व्युत्पन्न है जिसका अर्थ होता है (आगे) ले जाना। इस आधार पर नीति रचना उसी कृति को कहेंगे जो मानव समाज को संस्कृत कर ऊर्ध्वोन्मुखी धरातल पर प्रतिष्ठित करे। काव्य शास्त्र के अनुसार "जिस काव्य में नीति एवं उपदेश की प्रमुख प्रवृत्ति 'नीति' का प्राधान्य हो उसे नीति काव्य कहते हैं।" नीति साहित्य को काव्य कोष्ठ गत करने के सम्बन्ध में विद्वानों में वैमत्य विद्यमान है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल एवं उनके सिद्धान्त शिविर के अन्य आलोचक गिरधर और गिरि आदि के नीति साहित्य को पद्य की श्रेणी में रखते हैं। उनका कथन है कि ये सूक्तियाँ मात्र हैं, काव्य नहीं। प्रश्न को नये सिरे से सोचना है कि आखिर काव्य क्या है? अधिक विस्तार में न जाकर इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि कोई भी रचना यदि कान्ता सम्मत शैली में लिखित है, जिसमें मानव हृदय को स्पर्श करने की क्षमता है तथा जो मानव मात्र की रागात्मक शक्तियों को प्रबुद्ध करके उत्तेजित करने की शक्ति रखती है। फिर उसमें चाहे नीति हो या उपदेश ही क्यों न प्रतिष्ठित हुए हों, वह कृति काव्य संज्ञा से अभिहित होने की अर्हता रखती है। किन्तु जो साहित्यिक सृष्टि मानव से मानव बनने का सदाग्रह नहीं करती, फिर वह चाहे काव्य के इतर समग्र लक्षणों से समन्वित ही क्यों न हो उसी भाँति काव्य कहलाने की अधिकारिणी नहीं जैसे नाना वस्त्रालंकारों से लदा हुआ नारी कंकाल प्राणवत्ता के अभाव में रमणी कहलाने के अधिकार से वंचित रहता है। गिरधर और गिरि प्रभृति कवियों की नीति परक रचनाऐं निश्चय ही काव्य हैं। वे मानव के हृदय का सीधा स्पर्श करतीं और मानव से मानव बनने का सदाग्रह करती हैं। ग्वाल की नीतिपरक रचनाएँ उक्त कसौटी पर तो खरी उतरती ही हैं। उनमें काव्य के कला पक्ष का भी सम्यक् मर्यादित निर्वाह हुआ है। कवि मधुकर को सचेत करता हुआ कहता है :—

"गहरे गुलाबन के खेत तें तजे अचेत, जाइ जौ कमल पै तौ कौन प्रतिबन्ध है।
सेवती न सेई तौ न जान्यौ कछु भेउ अजौं, चंपक तें चप्यौ जहाँ हित कौ निबन्ध है॥
ग्वाल कवि कहै क्यों बबूर के सुमन भ्रमै बैठेतें छिदेगी तेरी तन-मन संघ है।
पीरे पीरे देखि भयौ तीरे तीरे याके अरे मधुकर अंध यामैं रस है न गंध है॥"

मधुकर की आंखें खोलता हुआ कवि गजराज की आँखों को इंची टेप से नापने लगा :—

बल मैं अपार देख्यी दलकौं सिगार चारु उथड़ पहाड़ अरै थल कौन कोटी है।
पुष्ट पुष्ट थम्मन से पाये पग चार सुष्ठ प्रच्छ प्रिष्टि पाँसुरी हू तुष्ट बोटी बोटी है॥
ग्वाल कवि जैसो कुम्भ कान दंत तुंड तैसौ तैसी फूतकार औ चिघार अति मोटी है।
एरे गजराज और साज सब ठीक तेरे एपै या दराज देइ माँहि आँख छोटी है॥

अन्योक्तिकार प्रकृति के प्रसिद्ध प्रतीकों का प्रयोग करके मानव के हृदय का स्पर्श करता ही है, पशु, पक्षी, कीड़े, मकोड़ों के माध्यम से भी बड़ी बड़ी बात कह जाता है। समाज में यत्र तत्र मिलने वाले विचित्र स्वभावधारी मानवों का साधारणीकरण करना भी अन्योक्तिकारों के लिए बांए हाथ का खेल है। माध्यम कुछ भी रहे हों यदि कवि की भावुकता ने विषय का सचेष्ट संस्पर्श कर लिया तो रमणीय चित्र खिचकर रहेगा ही । सरस भाव के अभिज्ञान, उसकी उद्‌भावना तथा उनमें तन्मय होने की जितनी क्षमता कवि में होगी व्यंग्य उतना ही तीखा बनेगा। ग्वाल की भावुकता का कहना ही क्या है, उनकी सूक्ष्मदर्शी मर्मभेदी कवि दृष्टि ने जीवन जगत के एक एक व्यापार को समीप से देखा और परखा है। जीवन के घात प्रतिघातों ने उनको पारदर्शी प्रज्ञा प्रदान की थी । कुशाग्रता ने चेतन तो चेतन जड़ पदार्थों में भी प्राणवत्ता प्रस्फुटित की। स्थूल में उनकी प्रतिभा ने सूक्ष्म के दर्शन किये। यही कवि कर्म होता है। विषपायी शंकर की भाँति जीवन के समग्र हलाहाल का स्वयं पान करके मानवता को कवि अमृतदान करता है। ग्वाल ने जीवन में कितना विषपान किया। इसका अनुमान लगाना कठिन है और जग को कितना अमृत दिया यह भी कल्पनातीत है। उन्होंने नीति के माध्यम से मानों जीवन के विष का शमन किया हैं। पद पद में चुभते हुए व्यंग बाणों की चोटें लक्ष्य संधान करती हुई चलती हैं। उन्होंने राजे महाराजे, मत्री, दरवारी कवि, विद्वान, मूर्ख, धनी, निर्धन, मित्र, शत्रु किसी को नहीं छोड़ा। कभी वे स्वयं को ही सम्बोधित करते दिखाई देते हैं ;—

जाइ जिन तोता नारिकेरि के बड़ेरे तरु कौन अब सर जातैं छिलका छिलै है तू ।
छीलि हू लियौ तौ फिर फूटि है न तेरे पास फोरि हू लियौ तो गरी गरी को चबै है तू ।।
ग्वाल कवि यातें लघु तरु पै बिरमि रहु बीज और त्रकुल बिन सुफल चितै है तू ।
श्रम तें बिना ही बेस किसमिस के झूमकान झूम झूम खैह स्वाद लैहैं सुख पैहै तू ।।"

तो कभी करुणा में डूब कर विधाता से कहते हैं - —

"एरे बागवान तैं लगायौ है रसाल पौधा, तासुकी बहाल रीति पूर करी चाहियें ।
नल ही सिरफ मूल माँहि भरि देइबे तें, चलत न काम रच्छा भूर करी चाहियें ।।
ग्वाल कवि टेब की झुकाव की तरह चाहैं, बाढ़ हून जातें नैंको दूर करी चाहियें ।
सीत धूप बरसा निबारन निमित्त ताकौं त्रनन की छाया हू जरूर करी चाहियें ।।"

कभी किसी अयोग्य राज मंत्री पर कौआ के माध्यम से तीखी चोट कर रहे हैं :—

'वाकें चौंच चरन अरुन दोऊ कहियत, याकें मुख कारौ पाँय नीले कहियत हैं।
वह मानसर कौ बसैया बिल सैया बर, यह नीच ठौर हुलसैया लहियत हैं ।।
ग्वाल कवि वह मुकताहल चुनत नित, यह मंद वस्तु भखें देखें दहियत हैं
वह बोलै मिष्ट यह दुष्ट करै कांइ कांइ, हंस कौ दिवान कहा काग चहियत हैं ।।"

कलियुगी विद्वानों पर सिपाही के प्रतीक से ग्वालने अनोखी बिजली गिराई है :—

"ऐंठी खेंठी पाग बाँकी भौंह लौं झुकाइ राखै, पाछैं लटकाइ राखै पैचवाँ क़माने सौं ।
अकड़ि अकड़ि चल पकड़ि पकड़ि तेग, जकड़ि जकड़ि ढ़ाल बाँध इतराने सौं ।।
ग्वाल कवि कहै पेस कबज तबल लैकें निज बल भाखैं राखै काम न लजाने सौं ।
लैकरि तमंचा चोट चार की बरूद बाँधि, बनिके सिपाही जुर्यौ चाहैं तोपखाने सौं ।"

ग्वाल का दावा है कि समाज में "है असराफन की गरदी गुन के दरदी उठि सुर्ग गये सब । "व" हैं विरले नर अब जग में जो कहैं सो करैं औ करैं सो कहै नाँ ।" सीधी साधी तीखी वाणी, जो मानव स्वभाव पर तीव्र प्रकाश डालती है और जो आधुनिक व्यंग्य साहित्य की जन्मदात्री कही जा सकती है, ग्वाल की अपनी विशिष्ट देन है । एक बानगी हम यहां देते हैं :—

"बैठिवे की उडिव को बोलिवे चलिवे की, जानत न एकौ चाल आइ जग ढाँचे मैं ।
देखत मैं मानुष की आक्रिति दिखाई परै, पर नर पशुओं परिंदं हैं न जाँचे मैं ।।
ग्वाल कवि जानि कैं विरंचि तुच्छ जंतुनकौं डारे और ठौर लखि ख्वालन के खाँचे मैं ।
कूकर तैं, सूकर तैं, गर्धब और उल्लू तैं, काढ़ि काढ़ि कूर डारै मानुष के साँचे मैं ।।
गंगा के न गौरि के गिरीस के न गोविंद के, गोत के, न, ओत के न, जाये राह गीर के ।
काहु के न संगी रतिरंगी भैन भानजी के, जीके अति खोटे सोटे खैहैं जमभीर के ।।
ग्वाल कवि कहैं देखौ नारी के गुलाम बने धर्म को न नाम जानं, पातिक सरीर के ।
निमक हराम बदनाम करैं ताजे ताजे, बाजे बाजे बेईमान गुर के न पीर के ।।"

सारांश यह है कि ग्वाल की भावुकता ज्यों-ज्यों प्रवेग पर आती है, वे एक दम सहज सीधी खरी बात कहने में नहीं चूकते ! उनके इतर साहित्य को हम न भी लें तो भी नीति काव्य में वे गिरिधर और गिरि आदि नीतिकारों से आगे हैं । कान्ता सम्मित शैली में प्रकृति प्रतीकों और जीवन जगत के सचल माध्यमों द्वारा रचित उनका नीति और उपदेश काव्य मानव मात्र के हृदय को सहज ही उद्वेलित करके मानवता की उच्च भाव भूमि पर प्रतिष्ठित करने का सदाग्रह करता है । काव्य में सम्प्रेषणीयता, सरसता, प्रसादता, प्रतीयमानता, कवि हृदय की कोमलता, भावों की तीव्रता, दृष्टि विस्तार, मार्मिकता, अभिव्यक्ति की निष्कपटता, और प्राणवत्ता विद्यमान हैं । यत्र तत्र कवि भावातिरेक में प्रवाहित हो गया है, जो दोष नहीं कहा जा सकता है क्योंकि यही उसकी विशेषता है, जो उसके काव्य को अधिक सशक्त और प्रेषणीय बनाती है । फिर कवि ने स्वयं कहा है :—

"तुरी कौ चढ़ैया जैसें तुरी कौं नचावै नित, जो पै गिरै कबहूँ, तौ इलम कटै नहीं ।
तान कौ मिलैया जैसें तानन मिलायौ करै, कबहूँ मिली न, तौ प्रमान सौं हटै नहीं ।।
ग्वाल कवि पंडित परम तापै काहू समै, आई एक बात न, तौ पंडित लटै नहीं ।
कवि के कवित्त मुकताहल से सांचे लाख, तामैं एक झूठौ मिलै पानिप घटै नहीं ।।

निम्बार्क सम्प्रदाय के सन्तों की साहित्य सेवा

[ले० ज्यो० राधेश्याम द्विवेदी]

भगवान श्री कृष्ण की क्रीड़ा स्थली तथा भक्त एवं सन्तों की साधना भूमि ब्रज भूमि सभी मतानुयायी सम्प्रदायों का केन्द्र रही है बौद्ध, जैन, शैव, शाक्त मतों के प्रचार और प्रकाश के पश्चात ब्रज वैष्णव धर्मानुयायी सन्तों और महात्माओं का केन्द्र बना। रामानुज, माध्व राधा बल्लभ, निम्बार्क, बल्लभ आदि प्रमुख वैष्णव सम्प्रदायों के अनेक परम भक्त एवं सन्त महात्मा इस ब्रज भूमि में हुए जिन्होंने अपनी साधना के साथ २ भारतीय धर्म, संस्कृति और साहित्य की रक्षा एवं समृद्धि की। वस्तुतः ब्रज भूमि की इन लोगों ने महिमा बढ़ाई और इस ब्रज भूमि के कारण उनकी महिमा संस्मरणीय और अमर हो गई। यहाँ हम निम्बार्क सम्प्रदाय के विशिष्ट सन्तों की साहित्य सेवा पर ही प्रकाश डाल रहे हैं।

श्री निम्बर्काचार्य जी का आविर्भाव यद्यपि तैलंग देश में हुआ था तथापि वाल्यकाल से ही उन्होंने ब्रज मंडल में निवास कर, अपनी साधना की तथा लोक हित कार्य किया था। अतः उनके अनुयायी आचार्यों ने और सन्तों ने भी ब्रज मण्डल को ही अपना साधना केन्द्र रक्खा। श्री मद् निम्बार्काचार्य जी ने वेदों के तात्पर्य रूप "स्वभाविक द्वैताद्वैत" सिद्धान्त का प्रतिपादन किया और उनके अनुयायी सभी आचार्यों ने यही परम्परा सुरक्षित रक्खी, संस्कृत साहित्य की अभिवृद्धि इस परम्परा के दिग्विजयी श्री केशव कश्मीरी भट्टाचार्य तक विशेष रूप से होती रही।

१—श्री केशव कश्मीरी भट्टाचार्य ने भक्ति और दर्शन साहित्य के साथ २ तंत्र शास्त्र की भी चमत्कारी ज्योति को जागृत किया, आपके सम्बन्ध में "श्री नाभा जी ने" अपने भक्त माल छप्पय ७५ में संक्षिप्त रूप से परिचय दिया है। जब श्रुति भी सर्वत्र प्रचलित है, कि मथुरा के विश्रामघाट पर स्थापित की हुई यवन तांत्रिक की कृति को समाप्त कर आपने हिन्दू धर्म की एक अनुपम सेवा की थी। इनका विशेष निवास मथुरा में श्रीनारद टीला और ध्रुव टीला और गोवर्धन में राधा कुन्ड, निम्ब ग्राम (नीम गाँव) और वृन्दावन में बिहार घाट आदि स्थानों में रहा है किन्तु आज ये सभी स्थान अत्यन्त जीर्ण, जीर्ण दशा में उनकी स्मृति मात्र करा रहे हैं। इसके पश्चात ही ब्रजभाषा साहित्य काल भी आया। और ब्रजभाषा साहित्य की अभिवृद्धि में भी श्री भट्ट जी का महत्वपूर्ण योगदान रहा। श्री भट्ट जी ब्रज भावा के प्रारम्भ काल के श्रेष्ट कवियों में माने जाते हैं।

आप मथुरा के एक गौड़ ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हुए थे और अपनी उदात्त भक्ति भावना तथा विद्वन्ता के कारण वे श्रीनिम्बार्काचार्य की गद्दी पर अभिषिक्त हुए। आपके समय के सम्बन्ध में कुछ मत-भेद हैं किन्तु आपकी साहित्य सेवा और लोक हित के सम्बन्ध में कोई भी विवाद नहीं। आपकी

रचनायें चाहें कितनी ही हों किन्तु वर्तमान में केवल ब्रज साहित्य का एक अमूल्य ग्रन्थ रत्न श्री युगल शतक ही उपलब्ध है जो मुद्रित हो चुका है। निम्बार्क सम्प्रदाय के आचार्य और सन्तों में सदा से आत्मगोपनीयता और अपनी एकान्त वृत्ति की परम्परा रही है जो २०वीं शताब्दी तक अक्षुरण रूप से चलती रही है। यही कारण है इस सम्प्रदाय की साहित्य और लोक सेवायें दबी ही नहीं रही लुप्त और विस्मृत भी हो गई क्योंकि अपने साहित्य कृतियों का प्रकाशन सन्त लोग उचित नहीं समझते थे। उनका मन्तव्य था कि यह रस साहित्य प्रकाशित होकर अनधिकारियों के हाथों में न जा पहुँचे। उसका परिणाम यह हुआ है कि आज उस साहित्य के लिए अधिकारी मी लालायित हैं। यही स्थिति इस सम्प्रदाय के ऐतिहासिक सामग्री की हुई। १६ वीं शताब्दि से अर्वाचीन साहित्य सेवियों की सेवायें उपलब्ध और प्रचारित हुई किन्तु इससे पूर्व के प्राचीन संत साहित्य सेवियों की सेवायें अतीत में लुप्त ही हो गई। कुछ आधुनिक विद्वानों और सम्प्रदाय के साहित्य सेवी महानुभावों द्वारा इस सम्प्रदाय के संत साहित्य सेवियों की कृतियों का प्रकाशन हुआ है किन्तु बहुतसा साहित्य दबा ही हुआ पड़ा है अतएव सम्प्रदाय के ऐसे सन्त साहित्य सेवियों का और उनकी कृतियों का दिग्दर्शन मात्र ही यहाँ हो सकता है।

२—श्री हरिव्यास देवाचार्य जी :—आपकी मुख्य कृति महावाणी है। यह ग्रन्थ थोड़े समय पूर्व प्रकाशित हुआ है किन्तु सम्प्रदाय के विद्वानों के मतानुसार इसकी समीक्षा और सर्वाङ्गीण प्रकाशन नहीं हुआ है।

३—परशुराम देवाचार्य जी :—आपका ग्रन्थ श्री परशुराम सागर है यह ग्रन्थ सर्वतोमुखी उच्चकोटि का उपदेशात्मक एवं भक्ति भाव का एक अनुपम ग्रन्थ है, अभी तक इसके दोहों का भाग ही प्रकाशित हो पाया है, शेष पदों का संग्रह अमुद्रित ही है इनमें पदों में राजस्थानी भाषा का कहीं २ सम्मिश्रण है तथापि उनमें वाहुल्य ब्रजभाषा का ही है इसकी बहुत कुछ रचनायें देश के संगठन के लिए भी उपयोगी हैं अतः इसका प्रकाशन आवश्यक एवं समयोचित होगा इसमें साम्प्रदायिकता की भी विशेषता नहीं है।

४—श्री रूप रसिक जी :—आपकी वृहत् उत्सव मणिमाला, नित्य बिहार पदावली, श्री हरिव्यास यशामृत आदि अनेक रचनाएँ हैं कुछ वर्ष पूर्व आपकी रचनाओं में से कुछ प्रकाशित हुई थी किन्तु आजकल वह अप्राप्य है। इनका कविता काल वि० १७ वीं शताब्दी का आरम्भ काल है।

५—श्री तत्व वेत्ताचार्य जी :—आपकी कृति तत्व वाणी अप्रकाशित है और इनका रचना काल वि० १६ वीं शताब्दी का अन्तिम समय है इनकी रचनाऐं भी साम्प्रदायिकता से परे सर्वतोमुखी उपदेशात्मक है।

६—श्रीवृन्दावन देवाचार्यजी :—आपकी रचना का काल का वि० १८ वीं शताब्दी का मध्य काल है और रचनायें श्री गीतामृतगङ्गा (चौदह घाट) परिवार चन्द्रिका, दीक्षा मङ्गल, युगलध्यान आदि है। ये रचनायें अत्यन्त सुन्दर, हृदयग्राही, आकर्षक एवं उच्चकोटि की हैं।

७—श्री गोविन्द देवाचार्य जी :—आपका विविध पदों का सुन्दर संग्रह हैं, इनका रचना काल वि० १९ वीं० शताब्दी का आरम्भ काल है ।

८—श्री स्वामी हरिदास जी:—रसिक शिरोमणि श्री स्वामी हरिदास जी ब्रज के मान्य सन्तों में अनन्य रसिक भूपति माने जाते हैं। संगीत कला के आप प्रतिभावान प्रधान आचार्य माने जाते हैं तानसेन तथा वैजू बावरा जैसे प्रसिद्ध संगीतज्ञों ने आपसे ही शिक्षा ग्रहण की थी । सम्राट अकबर तक आपका संगीत सुनने के लिये हिन्दू वेश में आपकी कुटी में आया था । ब्रज की ध्रुपद गायनी के आप आचार्य माने जाते हैं आप अत्यन्त निःस्पृही एवं वीतराग महात्मा थे और अपने इष्टदेव श्री कुञ्ज बिहारी जी की सेवा में ही तल्लीन रहते थे और अपना संगीत उन्हें ही सुनाया करते थे आपके सम्बन्ध में अनेक आश्चर्यजनक घटनायें भी हैं। इनकी रचनाओं में सम्प्रति 'केलिमाल" और सिद्धान्त पद ही प्राप्य है आपके जन्म स्थान और जन्म सम्वत् के सम्बन्ध में विद्वानों में कुछ मतभेद हैं। अकबर के समय में होने के कारण इनका कविता काल वि० १६ वीं शताब्दी का उत्तरार्ध है ।

९—श्री स्वामी विट्ठल विपुल देव जी :—आपकी रचना श्री विट्ठल विपुल देवी जी की वाणी प्रसिद्ध है जिसका रचना काल भी १६ वीं शताव्दी ही है ।

१०—श्री विहारिण देव जी :—आपका जन्म वि० १५६१ सं० हैं और आपने भी वाणी ग्रन्थ रचा है ।

११—श्री नागरी दास जी :—आप किशन गढ़ नरेश से भिन्न और एक प्राचीन महात्मा है, इनकी वाणी भी फुटकर पदों में मिलती है ।

१२—श्री स्वामी सरस देव जी :—आपकी कृति सरस वाणी है जो अभी अप्रकाशित है ।

१३—श्री स्वामी कृष्ण दास जी :—आपकी वाणी भी अप्रकाशित हैं ।

१४—श्री नवल दास जी :—आप भी वाणी कार महात्मा है जिनकी नवल वाणी अभी अप्रकाशित है ।

१५—श्री स्वामी नर हरि देवजी :—आपकी वाणी, परम्परा आदि रचनायें अप्रकाशित है ।

१६—श्री स्वामी रसिक देव जी :—आप बाल-लीला, चिन्ता मणि, गुरु मङ्गल, पूजा विलास, रसार्णव पटल, कुन्ज कौतुक, रस सार, गुरु परम्परा आदि कृतियों के रचयिता हैं ।

१७—श्री स्वामी ललित किशोर देव जी :—आप वाचनिका सिद्धान्त गद्य ग्रन्थ के रचियता है ।

१८—श्री स्वामी पीताम्बर देव जी :—आप वाणी कार सन्त है और स्वामी हरिदास जी कृत केलि माल के टीका कार भी है ।

१९—श्री स्वामी रूप रसिक देव जी :—आपने रसिक वाणी लिखी हैं ।

२०—श्री स्वामी ललित मोहनी देव जी :—आपकी कृति ललित वाणी आदि है ।

२१—महाकवि श्री किशोर दास जी :—आपने निजमत सिद्धान्त, सिद्धान्त सरोवर, सिद्धान्त सार संग्रह, आनन्द सत, सवैया पच्चसी आदि ग्रन्थ लिखे हैं।

२२—श्री स्वामी भगवत रसिक देव जी :—आपकी वाणी तथा अनन्य निश्चयात्मक ग्रन्थ आदि लिखें हैं।

२३—श्री स्वामी चतुरदास जी :—आपकी चतुर वाणी आदि कृति हैं।

२४—श्री स्वामी राधाशरण देवजो :—आपने श्री स्वामी हरिदास जी कृत केलि माल ग्रन्थ पर अपनी रचना की है।

२५—श्री स्वामी शीतल दास जी :—आपकी आनन्द चमन, गुलजार चमन, विहार चमन आदि रचनायें हैं।

२६—श्री स्वामी सहचरि शरण देव जी :—आपने सरस मंजावली, गुरु प्रणालिका, आचार्य स्तव, ललित प्रकाश, वाचनिका सिद्धान्त आदि ग्रन्थ लिखें हैं।

२७—श्री स्वामी राधा प्रसाद जी :—की वाणी आदि रचनायें हैं।

२८—श्री स्वामी रसिक किशोरी देव जी :—की आनन्द प्रभासिक रचना हैं।

२९—श्री गोविंद शरण देवाचार्य जी :—का ग्रन्थ पद सागर विविध पदों का सुन्दर संग्रह हैं। पदों की रचना सुन्दर और भावपूर्ण हैं।

३०—श्री प्राण नाथ जी :—आप बड़े प्रभावशाली महापुरुष हुये हैं आपने पन्ना नरेश महाराज छत्रसाल जी को देश सेवा के लिये प्रोत्साहित किया आपने हिन्दी के कई ग्रन्थों की रचना की आपके अनुयायी गुजरात सौराष्ट्र, विंध्य प्रदेश, मालवा आदि राज्यों में अधिक हैं हिन्दी के अतिरिक्त कुछ अन्य भाषाओं में भी आपकी रचनायें मिलती हैं। किन्तु इनकी बहुत सी रचना अप्रकाशित ही हैं।

३१—श्री मुकुन्द दास जी :—आप प्राण नाथ जी के ही एक शिष्य थे आपका दूसरा नाम या उपनाम नव रङ्ग सखि हैं आप का एक काव्य ग्रन्थ ५५ हजार चोपदों में पूर्ण हुआ है।

३२—श्री रस रङ्ग जी :—आपकी कविताओं का रचना काल १९ वीं शताव्दी के आरम्भ से मध्यकाल तक है। आपका काव्य संग्रह छत्रपुर के राजकीय पुस्तकालय में सुरक्षित हैं।

३३—श्री रसिक गोविन्द जी :—के रामायण सूचनिका, कलियुग रासो रसिक गोविंदा नन्दघन, युगल रस माधुरी, समय प्रबन्ध, आदि अनेक ग्रन्थ है प्रायः सभी अप्रकाशित हैं।

३४—श्री आनन्द घन जी :—एक महान् साहित्यकार सन्त हुए हैं आपने सुजान सागर, विरह लीला, कोक सार, रस केलि वल्ली, कृपा काण्ड, प्रिया प्रसाद, ब्रज व्यवहार, वियोग वेलि, कृपा कन्द निवन्ध, वीर गाथा, भावना प्रकाश, गोकुल विनोद, धाम चमत्कार, कृष्ण कौमुदी, नाम माधुरी, वृन्दावन, मुद्रा, प्रेम पत्रिका, रसवन्त, परम हंस वंशावली, आदि ग्रन्थों की रचना की है आप विरह भक्ति के प्रसिद्ध कवि हैं आपकी रचनाओं का कुछ संग्रह वाराणसी से प्रकाशित हुआ हैं किन्तु अब भी बहुत कुछ अप्रकाशित हैं।

(३५) श्री कृष्ण दास जी :— की रचना माधुर्य लहरी प्रकाशित है। आपका रचना काल वि० १९वी शताब्दी का मध्यकाल है।

(३६) राजा ईश्वरी प्रताप राय जी :— का शृंगार रहस्य काव्य ग्रन्थ है। रचना काल २०वीं शताब्दी का आरम्भ काल है।

(३७) श्री स्वामिनी दास जी :— की रचना हरि व्यास छवीली है। रचना काल १९वीं शताब्दी का आरम्भ काल।

(३८) श्री नागरी दास जी(२) :— आप किशन गढ़ नरेश महाराज सावन्त सिंहजी हैं। जिनका उपनाम नागरी दास है। आपका जन्म सम्वत् १७५६ है और रचना काल १७८० से १८१० तक का है बैसे इस नागरी दास नाम के ४ कवि हुये हैं। जिनमें एक वृन्दावन के टट्टी स्थान की परम्परा में दूसरे तथा तीसरे वल्लभ कुल सम्प्रदाय के अनुयायी हुये हैं और चतुर्थ ये कृष्ण गढ़ नरेश नागरी दास हुये हैं। ये बहुत प्रसिद्ध कवि हैं और इनकी रचनायें भी अनेक हैं। स्वामी हरिदास जी के टट्टीस्थान वाले नागरी दास जी कीं उनके स्थान पर पृथक् उपलव्ध होती हैं किन्तु अन्य दो नागरी दासों की रचना पृथक उपलव्ध नहीं हैं अनेकों का मत है कि कृष्ण गढ़ नरेश नागरी दास वल्लभ सम्प्रदाय के थे परन्तु निम्वार्क सम्प्रदाय वाले इनको अपना ही मानते हैं। इनकी कविताओं का संग्रह किशन गढ़ के राजकीय पुस्तकालय में तो है ही किन्तु अन्यत्र भी उपलव्ध है पदों में जहाँ तहाँ कुछ अन्तर मिलता है क्यों कि पदों में नागरि दास, नागरिया, नागरि नागर आदि नामों की छाप मिलती है किसन गढ़ राजकीय संग्रहालय में छोटे मोटे इनके ७३ ग्रन्थों का संग्रह हैं दूसरे संग्रहों में दो ग्रन्थ और मिलते हैं। इन ७५ ग्रन्थों में कौन सा ग्रन्थ किस नागरी दास का है यह विद्वानों ने अभी तक छाँट कर निश्चय नहीं किया है अतएव इनके संप्रदाय तथा ग्रन्थों का निर्णय होना आवश्यक है।

(३९) श्री मती ब्रज कुँवरी जी :— आप श्री नागरी जी की विमाता थीं। आपका नाम वाकावती था। श्री मद् भागवत का पद्यानुवाद तथा श्री मद् भगवद् गीता का पद्यानुवाद आपकी रचानायें है जो अप्रकाशित हैं ये दोनों पद्यानुवाद विशेष महत्व पूर्ण हैं इनका प्रकाशन होना आवश्यक है।

(४०) श्री सुन्दर कुँवरी जीः— ये नागरी दास जी की छोटी बहन थी। इनके लिखे १२ ग्रन्थ हैं जिनके नाम गोपी महात्म्य, सार संग्रह, रस पुंज, संकेत सुगल, प्रेम सम्पुट, रंगझर, नेह निधि, भावना प्रकाश, मित्रशिक्षा आदि हैं। इनके ११ ग्रन्थ लगभग ५५ वर्ष पूर्व प्रकाशित हुये थे जो अमूल्य होने के कारण प्रायः बाँट दिये गये और अब अप्राप्य हैं। इनका २५०० छन्दों का मित्र शिक्षा, ग्रन्थ अभी तक अप्रकाशित है। इनके ग्रन्थों का रचना काल १९ वीं शताब्दी का आरम्भ काल है।

(४१) छत्र कुँवरी जी :— ये नागरी जी की पौत्री थी इनके प्रेम विनोद आदि ग्रन्थ हैं जो अप्रकाशित हैं।

(४२) वरणी ठरणी जी :— ये नागरी दास जी की एक दासी थी। इनके बनाये अनेक फुटकर पद मिलते हैं जिनमें इनकी रसिक बिहारी की छाप मिलती है।

इनके अतिरिक्त इस सम्प्रदाय के बहुत अनेक और भी ऐसे महाकवि हैं जो इस सम्प्रदाय के आचार्यों और सन्त कवियों से विशिष्ट सम्बन्ध रखते थे किन्तु वे आचार्य महात्मा या सन्त की श्रेणी में नहीं हैं इस साहित्यिक दृष्टि से तो वे भी गण्य मान हैं। ऐसे महानुभावों में मैथिल कोकिल, श्री विद्यापति ठाकुर, महाकवि श्री केशव देव, महाकवि श्री बिहारी लाल, तथा श्री कुलपति, कृष्ण कवि, रसखान, ग्वाल सेनापति वृन्द और श्री नारायण स्वामी जी के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। यद्यपि रसखान वल्लभ कुल की वार्ताओं से वल्लभ सम्प्रदाय के थे संगीत सम्राट तानसेन, वैजू बावरा आदि प्रसिद्ध गायक और कवि भी इसी सम्प्रदाय के अनुयायी माने जाते है तथा अन्य कवियों में गङ्गाराम, सुन्दर सखी, श्री श्रीनिवास, प्रिया सखि, कवि बलदेव, अभय राम दाऊ कृष्ण किशोर दास, जाड़े बी, महन्त लक्ष्मण दास जी, पं० श्री दुर्गा दत्त जी, पं० श्री सुदर्शन दास जी जिनके छोटे बड़े २०० ग्रन्थ हैं तथा गो० श्री किशोरी लाल जी माधव राम जी अवस्थी आदि आधुनिक साहित्यकार भी इसी सम्प्रदाय के अनुयायी माने जाते हैं। अन्यान्य भाषाओं के साथ मिश्रित व्रज भाषा में रचना करने वालों में श्री हर दयाल नेवटिया (फतेपुर राजस्थान) का नाम भी विशेष उल्लेखनीय है।

इतना ही नहीं इस सम्प्रदाय के साहित्य सेवियों का अन्वेषण किया जाय तो व्रज मंडल में ही और भी बहुत से निम्बार्कीय साहित्य सेवियों का और उनकी रचनाओं का पता चलेगा।

इस सम्प्रदाय के संत और महात्माओं ने केवल रसमय एवं भक्ति भावपूर्ण वाणी तथा पद आदि की रचना से ही व्रज साहित्य की सेवा नहीं की है अपितु व्रज की संस्कृति और वैभव और व्रज के महत्व बढ़ाने वाले आदर्श वन उपवनों की रक्षा तथा दर्शनीय विशाल मठ मन्दिरों के निर्माण में भी योगदान दिया है और ये सन्त देश की एकता के लिये और साम्प्रदायिकता न बढ़ने के लिए भी जनता को जागृत करने में भी अग्रसर रहे हैं। श्री हरिव्यास देवाचार्य जी जैसे महापुरुष अपने बिछड़े हुये लोगों की शुद्धि के कार्य में तत्पर रहे हैं जैसा कि उनकी जीवन गाथाओं के अध्ययन से स्पष्ट ज्ञात होता है ऐसे विशिष्ट महापुरुष किसी एक सम्प्रदाय के ही हितैषी नहीं कहे जा सकते। उनका कार्य कलाप समस्त देश के हित के लिये था। हमारा कर्तव्य है कि ऐसे सन्त महात्माओं के व्रज में निर्माण किये गये स्थान सुरक्षित और दर्शनीय बनाये जाँय। उदाहरण के लिये मथुरा का नारद टीला है जो आज उपेक्षित दशा में है। सूर, तुलसी आदि संत साहित्यकारों के स्मारकों की भाँति श्री हरिव्यास, श्री श्रीभट्ट जी, श्री केशव कश्मीरी, स्वामी श्री हरिदास जी आदि महानुभावों के भी स्मारकों की रक्षा करना तथा उनको दर्शनीय बनाना चाहिये जिससे उनकी स्मृति भावी जनता के लिये एक ज्योति का सा प्रकाश देती रहे।

◆

पूंछरी कौ लौठा

ब्रज भाषा का प्रथम उपन्यास

—लेखक डा० शरण बिहारी गोस्वामी

ब्रजभाषा केवल सरस पदों, ओजस्वी कवितों, मादक सवैयों और चुटीले दोहों के द्वारा भक्ति शृंगार और वीर रस की व्यंजना का ही उत्तम माध्यम नहीं है, उसके गद्य द्वारा आधुनिकतम विधाओं में सशक्त रचनाओं को प्रस्तुत किया जा सकता है, इसका एक पुष्ट प्रमाण "पूंछरी का लौठा" है। ब्रजभाषा के इस प्रथम उपन्यास में श्रेष्ठ उपन्यास के लिए अपेक्षित सुगठित कथा, मर्मस्पर्शी चरित्रांकन और मनोरंजक भाषा-शैली सभी प्रमुख तत्वों का समावेश हुआ है।

इसकी कथा संक्षेप में इस प्रकार है :—श्याम एक ब्राह्मण किशोर है, जो ब्रज के गांव पूंछरी का निवासी है। मिडिल पास करके वह अपनी बूआ के पास कानपुर पढ़ने चला जाता है। वहाँ से मैट्रिक की परीक्षा देकर गांव वापस लौटता है। गाँव के गूदर ठाकुर की लड़की गौरी से उसका प्रेम था। जब वह गाँव लौटता है तो पता चलता है कि उसका विवाह हो चुका है और वह वृन्दावन में रहती है। जिस तरुण से उसका विवाह होता है, वह अपने शिक्षा-काल में ही आतंकवादियों के संपर्क में आ जाता है। न केवल वह, वरन् गौरी का भाई और श्याम का सहपाठी धनपत भी अपने बहनोई के पथ का पथिक बनता है। एक दिन बम बनाते हुए गौरी के पति का निधन हो जाता है। अब अपनी बड़ी हवेलीमें गौरी और धनपत आतंकवादी कार्यवाहियों का संचालन करने लगते हैं। श्याम भी इस कार्य में उनका हाथ बंटाता है। गौरी और श्याम को इस बहाने निकट आने का भी अवसर मिलता है। सहसा धनपत को क्रांतकारी कार्य-क्रम के अधीन बाहर जाना पड़ता है और धनपत यहाँ का कार्य संभालने रह जाता है। अब गौरी और भी निकट आ जाती है। लेकिन इस समय गौरी का विलासी ससुर अपने छोटे भाई की विधवा को लेकर वृन्दावन आता है—तीर्थवास के बहाने अपनी अतृप्त वासना के तृप्त करने के लिए। इधर गौरी का रिंदा, ठाकुर की विलासिता का लाभ उठाकर, गौरी को अपने अधिकार में करना चाहता है और ठाकुर से उसे प्रताड़ित कराता है। वह श्याम को लांछित करके एक दिन घायल करा देता है और सब लोग बुलंदशहर चले जाते हैं। श्याम का क्रांतिकारियों के सहयोगी चैतन्य सम्प्रदायानुयायी बाबा गौर हरिदास उपचार करते हैं। शास्त्री नामक एक तरुण क्रांतिकारी गौरी को मुक्त कराने बुलंदशहर जाता है। गौरी और श्याम के पारस्परिक आकर्षण से साथी परिचित हो चुके हैं अतः उसका लौटाना अनिवार्य भी जान पड़ता है। गौरी आती है, लेकिन ऐसी दशा में कि उसका अंग-अंग टूटा हुआ है। गौरी और श्याम मिलते हैं लेकिन देश-प्रेम

पर बलि होने के लिए। सन् ४२ के आंदोलन में गौरी सड़क काटते हुए और पुलिस का प्रतिरोध करते हुए प्राण-विसर्जन करती है। श्याम पुलिस थाने पर झंडा लगाते हुए घायल होता है। आंदोलन शांत होने पर फिर वह कानपुर पढ़ने लौट जाता है।

इस छोटी सी कथा के साथ केवल गिने-चुने पात्रों को लेकर चलने वाला यह उपन्यास एक ओर ब्रज लोक-संस्कृति की सहज झांकी देता है तो दूसरी ओर देश-प्रेम के लिए व्याकुल ब्रज की तरुणाई के बलिदान की ओर भी संकेत करता है। एक प्रकार से उपन्यास का पट ब्रज की लोक-संस्कृति के ताने और देश-प्रेम के बाने से बुना गया है। "पूंछरी का लौठा" गिरि-गोवर्द्धन के एक सिरे पर स्थित पूंछरी गांवका लोक-देवता है—जो कृष्ण की आज्ञा से ब्रज में रह गया है अन्यथा वह भी उनके साथ चला जाता। उसी का मन्दिर है, जिसमें वह आज भी विराजमान है। गौरी और श्याम का पारस्परिक आकर्षण उसी की छाया में जन्म लेता है। इसके अतिरिक्त हर पूर्णिमा को गोवर्द्धन पर्वत के आस-पास लगने वाले मेलों गौर मन्दिरों की झाँकियों का भी अपना महत्व है। ब्रज में उन्मुक्त प्रकृति का सौन्दर्य भी अपनी वस्तु है। इनके साथ यदि देश-भक्ति को मिलाकर कोई कृति सामने आवे तो तो वह निश्चय ही अभिनव वस्तु होगी और 'पूंछरी का लौठा' के साथ भी यही हुआ है।

सामाजिक रूढ़िवादिता के कारण गौरी और श्याम का विवाह असंभव था किन्तु मरते समय उसका पति उसे आदेश दे गया था कि यदि वह चाहे तो वह किसी भी व्यक्ति से पुनर्विवाह करले क्योंकि युवती का अविवाहित रह कर पवित्र जीवन बिताना संभव नहीं है। लेकिन विलासी ससुर और कारिंदा ने जातिवाद को कहाँ छोड़ा था। श्याम अन्त तक कम से कम उनके लिए तो 'बाँभन का छोकरा' ही था। प्रारम्भ में स्वयं गौरी भी तो उसे हेय ही समझतीथी। इसके अतिरिक्त बाबा गौरहरिदास चैतन्य सम्प्रदाय के ऐसे अनुयायी हैं कि मरणासन्न स्थिति में भी ब्रज-रज घोल कर पीते हैं—और दवाई लेना पसंद नहीं करते। इससे यह पता चलता है कि ब्रज के जीवन को राधा और कृष्ण ने कितने गहरे रूप में प्रभावित किया था। भक्ति-तत्व की बड़ी आकर्षक व्याख्या लेखक ने इस साधु द्वारा करवाई है।

राष्ट्रीय दृष्टि से सारा ब्रज ही ज्वालामुखी हो उठता है। विशेष रूप से आतंकवादियों का दल सन् ४२ के इस आन्दोलन में बड़ी चतुराई से भाग लेता है। गौरी भी अपनी पति की सहायता से कुछ पढ़ना लिखना सीखकर युवकों जैसी बहादुरी से आतंकवादी कार्यों में सहयोग देती है। बाबा गौरहरिदास के अतिरिक्त धनपत, श्याम और गौरहरी एक जुट होकर काम करते हैं। आतंकवादियों और अहिंसकों का यह एका ही, लेखक की दृष्टि में ब्रिटिश सरकार को हिलाता है।

नायक और नायिका के रूप में उभरने वाले पात्रों में श्याम और गौरी के प्रेम में बाधा डालने वालों से निरन्तर संघर्ष करना पड़ता है। श्याम को तो अपने मंदबुद्धि सहपाठी सूखा की

ईर्ष्या का शिकार होना पड़ता है । बचपन में अध्यापक द्वारा पिटाई के कारण श्याम को मानने वाला यह तरुण गौरी और श्याम के प्रेम को प्रवाद का विषय बनाता है । वृंदावन में गौरी का कारिंदा स्वयं उसे अपनी बनाने के लिये श्याम के विरुद्ध गौरी के ससुर को भड़काता है और न केवल श्याम का गौरी से मिलना-जुलना बंद करा देता है वरन् उसे गुण्डे से घायल भी कराता है, लेकिन अन्त में उनका मिलन होता ही है, भले ही उनमें से एक गौरी को बलिदान होना पड़ा । श्याम को उसकी स्मृति की निधि मिल जाती है और वह फिर कर्तव्य-रत हो जाता है ।

इस प्रकार यह उपन्यास है तो छोटा पर सांकेतिक शैली के कारण अनेक सामाजिक एवम् राजनैतिक समस्याओं पर प्रकाश डालता है । व्रज का जन-जीवन इसमें अनायास ही बोल उठा है । सबसे बड़ी बात यह है कि ब्रज भाषा गद्य में पहली और सशक्त रचना होने से इसका महत्व ऐतिहासिक है । फिर इसकी ब्रजभाषा बड़ी टकसाली है । उसमें प्रवाह और रोचकता कितनी है, यह तो इसी से प्रमाणित है कि इसे बिना समाप्त किये छोड़ा नहीं जा सकता । ब्रज के एक अञ्चल का यह सजीव अङ्कन सचमुच बेजोड़ है ।

अन्त में हम लेखक को साधुवाद देते हैं कि उसने ब्रजभाषा गद्य में ऐसी उत्तम कृति का सृजन करके एक नयी परम्परा का सूत्रपात किया । आशा है, वह भविष्य में और भी सुन्दर कृतियाँ देगा ।

समीक्षाकार :—पं० पद्मसिंह शर्मा, कमलेश रीडर हिन्दी विभाग कुरुक्षेत्र विश्व-विद्यालय कुरुक्षेत्र ।

पुस्तक के प्रकाशक हैं हिन्दी साहित्य संसार, दिल्ली ७ और मूल्य है दो रुपये पच्चीस पैसे ।

१-हमारे जवानों के शौर्य ने शत्रु के मनसूबे धूल में मिला दिए।

२-हमारे यहाँ बने हथियारों के सामने अमरीकी हथियार कामयाब न हो सके।

३-हमें अपने को अन्नोत्पादन में भी आत्म निर्भर होना है।

४-अमरीका या अन्य देशों का मुँह ताकना धोखा दे सकता है।

देश का हर व्यक्ति राष्ट्र की इस सबसे बड़ी समस्या में अपना योग दे सकता है। जिला सहकारी बैङ्क में अपना धन आप जमा करें जहाँ वह पूर्ण सुरक्षित है, ब्याज दूसरे बैङ्कों से आपको ज्यादा मिलेगा और किसानों के अन्नोत्पादन के कार्य में आपके धन का उपयोग होगा।

जिला निवासियों के लिये हमारी शुभ कामनाओं के साथ हम आशा भी करते हैं कि आप अपने ही सहकारी बैंक को अपनाकर अपना तथा इस बैंक का और अपने राष्ट्र का सदैव हित करेंगे।

ब्याज की द

सेविंग खाता पर	४	प्रतिशत	वार्षिक
कौल डिपौजिट पर	३।।।	,,	,,
६ माह की अमानत पर	५।।	,,	,,
१ साल की अमानत पर	६।	,,	,,
२ साल की अमानत पर	६।।	,,	,,
३ साल की अमानत पर	६।।।	,,	,,
४ साल की अमानत पर	७	,,	,,
५ साल की अमानत पर	७।	,,	,,
७ साल की अमानत पर	७।।	,,	,,

मथुरा जिला सहकारी बैंक लि०, मथुरा

अपनी सम्पूर्ण बचत आज ही

उत्तर प्रदेश कोअपरेटिव बैंक लिमिटेड

प्रधान कार्यालय लखनऊ में

जमा कर अपनी आर्थिक स्थिति सुदृढ़ कीजिये

उक्त बैंक सहकारी आन्दोलन के अन्तर्गत सरकारी साझेदारी तथा बैंकिग संस्थान अधिनियम के अन्तर्गत सरकार द्वारा निरीक्षित एक मात्र एवं विश्वसनीय बैंकिग संस्था है

शाखाएँ— आगरा, अलमोड़ा, बरेली, फैजाबाद, डी० ए० वी० कालेज कानपुर, गोंडा, पीलीभीत, कानपुर, रामपुर, सीतापुर, वाराणसी।

क्षेत्रीय कार्यालय— आगरा, गोरखपुर, कानपुर, बरेली।

हमारी विशेषताएँ

१—राज्य की समस्त कृषि योजनाओं के लिए जिला एवं केन्द्रीय सहकारी बैंकों के माध्यम से आर्थिक सुविधाएँ प्रदान करना।

२—प्रत्येक प्रकार की बैंकिग सुविधायें प्रदान करना।

३—अल्प सामयिक एवं मियादी अमानतें आकर्षक दरों पर स्वीकार करना।

आप भी राष्ट्र निर्माण योजनाओं की पूर्ति, उसकी समृद्धि के निमित्त अपना धन लगाकर सहयोग प्रदान कर राष्ट्र निर्माण में हाथ बटाएँ।

अन्य जानकारी

क्षेत्रीय अधिकारी, शाखा प्रबन्धक या मुख्य कार्यालय से प्राप्त कीजिये

गत ५ वर्षों में बैंक की प्रगति के कुछ आंकड़े

	३०—६—६०	३०—६—६५
१—पूँजी	२५४·७६ लाख	५३८·७६ लाख
२—अमानतें	७४७·४६ लाख	२०६०·०८ लाख
३—सहकारी संस्थाओं को ऋण दिया गया	१३०५·९५ लाख	३३३६·२५ लाख
४—लाभ	१६·०५ लाख	३७·०२ लाख

गङ्गासिंह चूड़ामणि
आई० ए० एस०
अध्यक्ष

रोशनलाल शुक्ल
उपाध्यक्ष

ए० आर० खान
सामान्य प्रबन्धक

फोन नं० २४८५४ तार : मार्कफेड

उत्तर प्रदेश कोआपरेटिव फैडरेशन लि०,

(स्थापित : १९४३)

प्रधान कार्यालय:— ६ कैंपर रोड, लखनऊ

शाखायें:–बम्बई, कलकत्ता, धनवाद, कानपुर, हापुड़, आगरा, हाथरस, बाँदा, वाराणसी, कालपी ।

राज्य की सहकारी क्रय-विक्रय समितियों एवं जिला सहकारी संघों की शीर्षस्थ संस्था

कारोबारी पूँजी—	रु० ४·३५ करोड़
निजी पूँजी—	रु० १·९८ करोड़
वर्ष १९६४-६५ में किया व्यवसाय-	रु० १४ करोड़ से अधिक

मुख्य व्यवसाय—

★ खाद्यान्न, कृषि-उपज, गुड़, खाँडसारी, जूट, पटसन आदि ।

★ रासायनिक उर्वरक, उन्नतिशील बीज एवं कृषि-यन्त्र ।

★ सहकारी भट्टों हेतु कोयला प्रदान ।

★ रोजिन तथा टरपेन्टाइन के निर्माता ।

★ विशुद्ध आयुर्वेदिक दवाओं के निर्माता ।

दूसरे प्रदेशों की दालें, खाँडसारी, गुड़, सरसों का तेल, तिलहन तथा अन्य कृषि उपज के निर्यात हेतु एवं हमारे औषधि निर्माणशाला द्वारा निर्मित आयुर्वेदिक व अन्य पेटेंन्ट दवाओं की बिक्री एजेन्सी के लिए सम्पर्क स्थापित कीजिए ।

जी० एस० चूड़ामणि आई. ए. एस.	**वीरपालसिंह**	**ओमप्रकाश शर्मा**
अध्यक्ष	उपाध्यक्ष	मन्त्री

गणतन्त्र दिवस के फरम पावन पर्व के अवसर पर

मथुरा जिला परिषद

अपने पूज्य स्वर्गीय प्रधान मंत्री श्री लालबहादुर शास्त्री

को श्रद्धाञ्जलि अर्पित करती है तथा उनके राष्ट्रीय नारे

जय जवान जय किसान

के परिपालनार्थ संकल्प करती है कि :–

देश की खाद्य समस्या के समाधान हेतु

१–लघु सिंचाई योजनाओं द्वारा चप्पा-चप्पा भूमि को सिंचित करके दो फसली व तीन फसली बनायेंगे।

२–गोबर, कूड़े, पत्ते आदि की खाद बनाकर रसायनिक खाद की कमी को दूर कर उन्नतिशील कृषि यन्त्रों को अपनाकर अच्छे बीज प्रयोग कर, कीट नाशक दवाओं से फसलों की रक्षा कर अधिक अन्न उपलब्ध करायेंगे।

३–मत्स्य पालन, कुक्कुट पालन द्वारा सीमा पर लड़ने वाले जवानों को पौष्टिक आहार उपलब्ध करायेंगे।

४–सप्ताह में एक दिन व्रत रक्खेंगे।

सुरक्षा व समृद्धि हेतु

१–परिवार नियोजन के साधनों को अपनायेंगे।

२–राष्ट्रीय सुरक्षा प्रमाण-पत्रों पर धन लगायेंगे तथा राष्ट्रीय सुरक्षा कोष में गल्ला देकर जवानों का मनोबल बढ़ायेंगे।

शिक्षा व जन कल्याण हेतु

१–सभी बाल-बालिकाओं को शिक्षा प्राप्त हेतु पाठशाला भेजेंगे।

२–आवागमन के साधनों के सुधार के हेतु ब्रजयात्रा-मार्गों एवम् अन्य ग्रामीण मार्गों का निर्माण करेंगे।

बृजमोहन सिंह
मुख्य अधिकारी
जिला परिषद्, मथुरा।

चकलेश्वर सिंह
अध्यक्ष
जिला परिषद, मथुरा।

मुद्रक तथा प्रकाशक : श्री किशन प्रसाद जैन, संयुक्त मन्त्री, अखिल भारतीय ब्रज साहित्य मण्डल, मथुरा के लिए राष्ट्रीय प्रेस, डैम्पियर नगर, मथुरा में मुद्रित।

ब्रजभारती

भाद्रपद सं० २०२३ वि०

सम्पादक :
वृन्दावनदास
बी० ए०, एल-एल० बी०

प्रकाशक :
किशन प्रसादजैन
संयुक्त प्रधान मन्त्री

अखिल भारतीय ब्रज साहित्य मंडल, मथुरा

वर्ष २०] [अङ्क २

* अनुक्रमणिका *

क्र. सं.	लेख	लेखक	पृष्ठ सं०
१	स्याम रूप सावन	... श्री मोहनलाल शर्मा	१
२	सम्पादकीय	... ” वृन्दावनदास	२
३	वेद व्यास का जन्मदिन	... ” बनमाली शास्त्री चतुर्वेदी	६
४	परमानन्द दास का वात्सल्य-रस परक काव्य	... डा० करुणा शर्मा	९
५	ब्रजभाषा की गद्य टीकाऐं	... डा० प्रेम प्रकाश गौतम	११
६	राजस्थानी बनाम हिन्दी	... श्री युगल किशोर चतुर्वेदी	१७
७	जनपदीय साहित्य की समस्याऐं, परम्परा और आधुनिक कविकर्म	... ” सतीशचन्द्र मिश्र	२१
८	भारत की ऐतिहासिक सामग्री का निरूपण	... ” वृन्दावनदास	२५
९	मथुरा की मूर्तिकला	... ” शिवाधार मिश्रा	२९
१०	ब्रजभाषा का सौन्दर्य	.. ” गिरीश कुमार चतुर्वेदी	३२
११	ब्रजत्व के पुनरुत्थान की दिशा–एक चिन्तन	.. ” मोहनलाल शर्मा	३५
१२	पत्र व्यवहार	... ” राधेबिहारीलाल सक्सेना	३९
१३	स्व० डा० वासुदेवशरण अग्रवाल के निधन पर संवेदना [कविता]	... ” गोविन्द चतुर्वेदी शास्त्री	४०
१४	वेद और उनके साहित्य का इतिहास	... ” वृन्दावनदास	४१
१५	मथुरा से प्राप्त एक नवीन मृण्मूर्ति	.. नीलकण्ठ पुरुषोत्तम जोशी	४४

ब्रजभारती

[अखिल भारतीय ब्रज-साहित्य-मण्डल की मुख-पत्रिका]

वर्ष २०] मथुरा भाद्रपद सं० २०२३ [अङ्क २

स्याम रूप सावन

[रचियता—श्री मोहनलाल शर्मा, कोसीकलाँ]

(१)

मोर के पखौआ सौ अर्धचन्द्र मुकुट सोहै,
नीले बदरान तन स्यामता लुनाई है ।
इन्द्रधनुष चमकत ज्यों झलकत पीताम्बर दिव्य,
दामिनि की दमक ज्यों बनमाल सुखदाई है ।।
कूक पिक मोरन की बांसुरी बजाई मनौं,
छाई हरियाई, फैली 'मोहन' परछाई है ।
आली कछू स्वांति सी परी है ब्रजमण्डल माँहि,
पावस ऋतु आज स्याम रूप धरि आई है ।।

(२)

स्याम स्याम टेरत घन हू घनस्याम भये,
ब्यार सरसरात सीरी स्याम सी सुहावत है ।
'मोहन' वनिराजि हरियाई स्तामताई लिए,
स्याम सुधि आई सो कदम्ब पुलकावत है ।।
स्याम रंग देखि कूकन सारंग लागे,
स्यामप्रिया उमगत निज जीवन तरंगावत है ।
आली कछू स्वांति सी परी है ब्रजमण्डल माँहि,
स्याम रूप सावन मनभावन आज आवत है ।।

* * *

सम्पादकीय

ब्रजभाषा के गद्य का स्वरूप स्थिर करने का विषय बहुधा विद्वानों के विचाराधीन होता है। ब्रजभाषा गद्य अनेकों प्रकार का है। यदि यह कहें कि प्रत्येक जनपद अथवा ग्राम की ब्रजभाषा अपना अलग स्वरूप रखती है तो कुछ अत्युक्ति न होगी। ब्रजभाषा गद्य का स्वरूप अनेकता में एकरसता के सदृश है। जहाँ ब्रजभाषा गद्य अनिवार्यतः एक वस्तु है वहाँ यह भी सत्य है कि प्रत्येक स्थान पर इसकी पृथक्ता अथवा विचित्रता स्पष्ट रूप से प्रकट होती है। इसके अतिरिक्त नागरिकी ब्रजभाषा गद्य ग्राम गद्य से पृथक् स्वरूप प्रस्तुत करता है। मथुरा के चतुर्वेदियों में बोली जाने वाली ब्रजभाषा को कुछ विद्वान अत्यन्त सरस एवं सुसंस्कृत मानते हैं। प्रश्न यह उठता है कि किस ब्रजभाषा गद्य को अपनाया जाय अथवा उसमें आवश्यक परिवर्तन कर उसे व्यवहार में लाया जाय? सभी गद्य बोल-चाल की भाषा में प्रयुक्त किये जाते हैं, सरसता एवं सौन्दर्य कोई भी एक दूसरे से कम नहीं है।

यदि यह कहें कि ब्रजभाषा गद्य को परिष्कृत करके अर्थात् अपभ्रंश शब्दों के स्थान पर शुद्ध संस्कृत शब्दों का प्रयोग करके ब्रजभाषा गद्य का निर्माण करें तो हम पूछते हैं कि खड़ी बोली अथवा हिन्दी भाषा और क्या है? वस्तुतः हिन्दी भाषा ब्रजभाषा का ही परिमार्जित स्वरूप है। इस परिमार्जन में अनेक मनीषियों एवं साहित्यकारों की कई शताब्दियों की तपःपूत साधना निहित है। वास्तव में ब्रजभाषा ने स्वतः निर्वतमान होकर अपनी दुहिता को स्थान दिया है। ब्रजभाषा और हिन्दी में माता और पुत्री की भाँति कोई प्रतिस्पर्द्धा का प्रश्न नहीं उठता है। हम ब्रजभाषा के पुनरुद्धार, पुनसंस्थापन आदि के लिए भले ही प्रयत्नशील हों परन्तु इस तथ्य को कभी न भूलें कि खड़ी बोली (हिन्दी) ब्रजभाषा ही की दुहिता है। ब्रजभाषा गद्य में हम भले ही लिखें परन्तु हिन्दी के प्रति की जाने वाली अपनी सेवा में कोई कमी न आने दें।

ब्रजभाषा वास्तव में अनादि काल से बोल चाल की भाषा है। यह ग्रामों की प्रधान भाषा है। भारतमाता ग्रामवासिनी है। भारतवर्ष के जनसमूह का अधिकांश भाग ग्रामों में निवास करता है। जिन प्रदेशों में हिन्दी बोली जाती है उन प्रदेशों के ग्रामों में (जनपदों में) ब्रजभाषा बोली जाती है। हिन्दी कितनी ही उन्नति करले,कितना ही प्रचार पा जाय ब्रजभाषा का अपना अधिकार अक्षुण्ण रहेगा, ब्रजभाषा को जनपदों से कोई नहीं हटा सकता। उसके वास्तविक स्थान से उसे अपदस्थ करने वाली कोई अन्य भाषा नहीं है। जहाँ वह बोली जाती है वहाँ वह समृद्ध है उसे कुछ लेने की जरूरत नहीं वह तो कुछ देने की क्षमता रखती है।

आदरणीय श्री बनारसीदास जी चतुर्वेदी ने हमें लिखा है कि मण्डल जनपदीय आन्दोलन को न भूले, मण्डल को चाहिए कि उस आन्दोलन को तीव्रगति प्रदान करे। स्वर्गवासी डा० वासुदेव

शरण जी अग्रवाल का भी यही मत था, उन्होंने तो अपने कई ग्रन्थों में जनपदीय आन्दोलन पर विशद प्रकाश डाला है। वास्तव में 'जनपदीय आन्दोलन' इन शब्दों से क्या अपेक्षित है इसका सम्यक् बोध नहीं होता। जनसाधारण को समझने के लिए इसकी उचित व्याख्या होनी चाहिये। जनपदीय आन्दोलन का अर्थ है जनपदीय संस्कृति एवं भाषा आदि से हिन्दी को समृद्ध करना। जनपदीय भाषाओं में अनेक ऐसे उपयुक्त शब्द भरे पड़े हैं जिनके पर्याय न हिन्दी (खड़ी बोली) में हैं और न किसी अन्य अँग्रेजी आदि भाषा में। अपनी ही भाषा के हजारों तकनीकी शब्द हम जनपदीय भाषाओं से लेकर अपनी भाषा के भण्डार की वृद्धि कर सकते हैं। हमारा जनपदीय ज्ञान अत्यन्त सीमित है। यदि हमें अपने नागरिक जीवन से क्षणिक अवकाश लेकर जनपदों में थोड़े समय के लिए भी रहने का अवसर मिले तो हम वहाँ से अपूर्व ज्ञानार्जन कर सकते हैं। हिन्दी के सेवियों से अनुरोध है कि वे जनपदीय साहित्य, संस्कृति एवं भाषा का जनपदों में जाकर अध्ययन करें इससे उनको जो नया ज्ञान प्राप्त होगा उससे उन्हें महान् सुख होगा और हिन्दी की श्रीवृद्धि होगी।

हिन्दी सम्बर्द्धिनी योजना

जनपदीय शब्दों, मुहाविरों, लोकोक्तियों आदि से हिन्दी का भण्डार भरने की योजना का नाम हम 'हिन्दी सम्बर्द्धिनी योजना' रखते हैं। हम हिन्दी के लेखकों, साहित्यकारों को इस योजना में अपना योगदान देने को आमन्त्रित करते हैं। जो लेखक हमें अपनी जानकारी के आधार पर ऐसे शब्दों, मुहाविरों, लोकोक्तियों आदि को जिनको वे उचित समझें लिखकर भेजेंगे उन्हें हम ब्रज-भारती के पृष्ठों में उनका नाम देकर छापेंगे। चीज नई होनी चाहिये जिसका उपयोग हिन्दी में अब तक न हो रहा हो और जिसके सम्मिलित होने से हिन्दी के भण्डार में वृद्धि हो। अपनी जनपदीय यात्राओं के वर्णन भी उपरोक्त संदर्भ में भेजे जा सकते हैं। हमारा आशय अध्ययनात्मक जनपदीय यात्राओं से है। हम अपनी योजना के महत्त्व को स्वर्गीय डा० वासुदेव शरण जी अग्रवाल के शब्दों में निम्नलिखित रूप से प्रस्तुत करते हैं। "जनपदों की भाषायें तो साहित्य की साक्षात् कामधेनुएँ हैं। उनके शब्दों से हमारा निरुक्त शास्त्र भरा पूरा बनेगा। हिन्दी शब्द–निरुक्ति जनपदों की बोलियों का सहारा लिये बिना चल ही नहीं सकती। जनपदों की बोलियाँ कहावतों और मुहाविरों की खान हैं। हम चुस्त राष्ट्र भाषा बनाने के लिए तरस रहे हैं पर उसकी जो खानें हैं उनको खोजकर सामग्री प्राप्त करने की ओर हमने अभी तक ध्यान नहीं दिया। हिन्दी भाषा की तीन हजार धातुओं को यदि ठीक तरह ढूँढा जाय तो उनकी सेवा से हमें भाषा के लिये क्या-क्या शब्द नहीं मिल सकते। खेल और क्रीड़ाएँ क्या राष्ट्रीय जीवन के अङ्ग नहीं है? मेले पर्व और उत्सव सभी हमारी पैनी दृष्टि के अन्तर्गत आ जाने चाहिए। इन आंखों को लेकर जब हम अपने लोक के आकाश में ऊँचे उठेंगे तब सैकड़ों हजारों नई चीजों को देखने की योग्यता हमारे पास स्वयं आजायगी। भारत के साहित्यकार विशेषत: हिन्दी के साहित्य मनीषियों को चाहिये कि इस

नवीन दृष्टिकोण को अपना कर साहित्य के उज्जवल भविष्य का साक्षात् दर्शन करें ।" (पृथ्वी-पुत्र पृष्ठ ३, ४, डा० वासुदेवशरण लिखित)

हम अपनी योजना का आशय डा० अग्रवाल की ओजस्वी वाणी से अधिक किसी भाषा में समझाने का सामर्थ्य नहीं रखते । हम साहित्यज्ञों से आशा करते हैं कि वे हिन्दी सम्बर्द्धिनी योजना को गतिशील बनायेंगे ।

यदि जनपदीय अध्ययन सम्बन्धी कोई विचारपूर्ण लेख हमें मिलेगा तो हम उसे सहर्ष ब्रजभारती में देंगे । हम इस योजना पर साहित्यकों द्वारा विचार विमर्श का भी स्वागत करेंगे । जनपदीय भाषायें शाश्वत हैं, वे जन-सामान्य के हृदयस्तल से निकली हुई अमर वाणियाँ हैं । हमें चाहिए कि उनके मानसरोवर से विस्तृत जल से अपनी भाषा का सिंचन करें । अपनी भाषा को पुष्पित और पल्लवित करने का यह अचूक साधन हैं ।

डा० वासुदेव शरण अग्रवाल का दुःखद निधन :—दैवदुर्विपाक से हिन्दी साहित्य के महारथी, संस्कृत तथा अनेकों भाषाओं के प्रकाण्ड पण्डित, वेद शास्त्र मर्मज्ञ डा० वासुदेवशरण अग्रवाल का वाराणसी में स्वर्गवास हो गया । डा० अग्रवाल हमारे ब्रज साहित्य मण्डल के अध्यक्ष रह चुके हैं । उन्होंने अध्यक्ष पद पर रहकर मण्डल की अकथनीय सेवा की थी । वस्तुतः वे मण्डल के संस्थापकों में से थे । मण्डल द्वारा प्रकाशित श्री सेठ कन्हैयालाल पोद्दार अभिनन्दनग्रन्थ के वें प्रधान संपादक थे । जैसा कि सर्वविदित है उक्त अभिनन्दनग्रन्थ ब्रज ज्ञान का विश्व कोष है और अलभ्य साहित्यिक सामग्री के परिपूर्ण है । डा० अग्रवाल ने वेदों पर जो शोधकार्य इन वर्षों में प्रस्तुत किया वह अद्वितीय है । डाक्टर अग्रवाल ने दर्जनों उपयोगी एवं शोध ग्रन्थ लिखे हैं । उनका निधन हिन्दी संसार की एक महान् दुर्घटना है ।

डाक्टर साहिब के निधन पर मण्डल की ओर से मथुरा में एक शोक सभा इन पंक्तियों के लेखक के सभापतित्व में हुई थी । उस सभा में मण्डल की ओर से एक घोषणा हुई कि श्रद्धेय मृतात्मा के सम्मान में ब्रजभारती का एक अंक स्मृति अंक के रूप में निकाला जायगा । विद्वान् लेखकों से प्रार्थना है कि स्वर्गीय डाक्टर अग्रवाल के व्यक्तित्व अथवा कृतित्व पर अपने लेख हमें भेजें ।

राष्ट्रभाषा सन्देश

ता० १३ अगस्त के पत्र राष्ट्र भाषा सन्देश में अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष एवं सदस्य सेठ गोविन्ददास जी के उस वक्तव्य का उल्लेख है जो उन्होंने दिल्ली में पत्रकार सम्मेलन में दिया था । उनका यह वक्तव्य हिन्दी व्यवहार वर्ष का उद्देश्य और कार्यक्रम बनाने के उद्देश्य से दिया गया था । इसी १५ अगस्त से हिन्दी व्यवहार को अधिक पुष्ट और प्रचलित करने के उद्देश्य से एक वर्ष के लिए यह आन्दोलन चलाया जा रहा है । माननीय सेठ जी ने यह चेतावनी दी कि यदि हिन्दी भाषी राज्यों की सरकारें हिन्दी में काम नहीं करेंगी तो उन्हें इसके लिए विवश किया जायगा । सेठ गोविन्ददास ने कहा कि हिन्दी को व्यवहार में लाने के लिए १५

अगस्त से हिन्दी व्यवहार वर्ष का आरम्भ हो रहा है। अगले बारह महीनों में इस बात का प्रयत्न किया जायगा कि हमारे नागरिकों के दैनिक जीवन में हिन्दी का प्रयोग निरन्तर बढ़े और अंग्रेजी व्यवहार नहीं आये। अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन नागरिकों से अनुरोध करेगा कि वे अपने पत्र व पत्रों पर पता हिन्दी में लिखें। हस्ताक्षर हिन्दी में करें। तार हिन्दी में भेजें और चैक भी हिन्दी में लिखें। यही नहीं वे सरकार से पत्र व्यवहार भी हिन्दी में ही करें।

हिन्दी का प्रयोग बढ़ाया जाय

यद्यपि हिन्दी ने २६ जनवरी १९६५ से राज्यभाषा का स्थान प्राप्त कर लिया है परन्तु स्वतन्त्रता के पश्चात् हमारे दैनिक जीवन में हिन्दी का प्रयोग कम होता जा रहा है।

खेद की बात तो यह है कि कि हिन्दी भाषी राज्यों में भी सरकारी काम-काज अंग्रेजी में किया जाता है। इन राज्यों के सचिवालयों में जिलों, नगरों, पंचायतों आदि तक में सारा पत्र व्यवहार अंग्रेजी में ही किया जाता है।

सेठ गोविन्ददास ने नागरिकों से कहा कि वे सरकारी काम काज हिन्दी में करने की सरकार से माँग करें। उन्होंने इस सम्बन्ध में यह भी कहा कि जब हिन्दी भाषी राज्य हिन्दी में कामकाज करेंगे तब अन्य राज्य भी हिन्दी में काम करने के लिये प्रेरित होंगे।

सेठ गोविन्ददास ने व्यापारी वर्ग से अपना कामकाज हिन्दी में करने की अपील करते हुए कहा उनकी सब प्रकार सामिग्री भी हिन्दी में लिखी जानी चाहिए।

पत्रकार सम्मेलन का आयोजन दिल्ली प्रादेशिक हिन्दी साहित्य सम्मेलन की ओर से किया गया था। दिल्ली में हिन्दी व्यवहार वर्ष के अन्तर्गत किये जाने वाले कार्यों पर प्रकाश डालते हुए दिल्ली प्रादेशिक हिन्दी साहित्य सम्मेलन के महासचिव श्री गोपाल प्रसाद व्यास ने कहा कि सम्मेलन के ३ हजार सदस्य घर पर जाकर नागरिकों को हिन्दी में काम करने का अनुरोध करेंगे।

ब्रज साहित्यमण्डल अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष सेठ गोविन्ददास और दिल्ली प्रादेशिक हिन्दी साहित्य सम्मेलन के कहा सचिव श्री गोपाल प्रसाद व्यास के सत्प्रयासों के प्रति अपनी गहरी आस्था प्रकट करता है तथा जनता से अपील करता है कि निर्दिष्ट कार्य-क्रम को अपने सहयोग से सफल बनावें। हमारी समस्त शुभकामनाऐं उनके साथ हैं।

मण्डल की गति विधियाँ

मण्डल की गतिविधियाँ पूर्ववत् अत्यन्त उत्साह पूर्वक चल रही हैं। ब्रजभारती नियमित रूप से निकल रही है तथा महत्वपूर्ण अवसरों पर साहित्यक गोष्ठियों का आयोजन भी भली प्रकार से हो रहा है। भूमि अविग्रहण का कार्य सम्पन्न होने पर मण्डल तीव्र गति से आगे बढ़ेगा ऐसी आशा है।

—वृन्दावन दास

वेद व्यास का जन्म दिन

ले० श्री बनमाली शास्त्री चतुर्वेदी, साहित्याचार्य, मथुरा

चेदि (चँदेल) देश के राजा उपरिचर के वीर्य से मत्सी-मछली के उदर से निकलने वाली, धीवर पोषित मत्स्य गन्धा, सत्यवती अथवा वासवी नामक कन्या में पराशर ऋषि से द्वापर युग के सन्ध्यांश में वेद के विभाग कर्त्ता, अष्टादश (१८) पुराण निर्माता महाभारतकार एवं ब्रह्म (वेदान्त) सूत्र रचयिता महर्षि वेद व्यास का जन्म हुआ था ।

ततः सप्तदशे जातः सत्यवत्यां पराशरात् (भा. १ । ३ । २१ ।

के अनुसार वेदव्यास भगवान् श्री विष्णु के सत्रहवें अवतार रूप हैं । अन्यान्य (श्री राम-कृष्ण आदि) अवतारों के सम्बन्ध में धर्म सिन्धु आदि धर्म शास्त्रीय ग्रन्थों में जैसा विशद वर्णन पाया जाता है, वैसा वर्णन तो व्यासजी के सम्बन्ध में नहीं मिलता, फिर भी आषाढ़ शुक्ला पूर्णमासी के कर्त्तव्यों के उल्लेख करते समय "निर्णय सिन्धु" में इतना लेख अवश्य मिलता है कि:–

"अत्रैव व्यासपूजोक्ता" (नि. सि०)

सब पञ्चाङ्गों में तथा दैनन्दिनि—डायरियों में भी इस दिन व्यास पूजा का निर्देश पाया जाता है ।

प्रश्न किया जा सकता है कि — इसी दिन व्यास पूजा क्यों करनी चाहिये ? तो उत्तर होगा कि— यह व्यासजी की जन्म तिथि है और स्वयं वेद व्यास ने अपने उद्देश्य से पूजा करने का आदेश दिया है । यही कारण है जो इस दिन व्यास पूजा की जाती है ।

इस प्रसङ्ग में श्री शुकसुधी ने स्वसंगृहीत "स्वधर्मा मृत सिन्धु" नामक ग्रन्थ में" ब्रह्माण्ड पुराण" का उपाख्यान इस प्रकार उद्घृत किया है :—

वैशम्पायन नारद मुनि से पूछते हैं :—

ब्रह्मन् वै श्रोतु मिच्छामि, व्यास माहात्म्यमुत्तमम् ।
कथयस्व प्रसादेन ममाग्रे द्रुहिणात्मज ॥

ब्रह्मन् ! मैं उत्तम व्यास महिमा सुनना चाहता हूँ, ब्रह्म पुत्र ! कृपया उसे मेरे सामने कहिये ।

उत्तर देते हुए नारदजी बोले : — "वाराणसी" नगरी में अत्रिगोत्र वाला एक वेद निधि नामक ब्राह्मण रहता था । उसकी पत्नी का नाम था 'वेदवती' । धन-सन्तान हीन वह सदा यही सोचा करती थी कि :— "ऐसा कौन पुण्य या दान है जिससे मुझे धन-सन्तान का लाभ हो" । सोचते सोचते बहुत दिन बीतने पर एक दिन वेदनिधि कहीं कथा में यह सुन आये कि— वेद व्यास बेश बदल कर प्रतिदिन मध्यान्ह में गङ्गा स्नान करने आया करते हैं" । एक दिन वेद निधि मध्यान्ह के समय वेद व्यास के दर्शन की कामना से गङ्गा-तट पर गया, और देखा कि—एक

दण्ड-धारी म्लेच्छ भिक्षुक गंगा स्नान करके जा रहा है । वेद निधि ने सोचा कि, हो न हो यही वेद-व्यास हैं । यह सोचने के बाद उसने उसके पाँव पकड़ लिये, इस पर म्लेच्छ भिक्षुक रूप से तिरोहित वेद-व्यास गाली देते हुए बोले,---अरे अधम दूर हो जा । "यह सुन कर वेद निधि बोला" :– महाराज मैंने आपको पहिचान लिया है, आप वेदव्यास हैं" । वेद व्यास ने फिर गालियाँ दीं, परंतु वेद निधि यही कहता रहा कि--' आप वेद व्यास" ही हैं । तब वेद व्यास ने उसे एकान्त में ले जाकर कहा: —"हाँ मैं व्यास ही हूँ, कहो क्या चाहते हो" । वेद निधि ने कहा—" महाराज ! कल मेरे पिताजी का श्राद्ध है, कृपया आप भोजन के लिये पधारें । व्यास जी स्वीकृति देकर चले गये । वेद निधि ने घर जाकर अपनी पत्नी को सब समाचार सुनाया । पत्नी बोली नाथ ! आप चिन्ता न करें मैं मब प्रबन्ध कर लूँगी । दूसरे दिन सबेरा होते ही उसने पायस बनाया, श्राद्ध की सामग्री एकत्रित की एवं शालग्राम की पिण्डी चौकी पर पधरा कर उनकी चन्दन, पुष्प और तुलसी पत्र से पूजा की । मध्यान्ह में श्राद्ध काल आते ही वेदव्यास पधारे । वेद निधि अर्घ्य पाद्यादि देकर उनका सत्कार किया । व्यास मुनि ने शालग्राम के दर्शन कर उनको प्रणाम किया और आसन पर बैठ कर वेद निधि को श्राद्ध कराया, तथा वेद निधि से कहा कि तुम्हारे दस पुत्र होगें और सात्पीड़ी तक सम्पत्तिशाली बने रहोगे । अन्त समय में तुम को भगवल्लोक—बैकुण्ठ धाम प्राप्त होगा । इसके अनन्तर वेद निधि ने निवेदन किया कि :– "मुनिवर्य ! कृपया बतलाइये कि मैं आपका दर्शन फिर कैसे प्राप्त करूं ? तब व्यास जी ने कहा :—

शृणु विप्र ! तवेच्छा चेद्, दर्शनार्थं तदात्वया ।
पूजनीयो विशेषेण, कथावाचयिता स्वयम् ।।

ब्राह्मण देव ! यदि मेरा दर्शन करना चाहते हो तो तुम कथा वाचक की पूजा करना । वह मेरा स्वरूप है अथवा साक्षात् मैं ही हूँ । "यह सुनकर ब्राह्मण ने फिर पूछा :—

कदा सम्पूजनीयश्च, कस्मिन् मासे दिने तथा ।
केन केन प्रकारेण, तदवदस्व भमाग्रतः ।।

भगवन् ! कब किस महीना में किस दिन और किस प्रकार मुझे पूजा करनी चाहिये । यह मुझे बतलाइये ।

इस प्रश्न का उत्तर देते हुए वेद व्यास ने कहा :—

मम जन्मदिने सम्यक् पूजनीयः प्रयत्नतः ।
आषाढ शुल्क पक्षेतु, पूर्णिमायां गुरौ तथा ।।
पूजनीयो विशेषेण, वस्त्राभरण धेनुभिः ।
दक्षिणामिः सुपुष्टामिः मंत्स्वरूपं प्रपूजयेत् ।।
एवंकृते त्वया विप्र ! मत्स्वरूपस्य दर्शनम् ।
भविष्यति न सन्देहो-भयैवोक्तं द्विजोत्तम ।।

मेरे जन्म दिन आषाढ़ शुल्क पूर्णिमा गुरुवार को वस्त्र, आभूषण, गो और पुष्कल दक्षिणा से मेरे स्वरूप भूत कथा वाचक की तुमको पूजा करनी चाहिये। ऐसा करने से तुम को मेरे स्वरूप का दर्शन हो सकेगा। इसमें सन्देह नहीं।

किञ्च— यो ना पूजयते भक्तया मद्दिन विफलं भवेत्।
तस्य मर्त्यस्यवर्षायुः पुण्यंच क्षीयते तदा।
कथयित्वा वरंदत्वा तत्रान्तर धीयत॥

जो मनुष्य भक्तिभाव से मेरे दिन पूजा नहीं करता उसकी आयु तथा पुण्य क्षीण हो जाते हैं। ऐसा कह कर वह अन्तर्ध्यान हो गये।

इस उपाख्यान को सुन कर नारद मुनि वैशम्पायन से बोले :—

वैशम्पायन! तस्मात्त्वं व्यासपूजां कुरुष्वताम्।
कथावाचयितारंच व्यासरूपं नतोऽस्म्यहम्॥

इसलिये हे वैशम्पायन! तुम कथा वाचक की व्यास रूप से पूजा करो। व्यास रूप कथावाचक को मैं प्रणाम करता हूँ।

इस प्रकार कथा वाचक की वेद व्यास के रूप में निर्दिष्ट यह पूजा कालान्तर में गुरु पूजा के रूप में परिणत हुई जान पड़ती है।

पुराणों के अध्ययन से जान पड़ता है कि वेद व्यास से पहले भिन्न-भिन्न काल में भिन्न-भिन्न व्यास अवतीर्ण हुए थे। कूर्म, वायु और विष्णु—पुराणों में २८ व्यासों का उल्लेख मिलता है। वे विष्णु के स्वरूप भूत कहे जाते हैं।

परमानन्ददास
का
वात्सल्य-रस-परक काव्य

डा० करुणा शर्मा एम० ए०, डी० फिल्०

परमानन्द दास अष्टछाप के प्रधान कवियों में से एक हैं। सूरदास के पश्चात् काव्य के क्षेत्र में परमानन्ददास एक विशिष्ट साधना को लेकर आते हैं। साधना, भक्ति और काव्य की ऐसी त्रिवेणी परमानंददास के काव्य में मिलती है जो सूरदास की क्षति पूर्ति करने में सहज योग प्रदान करती है। वे पारगामी चिंतक और महान कवि थे।

परमानंद दास एक कुलीन कान्यकुब्ज घराने में उत्पन्न हुए। जन्म से ही ये वैराग्य प्रिय थे। पिता द्रव्यार्थी थे और ये अध्यात्म चिंतन में आसक्त। इनका जन्म सं० १५५० माना गया है।

परमानन्द दास जन्म जात कवि थे। प्रतिदिन रचना करना, पद बनाना और भगवद्-भजन करना यही इनका व्यसन था। महाप्रभु बल्लभाचार्य ने इन्हें अपनी तन्मयता, ज्ञान, चिंतन साधना और भक्ति से प्रभावित होकर दीक्षा दी। परमानन्द दास ने — ‘‘श्री बल्लभ रतन जतन करि पायो’’ कहकर अपने गुरु के महात्म्य के प्रति श्रद्धान्जली प्रकट की है। यही नहीं इनके अनेक पदों में श्री बल्लभाचार्य का श्रद्धा सहित उल्लेख मिल जाता है।

परमानन्द दास कवि होने के साथ-साथ एक निपुण कीर्तनियाँ भी थे। प्रतिदिन उनकी स्वरमाधुरी से असँख्य आलोड़ित विलोड़ित होते थे। उनका व्यक्तित्व भगवद् रंग में आद्यन्त रंगा हुआ था। वे सत्यनिष्ठ, त्यागी, उदार और अत्यंत भावुक थे। ब्रज के प्रति उनका प्रेम असीम था। वे सच्चे वैष्णव थे तथा ‘‘सारंग’’ नाम से काव्यरचना करते थे। वे सच्चे सतसंगी थे और सूर, कुंभनदास तथा कृष्णदास के समकालीन थे। अड़ैल से दीक्षा लेकर ये महाप्रभु के साथ ब्रज आये। वहाँ से गिरि गोवरधन गए तथा उन्हीं में सदैव के लिए रम गए। उनका निवास स्थान सुरभिकुंड था।

परमानन्द दास ने सूरदास की भाँति अनेकों पद लिखे होंगे पर उनमें से लगभग १५०० पद ही उपलब्ध हो पाये हैं। शेष साहित्य अभी तक शोध की वस्तु है। इधर परमानन्द दास के पदों के दो संग्रह एक विद्या विभाग कांकरौली और दूसरा भारत प्रकाशन मंदिर अलीगढ़ से प्रकाशित हुए हैं। दोनों ग्रन्थों और कवि के अव्याहत काव्य सृजन को देखकर यह अनुमान किया जा सकता है कि उनके काव्य का ‘‘सागर’’ नाम सार्थक है। अष्टछाप के कवियों में दो ही सागर हुए एक ‘‘सूरसागर’’ और दूसरा ‘‘परमानन्द सागर’’। यद्यपि सूर सागर की भाँति परमानन्द सागर विस्तार रहित है तथापि उसमें जो कुछ भी उपलब्ध है वह किसी भी रूप में किसी तल स्पर्शी मर्म भेदी महासमुद्र से कम नहीं है। परमानन्द सागर पूर्णतः भागवतीय भक्ति तत्व का अनूठा ग्रन्थ है यही कारण है कि इसे सागर की उपाधि से आभूषित किया गया है। वार्ता में इसका उल्लेख पूर्ण स्पष्टतः मिल जाता है।

परमानन्द दास का काव्य विशुद्ध रूप से भक्ति काव्य है। उनका समस्त काव्य सागर दो भागों में विभक्त है—(१) वर्षोत्सव और (२) लीला। इन दोनों को कवि ने कई छोटे-छोटे उप शीर्षकों में विभक्त कर दिया है। वर्षोत्सव और नित्यलीलाक्रम दोनों में इनके कवि का सहज संभार है। पुष्टिमार्गीय दर्शन के आधार पर भी यदि कवि के काव्य का मूल्यांकन किया जाय तो यह स्पष्टतः कहा जा सकता है कि कवि ने भक्ति रसस्निग्ध हो कर दर्शन के क्लिष्टत्व को बोधगम्य बना दिया। यही नहीं, काव्य के साथ उनके गीतों ने संगीत को भी योगदान दिया है। परमानन्द दास के काव्य के परिशीलन से यह स्पष्ट होता है कि कवि ने भागवत के दशम स्कन्ध पर ही अपने काव्य का अभिनिवेश स्थापित किया है। इस प्रकार उन्होंने कृष्ण जन्म से लेकर भ्रमर गीत की लगभग सभी ब्रज लीलाओं के माध्यम से रस स्निग्ध गीताञ्जलि प्रस्तुत की है।

परमानन्द दास का काव्य प्रधान तीन धाराओं में विभक्त किया जा सकता है!

१. वात्सल्य परक २. सख्य परक ३. माधुर्य परक

इन्हीं तीन धाराओं में समस्त काव्य का समाहार किया जा सकता है। जिस तरह कुंभनदास को माधुर्य में निरोध हुआ उसी तरह परमानंद दास को बाललीला में। साथ ही क्योंकि कवि के काव्य की पृष्ठभूमि श्री मद्भागात के दशमस्कन्ध के पूर्वार्द्ध की लीलाएँ रही हैं, अतः उनका दूसरा सशक्त भाव केवल सख्य रहा है। वातसल्य कौर सख्य के दो किनारों में यह काव्य धारा कुछ इस प्रकार बही है कि "गोपीभाव" में अपनी चरमपरिणति कर इसने पुष्टिमार्गीय भक्ति साधना में एक जीवन्त त्रिवेणी प्रस्तुत की है।

(१) घर घर ग्वाल देत हैं हेरी।
बाजत ताल पखाज बाँसुरी ढोल दमामां भेरी॥
झौटत लूटत खात मिठाई कहिन सकन कोउ फेरी।
उन्मद ग्वाल करत कौतूहल ब्रज बनिता सब घेरी॥
ध्वजा पताका तोरन माला सबै संवारत सेरी।
जै जै कृष्ण कहत परमानन्द प्रगट्यो कंस को बैरी॥

(२) माई री मीठे हरिजू के बोलना।
पांइपैंजनिया रुनझुन बाजे, आंगन आंगन डोलना॥
कज्जर तिलक कंठ कठुलाबलि पीतांबर के चोलना।
परमानन्द दास की जीवनि गोपी झुलाबति झोलना॥

(३) बोलन लागे मईया मईया।
बाबा कहत नन्दराइ सों अरु हलधर सों भईया॥
खेलत फिरत सकल गोकुल में घर घर होत बधईया।
परमान्नद दास को ठाकुर ब्रज जन केलि करइया॥

ब्रजभाषा की गद्य-टीकाऐं

डा० प्रेम प्रकाश गौतम एम० ए०, पी-एच० डी०

ब्रजभाषा-गद्य का निर्माण टीकाओं के रूप में भी बहुत काफी हुआ है । काव्य-ग्रंथों और अन्य रचनाओं की सैकड़ों टीकाएं गद्य में लिखी गई हैं। कुछ टीकाओं में गद्य-पद्य दोनों प्रयुक्त हैं । प्राचीन पद्धति की यह टीका-परम्परा भारतेन्दु-युग तक चली है । काव्य और धर्म विषयक ग्रंथों के अतिरिक्त दर्शन, आयुर्वेद, ज्योतिष आदि विषयों की भी पुस्तकों पर टीका-निर्माण हुआ है । इन टीकाओं में कहीं-कहीं सुन्दर गद्य-शैली प्राप्त होती है ।

हिन्दी के अनेक विद्वानों ने ब्रजभाषा-टीकाओं को अव्यवस्थित, अशक्त और लद्धड़ बताया है । * परन्तु यह धारणा दो चार ही टीकाओं को देखकर बनाई गई प्रतीत होती है । कुछ टीकाएँ निश्चय ही पर्याप्त संतोषजनक हैं । सरदार कवि की टीकाओं की, जिन्हें शुक्ल जी ने बहुत हीन बताया है, टीका-साहित्य के मर्मज्ञ रत्नाकरजी ने 'कविवर बिहारी' शीर्षक पुस्तक में और डा० हीरालाल दीक्षित ने 'आचार्य केशवदास' ग्रंथ में पर्याप्त प्रशंसा की है । पं० रमाकान्त त्रिपाठी और आचार्य शुक्ल ने टीका-गद्य के जो उद्धरण दिए हैं, उनमें संस्कृत की खंडान्वयी टीका-शैली के कारण कुछ अस्पष्टता अवश्य है परन्तु ध्यान देने पर अर्थ पूर्णत: स्पष्ट हो जाता है ।

ब्रजभाषा के कवियों में बिहारी, केशव और हितहरिवंश के काव्य पर जितना टीका-टिप्पण हुआ है उतना संभवत: किसी अन्य कवि के कृतित्व पर नहीं । 'भागवत' और 'गीता' पर भी बहुत-सी टीकाएँ प्राप्त हैं । तुलसी की वाणी के व्याख्याता भी अनेक हैं । परन्तु गोस्वामी तुलसीदास के साहित्य-मस्तक पर दिये गये 'तिलक' शुद्ध ब्रज-चंदन के न होकर अवधी और खड़ी बोली या पंजाबी के रस से मिश्रित हैं ।

समय की दृष्टि से 'भागवत' की टीकाएँ सर्वप्रथम उल्लेखनीय हैं । इस ग्रंथ पर ईसा की १६ वीं शती से ही टीका- निर्माण होता रहा है । गद्य-टीकाएँ ईसा की १७ वीं शताब्दी से मिलती हैं । १७वीं शती की टीकाएँ हैं —चतुरदास कृत 'एकादश स्कन्ध-टीका', वल्लभ (हरिवल्लभ)रचित 'भागवत-भाषा संदर्भ', माथुर कृष्ण देव-प्रणीत' 'भागवतभाषा' । १८वीं शती की 'भागवत'-टीकाओं में प्रियादास की 'सुलोचना टीका' और सेवाराम मिश्र का भागवतानुवाद उल्लेखनीय हैं । १९ वीं

***. श्री रमाकान्त त्रिपाठी (हिन्दी गद्य मीमांसा), आचार्य शुक्ल (हिन्दी साहित्य का इतिहास), पं० जगन्नाथ प्रसाद शर्मा (हिन्दी की गद्य शैली का विकास) और प्रभुदयाल मीतल (सूरदास की वार्ता—परिशिष्ट)**

शती की टीकाओं में गो० सुन्दरलाल मध्वगौडेश्वरी की टीका, जो वस्तुतः कुछ ही श्लोकों की व्याख्या है, महत्वपूर्ण है । *

'भगवद्-गीता' की टीकाएँ भी ईसा की १७वीं शती से ही मिलती हैं । 'गीता' के १७वीं शती उल्लेखयोग्य टीका-ग्रंथ हैं—रामानुजी भगवानदास का 'गीताभाषामृत' (सन् १६९८, खड़ी-बोली-मिश्रित) और स्वामी नवरंग का' गीता-प्रश्न' (विवेचन-युक्त) । १८वीं शताब्दी की 'गीता' व्याख्याएँ हैं —नाजर आनन्दराम ** कृत 'परमानन्द-प्रबोध-टीका' (गद्य-पद्य), जनभुआल कृत' 'कृष्णार्जुन संवाद', मनीराम-लिखित 'भगवगीतासु उपनिषद' (मीमांसापरक), किशोरदास की छः अध्यायों की टीका, कृष्णराय चक्रवर्ती की 'भगवतगीताभाषा', मंजुमिश्र की टीका, हरिवल्लभ की 'गीताभाषा' (आनन्दराम के अनुकरण पर गद्य-पद्य में), हरिवंश रचित 'पाण्डव गीता टीका और मेघनाद की टीका । गो० तुलसीदास के भी काव्य पर पर्याप्त टीका-वाङ्मय प्राप्त है । 'मानस' के पुराने टीका- टिप्पणकार हैं –महंत रामचरणदास, काष्ठजिह्वा स्वामी, काशी-नरेश ईश्वरी-प्रसाद नारायणसिंह और हरिहरप्रसाद[1] । इनकी भाषा प्रायः खड़ीं बोली-पूर्वी-मिश्रित ब्रज है । तुलसी के अन्य ग्रन्थों के टीकाकार हैं :–राजा रतनसिंह ('विनय-पत्रिका'-टीका), डुमराव नरेश शिवप्रकाश सिंह ('विनयपत्रिका' टीका), हरिहर प्रसाद (गीतावली टीका), गोपीनाथ पाठक बनारसी (तुलसी-सतसई-टीका) और पाण्डे रामबख्श, मानसी वँदन पाठक, राजा गोपालशरणसिंह (बकसर-वासी), गुरुसहायलाल (पटनावासी), जानकीदास तथा रघुनाथ दास वैष्णव । शंका-समाधान के रूप मे भी अनेक ग्रंथ लिखे गये हैं । इन टीकाकारों की भाषा ब्रज न होकर प्रायः ब्रज, अवधी और खड़ी बोली का मिश्रण है ।

---

* आगरा की ना० प्र० सभा के संग्रह में 'भागवत' – टीका की अनेक अज्ञातकालीन पूर्ण और अपूर्ण पोथियाँ हैं । केवल एक प्रति में सं० १९२१ लिखा हुआ है । कुछ पोथियों में टीका की अपेक्षा अनुवाद की प्रवृत्ति है । भाषा 'जातभई', 'करतभए', 'संते', 'विषे', 'कैंसो हैं' 'अैसो जो' आदि प्रयोगों से युक्त है । खड़ी बोली का भी स्पर्श है । टीका––शैली में कोई नवीनता नहीं है । कहीं कहीं पूर्बकालिक कृदन्तों का बहुल प्रयोग है ।

** नाजर आनन्दराम ने 'पद्मपुराण' के एक भाग का अनुवाद 'आनन्द विलास' नाम से किया है ।

[1] 'मानस' पर ईसा की १८वीं शती के उत्तरार्द्ध में अयोध्या के महंत राम चरण दास ने, १९वीं शताब्दी में काष्ठ जिहुवा स्वामी (मानस – परिचर्या), काशीपति ईश्वरी प्रसाद नारायण (मानस—परिचर्या––परिशिष्ट), हरिहर प्रसाद (परिशिष्ट–प्रकाश), संतसिंह पंजाबी, बैजनाथ, गुरसहाय लाल, (अनेकानेक अर्थों से युक्त शास्त्रीय विवेचन—सम्पन्न टीका), महंत राधे राम (खड़ी बोली अवधी––मिश्रित भाषा), और सुखदेव लाल कायस्थ (बालकाण्ड – टीका) ने टीका—निर्माण किया ।

बिहारी के टीकाकार[2]—रत्नाकर जी ने कृष्णलाल की टीका को ,बिहारी-सतसई' की प्रथम टीका माना है और कृष्णलाल का समय ईसा की १७वीं शती का उत्तरार्द्ध बताया है। मानसिंह और चारणदास की टीकाओं को भी वे १७वीं शती का मानते हैं। इनमें मानसिंह की टीका गद्य में है। 'बिहारी-सतसई पर टीकाओं का निर्माण १८वीं शती में अधिक हुआ। इस समय की गद्य-टीकाएँ हैं—शुभकरण तथा कमलनयन कृत 'अनवर चन्द्रिका' (सं० १७७१ केवल वक्ता बोद्धव्य ध्वनि अलंकार का निर्देश), कृष्ण कवि की गद्य-पद्य-टीका, पन्नावासी कर्ण कवि की साहित्य चन्द्रिका टीका (सं० १७९४) और यूसुफ़ खाँ या ईसवी खाँ की 'रसचन्द्रिका-टीका' (सं० १८०९) जो खड़ी-बोली मिश्रित व्रज-भाषा में है, हरिचरणदास कृत 'हरिप्रकाश टीका' सूरति मिश्र कृत 'अमर चन्द्रिका' (सं०१७९४,टीका पद्य में अलंकार निर्देश गद्य में), और अमरसिंह की 'अमर चन्द्रिका' (पद्य-गद्य)[3] १९वीं शती की उल्लेखनीय टीकाएँ हैं:—हरजू कवि की टीका असुनी वासी ठाकुर द्वितीय की 'देवकी नन्दन टीका' (सतसैया वर्णार्थ, गद्य-पद्य), रणछोड़ जी की टीका, माथुर ब्राह्मण बिहारीलाल की टीका, प्रताप-साहि प्रणीत-'रत्न-चन्द्रिका और सरदार कवि की टीका। इनमें से ईसवी खाँ की टीका और अंतिम सरदार कवि की टीका ब्रज-मिश्रित खड़ी बोली में हैं। लल्लूलालजी ने भी खड़ी बोली में इस ग्रंथ पर टीका लिखी है। लाल-कवि, बंदीजन, मनीराम, धनंजय, गिरधर, आयोध्या प्रसाद, रामबख्श आदि की भी टीकाएँ बताई जाती हैं।

केशव के काव्य और काव्य शास्त्रीय ग्रंथों को टीकाओं और टीकाकारों का विवरण संक्षेप में इस प्रकार है—ईसा की१८वीं शती-सूरति मिश्र–'रसिक प्रिया', पर 'रसगाहक चन्द्रिका' (सं०-१७६५ के लगभग) और 'कविप्रिया' पर 'जोरावर प्रकाश' शीर्षक टीका (सं० १७६५ के लग-भग), हरिचरणदास'कविप्रिया' पर –'कविप्रियाभरण-तिलक (सं० १८३५) और 'रसिक-प्रिया' पर तिलक (सं० १८३५) ईसवी खाँ (यूसुफ़खाँ)'रसिकप्रिया' की टीका ·सं०१८१० के लगभग), १९वीं शती-वीर कवि-'कविप्रिया',–तिलक (गद्य-पद्य) नाजिर सहजराम-'कविप्रिया' पर 'सहजरानचन्द्रिका' (गद्य-पद्य), जानकीप्रसाद–'राम चन्द्रिका'—टिप्पण (शब्दार्थ मात्र), लछिमन राव—'कविप्रिया' पर 'लछिमन चन्द्रिका', धनीराम—'राम चन्द्रिका'—टीका, ललित पुरवासी सरदार कवि—'कवि-प्रिया' पर 'काशिराज प्रकाशिका' और 'रसिक–प्रिया' पर 'सुख-बिलासिका' (गद्य-पद्य)। किसी ने केशवकृत 'वैराग्यशतक' की भी टीका की है। सुरतिमिश्र और सहजराम की टीकाएँ प्रश्नोत्तर—रूप में हैं।

उल्लिखित ग्रंथों के अतिरिक्त ब्रजभाषा के और भी कई ग्रंथों ('शिक्षापत्र', 'हित चौरासी', 'भाषाभूषण', 'रसराज' 'श्रृंगार शतक', सूर सागर आदि) पर टीकाएँ निर्मित हुई हैं। श्री हरि-

---

[2] बिहारी के ३१ प्राचीन टीकाकारों की चर्चा कविवर बिहारी, शीर्षक पुस्तक में रत्नाकर जी ने की है।

[3] इस टीका की प्रामाणिकता संदिग्ध है।

राय कृत 'शिक्षापत्र' की उनके अनुज गोपेश्वर कृत टीका ('इकतालीस शिक्षा पत्र टीका' सं०१७००) एक महत्त्वपूर्ण टीका है।* श्री हितहरिवंश प्रणीत 'चतुरासी' ('हितचौरासी') की तो अनेक टीकाएँ उपलब्ध हैं। इनमें उल्लेखनीय हैं–रसिकलाल (सं०१७०५, पद्य-गद्य), धरनीधर दास (सं०१७४६), जुगलदास (सं०१७६४)'लोकनाथ, अतिवल्लभ तथा केलिदास (सं० १७८० के लगभग) की टीकाएँ राधावल्लभ सम्प्रदाय के और भी कई ग्रंथों पर टीकाएँ प्राप्त हैं। इतर टीकाओं का विवरण संक्षेप में इस प्रकार है :—

सुखलाल	'चौरासी' और 'भागवत'	१८वीं
प्रेमदास	,, ,, (स्फुट पद टीका)	,,
रतनदास	,, ,, ('सेवक वाणी', 'हरिवंशाष्टक)	,,
मनोहर वल्लभ	,, ,,	१९वीं
हरिलाल व्यास	'सेवकवाणी'	,,
चन्द्रलाल	'चौरासी', 'वृन्दावनशतक', कर्णामृत	,,
रंगीलाल	'राधासुधानिधि', 'मन प्रबोध', 'उत्सवबोध'	,,
गो० व्रजगोपाल	'स्फुट वाणी' (भुवन बोधिनी टीका) 'सेवक वाणी'	,,
सर्वसुखदास	'स्फुट वाणी'	,,
भोलानाथ	'राधासुधा', सुधर्मबोधिनी', 'सेवा विचार', स्फुट वाणी'	,,

'हित चौरासी' की टीकाओं में प्रेमदास (प्रियादास नहीं) की टीका में गूढ़ार्थ को स्पष्ट करने का सुन्दर यत्न हैं। संस्कृत के उदाहरण भी दिए गए हैं। इससे प्रतीत होता है कि उससे पूर्व 'हित चौरासी' पर बहुत—सी टीकाएँ रची जा चुकी थीं। वृन्दावन के लोगों का कहना है कि इन पदों पर लगभग दो दर्जन टीकाएँ हैं।

'भाषा—भूषण' पर हरिचरण दास (सं० १८३४, 'चमत्कार चन्द्रिका) रणधीर सिंह ('भूषण कौमुदी' शीर्षक) और दलपति राय, वंशीधर तथा प्रतापसाहि की टीकाएँ उपलब्ध हैं। मतिराम कृत 'रसराज' पर दो टीकाएँ मिलती हैं। एक तो ईसा की १८ वीं शती में निर्मित वल्लेश

---

* आचार्य वल्लभ और विट्ठल नाथ जी के 'सर्वोत्तम स्तोत्र', 'सिद्धान्त रहस्य', 'वल्लभाष्ठक', 'मंगलपद', 'गुप्त रस', 'विज्ञप्ति', आदि बीस ग्रंथों की संस्कृत–टीकाओं के हिन्दी–रूपान्तर भी प्राप्त हैं। इनमें व्रज-–भाषा रूपान्तर 'याको अर्थ' लिखते हुए दिया गया हैं। पूर्व पक्ष देकर 'तहां कहेत हैं' लिखते हुए शंका–समाधान भी किया गया है । व्याख्या प्रायः विस्तृत है। रूप अधिकतर ओंकारान्त हैं: वर्तमान सामान्य के एक व० पु० रूप अकारान्त हैं। मध्यकालीन शैली के अनुसार खंडान्वय की प्रवृत्ति है । 'जो–सो, ताकरिकैं' ऐसे प्रयोग बहुलतः आए हैं। ये टीका–-भाषान्तर ना० प्र० सभा काशी में सुरक्षित एक पोथी में लिपिबद्ध है ।

कृत टीका और दूसरी १९ वीं शती में प्रताप साहि द्वारा रचित । 'शृंगारशतक' पर किशोर दास की रचित अथवा लिखित १८ वीं शती पूर्वार्द्ध की डा० वेनिस की खोजी हुई टीका प्राप्त है ।

'सूरसागर' में गोता लगाने का साहस सरदार कवि (दृष्टिकूटों पर) बनारसवासी गिरधर गोस्वामी, उनके शिष्य बालकृष्णदास और पटना वासी हरिश्चन्द्र ने किया। रामसनेही पंथ के संस्थापक स्वामी रामचरण के शिष्य रामजन ने 'दृष्टान्त सागर' और 'संजुगतिवचनिका' पर सन् १७८८ के लगभग टीका—निर्माण किया था । मध्व गौडेश्वर सम्प्रदाय के गो० सुन्दरलाल आदि अनुयायियों ने भी १९ वीं शती में टीका—कार्य किया । सुन्दरलाल की टीकाएँ हैं—'पंचाध्यायी' टीका, 'गोपी विरह वर्णन टीका', 'इन्द्र स्तुति'—टीका । अन्य टीकाएँ भी प्राप्त हैं — 'उत्सवावली' टीका, 'बलभद्र'—जन्म—चम्पू' टीका, 'नंदोत्सव टीका', जानकी—स्वयंर टीका', राम चरित्र–टीका ।

कुछ टीकाओं से उद्धरण प्रस्तुत किए जाते हैं —

प्रथम गंगा ही सबतें अधिक तीर्थ होत भई ।। अब तो श्रीकृष्ण की कीरति रूप तीरथ हू तै श्रेष्ट है ।। इन तीर्थ में गंगा रूप तीरथ अल्प कीयो है ।। कीरति रूपी तीरथ ही सब तीरथ भयो है। (हरि-वल्लभ कृत १७५० वि० का भागवतानुवाद—ब्रजरत्नदासजी के संग्रह में सुरक्षित) ।

तुम या चराचर लोक के पिता हों पूज्य परम गुरु हों हे अचिंत्य प्रभाव या त्रलोकी में तुम समान कोऊ नांही तुम ते अधिक कोन होयगों ।।४३।। (कृष्णराय संतोषी—भगवतगीता-भाषा —पत्र १२०, ना० प्र० सभा की प्रति) ।

हे अर्जुन जो परम पुरुष स्मरन करिये ।। सो परम पुरुष कैसो है । कवि कहै सर्वज्ञ है अरु पुरातन कहै ।। अनादि सिद्ध है अरु सबको नियंता कहै प्रेरक है अरु सूक्ष्म से अतिसूक्ष्म है, सब को पोषक है अरु जाके महिमा की अवधि नाही ।। अपार है यातै अचिंत्य रूप है अरु अपनो प्रकाश करि और हूंकों प्रकाश वारै याते आदित्यवरन है अरु प्रकृति ते परै है ।।९।। (नाजर आनन्दराम—'भगवदगीता'—टीका, ना० प्र० सभा की प्रति, पत्र ५८) ।

नायिका है तौ पिय की सुहागिनि पै इसकी जो सखी है सो इसके सुहाग को नजर लगने के वास्ते छिपावै है । और कै यौं अर्थ कीजिये कि नायिका को सौति के सुहाग का धोखा हुआ है सो सखी नायिका को समझावै है कि तेरी सौति ने उनोंदी आँखै करि कै और अलसोहीं देह करि कै सुहाग को सोरु डारयौ है पै सुहागिनि तू ही है ।

(ईसवी खाँ कृत 'बिहारी सतसई', टीका)

पारयौ इति । सौति की सखी कौ वचन ईर्षा सों काहू स्त्री सों । या नायिकाने प्रिय के नेह बिना सोहाग को सोर पारयौ, सौभाग्य प्रसिद्ध कियौ, उनींदी आँखें करि करि आलसभरी देह करी कै राति नायक के संग जागी है यातें, आँखि में नींद लगी है, पिय को नेह सोहाग प्रसिद्ध होने को कारन है सो नहीं है । विभावनालंकार—"होति छ भाँति विभावना कारन बिन ही

काज'' कि वा सोहाग प्रसिद्ध हो नौ इष्ट है ताकौं छल करि साध्यो, यातें पर्य्यायोक्ति अलंकार। छल करि कारज साधियै जो कछु चितहिं सुहात'' संदेह जहाँ अलंकार का होइ तहाँ संकर जानिये।

(हरिचरणदास—बिहारी सतसई' टीका, ६११)

'ऊपर कहे अेसे श्री कृष्ण रस रूप तिनको सदां हृदय में ध्यान करें जो मानसी सेवां से सब सिद्धि होय। सौ कहत हैं जो प्रथम तनुजा वितजा मन लगाय के सेवा करें सो सिद्धांत मुक्तावली में श्री आचार्य जी कहे हैं। ('इकतालीस शिक्षा पत्र भाषा काशी ना० प्र० की प्रति पत्र ९९)........'जोइ जोइ प्यारो करै सोइ सोइ मोहि भावै—इति प्यारो उचित अनउचित करै जो सो सव भावै उचित अनुचित यह क्यौ लिखौ, कोउ संदेह करै ताको उत्तर करिवे में दोउ इहै उचित के अन उचित उचित तो प्यार विना हू करै' ......(प्रेमदास-हितचौरासी टीका) ..'दम्पति कहियै नाइक नाइकानिका, आपुस में देवत ही जहाँ अनुराग उपजिय परै फेर बिन दैवे दुष होइ सो पूर्वानुराग विरह कहावे'।

(सुरति मिश्र—'रसिकप्रिया'—टीका)

विधु बंधु अर्थ चन्द्रमा के समान कै हास्य रस को चुरावन हारो यह अर्थी उपमा है अर्थ तें उपमा जानी जाति है कुंदन सों वर्ण बाद करन हार मोतीं की मित्त इहां किधौं उत्प्रेक्षा ना संदेह वाचक है मीत उपमा बाची है यातें शंकर अरु एक उपमेय श्री राम के गीत अनेक उपमान है।

(सरदार कवि—'कवि प्रिया टीका' प्र० सं० पृ० २५९)

पीछे दिए गए विवरण से स्पष्ट है कि व्रजभाषा में 'टीका—वाङ्मय' भी विशाल परिमाण में निर्मित हुआ है। गद्य तथा पद्य—गद्य में रचित बहुत—सी समीचीन व्याख्या वाली व्रजभाषा—टीकाएँ उपलब्ध हैं। जैसा कि लिख चुके हैं और जैसा कि दिए हुए उद्धरणों से स्पष्ट है संस्कृत टीका—प्रणाली के अनुकरण पर खडान्वयी तथा पर्यायमयी होने पर भी व्रजभाषा की अनेक टीकाओं में समुचित व्याख्या तथा स्वच्छ, सुबोध एवम् सजीव भाषा मिलती है। विशेषकर गोपेश्वर, ईसवी खाँ, सुरति मिश्र, हरिचरण दास, ठाकुर, प्रताप साहि और प्रेमदास की टीकाएँ पर्याप्त समीचीन हैं।

राजस्थानी बनाम हिन्दी

(ले० श्री. युगलकिशोर चतुर्वेदी जयपुर)

हमारे देश में जब से भाषा के आधार पर नये-नये राज्यों के निर्माण करने की प्रवृत्ति प्रचलित हुई है तभी से भिन्न-भिन्न क्षेत्रों की ओर से अपनी-अपनी उप-भाषाओं तथा जनपदीय बोलियों को प्रमुख भाषा मानने एवं उसी आधार पर उक्त क्षेत्र को नये राज्य के रूप में स्वीकार करने की मांग उठाया जाना भी आरम्भ हो गया है । आन्ध्र, महाराष्ट, तथा गुजरात आदि इसी प्रकार बनने वाले राज्यों से प्रेरणा प्राप्त करके हाल ही में पंजाब का भी एक भाग भाषा के आधार पर पृथक राज्य बनवाने के प्रयत्न में सफल हो गया है, जिसकी स्वाभाविक प्रतिक्रिया के परिणाम स्वरूप कतिपय अन्य राज्यों के निवासी भी अपनी क्षेत्रीय भाषाओं को मुख्य भाषा के रूप में मनवाने तथा उसी आधार पर एक नये राज्य की सृष्टि करने का दावा पेश करने लगे हैं ।

इस प्रकार का दावा पेश करने वालों में इस समय विशेषतः बिहार राज्य के अन्तर्गत भोजपुरी भाषा—भाषी तथा राजस्थान राज्य में राजस्थानी संज्ञा से सम्बोधित भाषा के समर्थक उल्लेखनीय हैं, जिन्होंने सबकी सम्मिलित तथा समूहीकृत हिन्दी भाषा से सम्बन्ध विच्छेद करके अपनी पृथक तथा सर्वथा स्वतन्त्र भाषा का नारा लगाने एवं उसी के आधार पर अपने लिये पृथक राज्य निर्माण करने की मांग प्रस्तुत करदी है । क्योंकि उक्त दोनों ही उप-भाषाओं की स्थिति तथा उनके द्वारा उठाई गई मांगों का आधार प्रायः एकसा ही है, अतः इस लेख में हम केवल "राजस्थानी बनाम हिन्दी" के सम्बन्ध में ही चर्चा करना पर्याप्त समझते हैं ।

यों तो उक्त तथा कथित राजस्थानी भाषा को हिन्दी से पृथक एवं उसको एक स्वतंत्र भाषा के रूप में स्वीकार करने का प्रश्न पहले भी कितनी ही बार उठाया जाता रहा है, परन्तु उन अवसरों पर केवल भाषायी दृष्टि से ही ऐसा किया गया था, जब कि इस बार हिन्दी से पृथक राजस्थानी भाषा के आधार पर एक नये राज्य रचना की संभावना पर विचार करके उसको राजनीतिक रूप देने की चेष्टा की गयी है । हमारी इस धारणा का आधार अभी गत मास ही यहां जयपुर में आयोजित "राजस्थानी भाषा और साहित्य उपनिषद" से सम्बन्धित समाचार पत्रों में प्रकाशित कार्यवाही का वह विवरण है, जिससे सूचित होता है, कि उक्त अवसर पर हिन्दी को राजस्थानी के अस्तित्व को समाप्त करने वाली मान कर राजस्थानी को ही इस राज्य की अधिकृत भाषा मानना उचित ठहराया गया था ।

इस उपनिषद में राजस्थानी भाषा के कतिपय प्रबल समर्थकों के अतिरिक्त राजस्थान के भू० पू० शिक्षा मन्त्री तथा राजस्थान साहित्य अकादमी के वर्तमान अध्यक्ष पद्म भूषण श्रीहरिभाऊ उपाध्याय भी उपस्थित थे, जिन्होंने अपने उद्घाटन भाषण में कहा बतलाया, कि राजस्थानी एक समर्थ

भाषा है, और यह आवश्यक है कि उसे राजस्थान की मातृ भाषा के रूप में स्वीकार किया जाय । (देखिये दैनिक नवज्योति दिनाकं २० मार्च, पृष्ट संख्या २) ।

जहां तक राजस्थानी भाषा के समर्थ तथा समृद्ध होने अथवा उसको और भी अधिक विकसित करने का प्रश्न है, इस पर कोई दो मत नहीं हो सकते, और न कोई आपत्ति ही उठाई जा सकती है, क्योंकि किसी भी लोकतांत्रिक शासन में प्रत्येक प्रादेशिक अथवा क्षेत्रीय भाषा के फलने फूलने अथवा उसे पूर्ण विकसित होने का अवसर प्राप्त होना उसका नैसर्गिक अधिकार होता है, परन्तु उक्त उपनिषद में राजस्थान को हिन्दी भाषा प्रदेश न मानकर उसको सर्वथा राजस्थानी भाषी राज्य बनाने पर विशेष बल दिया गया था जिससे हिन्दी को इस देश की राष्ट्र भाषा अथवा 'संघ की राज भाषा' स्वीकार किये जाने का जो संवैधानिक अधिकार प्राप्त हुआ है, उसके मूल पर कठोर कुठाराघात होता है ।

हिन्दी आज जिस रूप में राष्ट्र भाषा अथवा संघ की राज भाषा स्वीकार की गई है, वह कोई पृथक या स्वंतत्र भाषा न होकर विशेषत: उत्तरी भारत में प्रचलित तथा देवनागरी लिपि में लिखित ब्रज भाषा, अवधी मागधी, मैथिली, भोजपुरी, बथेली, छत्तीस गढ़ीन, बुन्देल-खण्डी, ढूँढारी, हाडोती, बागड़ी मेवाडी, एवं मारवाड़ी आदि अनेक क्षेत्रीय अथवा जनपदीय भाषाओं के एकीकरण या समूहीकरण के परिणाम स्वरूप बनी है । ऐसी अवस्था में यदि वे सभी भाषायें एक-एक करके हिन्दी से अलग होकर अपना-अपना स्वतत्र अस्तित्व घोषित कर देती है तो हिन्दी राष्ट्र-भाषा एक क्षेत्रीय भाषा बनने योग्य भी नहीं रहती । उक्त स्थिति के आने पर न उससे इस देश में जो भाषायी संवधानिक संकट उत्पन्न हो सकता है, उस पर उक्त उपनिषद के आयोजकों ने कभी गंभीरता से विचार ही नहीं किया ।

हिन्दी को राष्ट्र भाषा अथवा 'संध की राज्य भाषा' को जो पद मिला है, वह उसकी सरलता, सुगमता, वैज्ञानिकता आदि कारणों से तो मिला ही है, साथ ही उसका सबसे बड़ा कारण अन्य भाषा भाषियों की अपेक्षा उसके बोलने, लिखने तथा समझने वालों की अत्याधिक संख्या का होना भी है । जनगणना के अनुसार हिन्दी भाषा भाषियों की संख्या लगभग २५ करोड़ की गई है, जबकि अन्य किसी भी भाषा का व्यवहार करने वालों की संख्या ६ करोड़ से अधिक नहीं है । परन्तु हिन्दी भाषियों की संख्या २५ करोड़ तभी होती है, जब इससे राजस्थानी समेत उपयुक्त सभी उप भाषाओं का सर्वथा समावेश हो जाता है । इसके विपरीत यदि राजस्थान वाले अपने स्वंतत्र राजस्थानी, ब्रजक्षेत्र वाले ब्रजभाषा, तथा इसी प्रकार अवधी, मागधी, भोजपुरी सभी हिन्दी से पृथक अपने-अपने स्वतन्त्र अस्तित्व का दावा करने लग जाते हैं, तो विशुद्ध हिन्दी नाम की कोई भाषा शेष ही नहीं रह जाती । या यदि किसी जनपद विशेष कर प्रचलित भाषा का नाम हिन्दी दे भी दिया जाता है तो उसके बोलने वालों की संख्या इतनी नगण्य रह जायेगी, जिससे उसका भारत की बहुसंख्यक जनता की भाषा होने का दावा ही झूँठा हो जायेगा ।

उपनिषद में वक्ताओं ने हिन्दी मे "राजस्थानी के अस्तित्व के समाप्त" हो जाने की सम्भावना भी व्यक्त की है. यदि एक ही लिपि में लिखित भाषाओं के समूही करण मात्र से किसी क्षेत्रीय भाषा की समाप्ति की संभावना होती है, तब तो हिन्दी से ब्रज भाषा आदि सभी जनपदीय भाषाओं को समान रूप से समाप्त होने का खतरा हो सकता है, परन्तु उक्त किसी भी भाषा-भाषी की ओर से न तो हिन्दी का विरोध ही किया गया और न उसको अपने अस्तित्व को समाप्त करने वाला ही माना गया ।

निष्पक्षता से यदि देखा जाये तो वास्तविकता यह है, कि हिन्दी का वर्तमान भव्य भवन अधिकांशत: ब्रजभाषा के भग्नावशेषों के ऊपर ही खड़ा हुआ है । यह एक ऐतहासिक तथ्य है कि लगभग ५०० वर्ष से पूर्व से लेकर अब खड़ी बोली अथवा आधुनिक हिन्दी भाषा के आने तक समूचे उत्तरी भारत में ब्रज भाषा की ही प्रधानता थी । वैष्णव सम्प्रदाय तथा कृष्ण भक्ति के रूप में काव्य धारा का जो श्रोत मथुरा से ब्रज-भाषा के माध्यम द्वारा चारों ओर प्रवाहित हुआ, उसका समूचे उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्य प्रदेश, तथा राजस्थान और पंजाब ही नहीं, गुजरात और महाराष्ट्र प्रदेशों पर भी गहरा प्रभाव पड़ा था ।

पंजाब के गुरुनानक से लेकर गुरुगोविन्दसिंह तक सिक्ख सम्प्रदाय के दशों गुरूओं की वाणी में अधिकतर ब्रज भाषा के शब्दों का ही प्रयोग हुआ है । राजस्थान में भी मीरा, दादूदयाल, तथा नागरीदास आदि भक्त कवियों की रचनाऐं तो ब्रजभाषा से ओत-प्रोत है ही । इतना ही नहीं जयपुर नरेश की महाराजा जयसिह जी के दरबारी कवि बिहारीलालजी की बिहारी सतसई ब्रज भाषा की ही सर्वोत्कृष्ट रचना मानी जाती है । इसके अतिरिक्त यहाँ के महाराजा सवाई प्रतापसिह ने स्वयं-ब्रजनिधि उपनाम से ब्रज भाषा में ही कविता की है, जिसका प्रकाशन हाल ही में काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा द्वारा हुआ है ।

इस प्रकार जोधपुर के महाराज यशवन्त सिह जी ने "यशोभूषण" तथा मानसिंह जी ने "मान प्रकाश' नामक काव्यग्रन्थों की रचना ब्रज भाषा के माध्यम से ही की है ।

इतना ही नहीं, महाराष्ट्र केशरी शिवाजी तथा छत्रसाल की वीरता समूचा गुणगान "शिवा को मराठों कै समाहूँ छत्रसाल को" पद के गायक महाकवि भूषण ने भी ब्रजभाषा को ही अपनी ओजस्वी वाणी का माध्यम बनाया था । इस प्रकार वर्तमान हिन्दी के अस्तित्व में जाने के पूर्व उत्तरी भारत में सर्वत्र ब्रजभाषा का ही प्रचलन रहा था, तथा उसमें उस समय उच्च कोटि के बहुत से साहित्य का सृजन भी हुआ था । इससे यह भी सम्भव है, कि यदि खड़ी बोली को रूप में वर्तमान हिन्दी का प्रादुर्भाव नहीं हुआ होता, तो स्वंत्रत भारत की राष्ट्र भाषा अथवा राज्य भाषा ही ब्रजभाषा बनी होती, परन्तु ऐसा न होकर ब्रज भाषा शनै: शनै: अपने विराट आकार से सिमिट कर केवल एक क्षेत्रीय भाषा मात्र रह गई है, परन्तु फिर भी इसके समर्थकों ने कभी भी हिन्दी को उसको 'समाप्त करने वाली" घोषित करके उसके विरुद्ध विद्रोह का झण्डा बुलन्द नहीं किया, जिस प्रकार इस समय राजस्थानी भाषा के समर्थक कर रहे हैं ।

राजस्थानी को राजस्थान की राज भाषा बनाने का पक्ष समर्थन करने वालों को एक बात और स्मरण रखनी चाहिये, वह यह कि जब तक राजस्थान अपनी वर्तमान अवस्था में ही है तभी तक वे जोधपुर, जयपुर, उदयपुर, कोटा, बून्दी, आदि पृथक-पृथक भू० पू० राज्यों के होते हुये भी राजस्थानी के नाम पर एक मत है, परन्तु जिस दिन उसकी भाषा को प्रान्त-निर्माण का आधार माना जाना लगेगा, उसी दिन उनमें मारवाड़ी, मेवाड़ी, हाडोती, अथवा कागडी और ढूँढारी के नाम पर संघर्ष होकर राजस्थानी को भी उक्त भाषाओं के अस्तित्व को उसी प्रकार समाप्त करने वाला माना जायेगा, जिस प्रकार आज हिन्दी को माना जा रहा है । इतना ही नहीं फिर तो भाषाई आधार पर न मालूम राजस्थान के अन्दर कितने नये-नये राज्यों के निर्माण के आन्दोलन उठ खड़े होंगे ।

अतः राजस्थानी के समर्थकों से हमारा यही नम्र निवेदन है, कि वे उस भाषा के साहित्य, व्याकरण तथा उसके अन्य अगोंपाङ्गों का भरपूर विकास करने की चेष्टा अवश्य करें, परन्तु उसके आधार पर पंजाब की भांति राजस्थान का विभाजन करने का प्रयास न करें । इसी में राष्ट्र भाषा हिन्दी का भला है और इसी में राजस्थान का कल्याण है ।

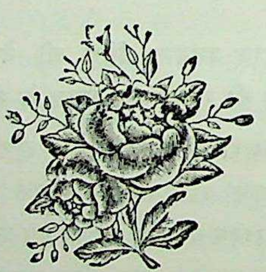

जनपदीय साहित्य की समस्यायें

परम्परा और आधुनिक कवि-कर्म

(श्री सतीशचन्द्र मिश्र एडवोकेट, मथुरा)

साहित्य सृजन संवेदनशील मन की विवशता का रचनात्मक प्रकाशन हैं। लोकगत जीवन की व्यक्तिगत अनुभूति; मनोभावों के व्यापक उद्वेग जब हृदय तल से उभरकर समस्त नाड़ी संस्थान को झकझोर डालते हैं तब कविता कागज पर उतरती है, लेकिन प्राचीन आचार्यों ने काव्य को प्रयोजन शून्य नहीं माना है; चाहे वह 'स्वान्तः सुखाय' लिखा गया हो अथवा किसी स्थूल लौकिक उद्देश्य को लेकर प्रयोजन के किनारों को तोड़कर कविता की धारा नहीं बहती। आचार्य भामाह ने कहा है :—

धर्मार्थ काम मोक्षेसु वैचक्षण्यं कलासुच।
प्रीति करोति कीर्ति च साधु काव्य निबन्धनम् ।।

कवि-कर्म, धर्म, अर्थ, लाभ और मोक्ष का देने वाला है अतः कवि अर्थ और काम की लौकिकता पर धर्म और मोक्ष की परिलौकिकता अरोपित करके 'ब्रह्मानन्द सहोदर' की सृष्टि करता है, अथवा भरत मुनि के शब्दों में 'धर्मो-धर्म प्रवृत्तानां कामः कामोपसेवनाम्' की सिद्धि प्राप्त करता है।

आचार्य दंडी के मतानुसार साहित्य कामधेनु के समान है, जिसकी उचित सेवा से सभी मनोकामनायें पूरी होती हैं, वाणी के प्रसाद से ही लोकयात्रा सम्भव होती है, वाचामेव प्रसादेन लोक यात्रा प्रवर्तते ! प्रसिद्ध अंग्रेज समालोचक जे. नोवेल ने अपनी पुस्तक 'द फाउन्डेशन आँफ इण्डियन पोइट्री' में आचार्य दंडी के मत को स्पष्ट करते हुए लिखा है :—

'According to him the main purpose of poem is to narrate and praise the life and deeds of a king; the kavi being thus, generally a court poet,

ब्रजभाषा के प्राचीन कवि उपरोक्त काव्य-सिद्धान्त से स्पष्टतः अधिक प्रभावित थे, अतः प्राचीन ब्रजभाषा काव्य धर्म और मोक्ष के अनुसंधान तथा संयोजन में लिप्त कवियों की रस सिक्त पदावलियों का भंडार है। इन भक्त कवियों ने अपनी एकांत साधना की उमग में अपने इष्ट देवों की जो विरदावली गायी, अपने हृदय की समस्त कुंठाओं, दुराग्रहों और लौकिक जीवन की संघर्षरत अनुभूतियों को पारिलौकिता के परिधान में सजाकर रंजन के जो स्वरूप खड़े किये वे तत्कालीन युगबोध और जन-चेतना के सफल प्रतिबिम्ब माने जाते हैं।

दूसरी धारा उन दरवारी कवियों की है, जो अर्थ और काम को मुख्य मानकर कवि-कर्म में प्रवृत्त हुए। इन दरबारी कवियों ने अपने आश्रयदाता राजा अथवा सामंत के जो यशोगीत गाये हैं, वे उक्ति-चातुर्य, वागविदग्धता और कल्पना की ऊँची उड़ान की अतिशयोक्तिपरक शब्द योजना के उदाहरण हैं। विरदावलि राधा और कृष्ण की बखानी गई हो अथवा शिवाजी था क्षत्रसाल की; रागात्मक उद्वेगों से उद्भूत होकर राधा के सौदर्न्य के मनोबिम्ब प्रस्तुत किये गये हों, अथवा विप्रलम्भ श्रृंगार को विलक्षण योजना में व्यक्तिगत अनुभूतियों का साधारणीकरण किया गया हो, कवि-कर्म की दृष्टि से दोनों समान हैं, विषयीगत भेद से विषयगत भेद नहीं हो सकता अतः प्रश्न यह उठता है कि जिस भाषा का समस्त समृद्ध और समर्थ साहित्य केवल विरदावलि गान, संयोग और वियोग की दिमागी ऐयाशी उक्ति वैचित्र्य और वाणी का विलास ही प्रस्तुत करता हो, जिस भाषा के कवि राज दरबारों में अपने अनूठे छन्द सुनाकर पुरस्कार प्राप्त करना ही श्रेष्ठतम साध्य मानते रहे हो वह भाषा और परम्परा क्या आधुनिक कवि कर्म के दायित्वों और नवीन जीवन-बोधों की अभिव्यजंना कर सकती है ?

समाज के बदलते हुए रूपों के साथ काव्यगत मान्यतायें तथा स्थापनायें बदलती हैं। साहित्य के प्रति बिम्बात्मक सिद्धान्त के अनुसार समाज का प्रतिक्षेपण साहित्यकार की कृति में होता है, मानव अस्तित्व की जो विवशतायें, समस्यायें और संघर्ष होते हैं, वे ही कवि की कृति में आकर बद्ध होते हैं। कवि के कृतित्व की सिद्धि और सफलता इस तथ्य पर ही आश्रित होती है कि वह अस्तित्वगत संघर्ष की अमूर्तता को किस सीमा तक मूर्तता प्रदान करता है, कवि अपनी चेतना में जिन वस्तु तथा अस्तित्वगत बोधों को देखता है, सामाजिक और व्यक्तिगत यथार्थ के धरातल पर खड़े होकर जो कुछ वह अपने मन प्राण में समेटता है, उसकी अभिव्यक्ति ही कवि कर्म का साध्य बनती है, विज्ञान की प्रगति ने पुराने आस्था बोधों को तोड़ा है, नवीन निष्ठाये मनुष्य के जीवन में प्रविष्ट हुई हैं, और एक ऐसे जीवन-दर्शन को अपनाने के लिए आज का मानव विवश हो रहा है जिसमें भौतिक सुखभोग का सजीव आकर्षण है, और प्राचीन अध्यात्मिकता की नई व्याख्यायें हैं। आज की समस्त चिन्तन प्रणाली, लेखन और कला-सृजन विज्ञान के इस आलोक से उद्भ्रान्त है, और वस्तु तथा अस्तित्व के परम्परागत बोध निरर्थक और प्रयोजन शून्य बन गये हैं।

द्वितीय महायुद्ध के बाद हमारा देश स्वतन्त्र हुआ, देश के सामने अनेक समस्यायें आई, साधारण नागरिक से स्वतन्त्रता की रक्षा, जनतन्त्र की स्थापना और आर्थिक विकास तथा उन्नति के नाम पर अधिक त्याग करने, अधिक परिश्रम करने और बलिदान करने के आग्रहपूर्ण नारे लगाये गये, सुखद भविष्य के लिए वर्तमान को दुःख और दर्द में डुबाये रखने के उपदेश दिये गये, लेकिन वैसा कुछ हुआ नहीं, जिसकी आशा और आकांक्षा स्वतन्त्र भारत में हम सबने की थी, फलस्वरूप इस देश में भी 'भूखी पीढ़ी' और 'उखड़े लोगों' का उदय हुआ, जिनके लिए मानवता मर चुकी है और हर जिन्दगी मृत मानव की लाश के बोझ से दबी सिसकती कराहती चलती है; अनजाना दिशाओं में अनबूझे रास्तों पर।

अणु-विस्फोटों और आणविक युद्ध की आशंका से आक्रान्त विनाश के कगार पर खड़ी विश्व मानवता एक ऐसे युग में जी रही है जिसमें हिरोशिमा की भीषण स्मृति है, और चन्द्रलोक विजय के क्रांतिकारी आश्वासन। आज समूचा अस्तित्व-बोधभय, पराजय और विकृति को जन्म देता है। जीवन और मृत्यु के ये अन्यतम क्षण सृजनात्मक अभि व्यंजनाओं में विकीर्ण होते हैं, आज का कवि महाकवि सूरदास की तरह अपनी पार्थिव दीनता इष्टदेव को समर्पित करके आध्यात्मिकता के अमूर्त जगत में पलायन नहीं कर सकता। उसे एक ऐसे यथार्थ को देखना पड़ता है, जो एक ही क्षण में जीवन और मृत्यु दोनों से साक्षात्कार कराता है, यही एक क्षण कभी अनुभूतियों के विस्फोट का रूप धारण करता है और कभी संवेदनाओं पर पड़ते हुए दबाव का, दोनों ही स्थितियों में आज का कवि अपने युग को, अपनी पीढ़ी को वाणी देने के लिए विवश है, अपनी चेतना पर सदियों से लदे बोझ को उतार फेंकने के लिए वह उद्विग्न है, यही बोध उसे संघर्ष करने को प्रेरित करता है, हम जिस माहौल में जीते हैं; जिस वातावरण से घिरे हैं उसकी उपेक्षा नहीं कर सकते, जिस जिन्दगी को हमने भोगा है और जिसे हमें भोगना है, हमारा कृतित्व उससे निरपेक्ष नहीं हो सकता, जीवन दृष्टि ही वह विन्दु है जिसके बदलने से साहित्य का परि दृश्य बदलता है, ब्रज-भाषा के समस्त उपलब्ध साहित्य में रचयिता अपनी रचना से जीवन की ओर आता है, जबकि आज के साहित्य का मुख्य दायित्व अपने जीवन से कृतित्व की ओर जाना है, सृजन की यह प्रति बद्धता ही सृजक को जीवन संगत या विसंगत प्रसगों और अस्तित्व बोधों से जीवंत रूप से आबद्ध रखती है, कवि अथवा कथाकार ने जो कुछ जीवन प्रत्यक्षतः भोगा है, जो कुछ कटु-मधु उसके मन प्राण में उतर चुका है, जिस देश और काल में आज का साहित्यकार जन्मा और बड़ा हुआ है, उस सबकी 'प्रामाणिक अनुभूति' अथवा 'सत्य अभिव्यक्ति, वह प्रस्तुत करे यही उसका एकमात्र दायित्व होता है।

आज एक समूची पीढ़ी के सामने खड़ी विसंगतियों और वर्जनाओं के प्रश्न है, जिन्हें आज का मानव भोगने के लिए अपने को नियतिबद्ध पाता है। आजादी के बाद जो मोह भंग हुआ है, वह समूची जनता का है, एक पूरी पीढ़ी का है, विभाजन, टूटे हुए सम्बन्ध, अस्तित्व की अकुलाहट और इस मोह भंग ने ही साहित्यकार को कई दृष्टि दी है, नई मानसिकता को जन्म दिया है, आज का मानव एक ऐसा अस्तित्व है, जिसके पीछे सब कुछ मिट चुका है और सामने के द्वार बन्द है वह स्वयं नहीं जानता कि वह कहाँ है ? बरसों पहले सियालदह स्टेशन पर नई और पुरानी पीढ़ी की एक भीड़ उतरी थी एक देश से चलकर दूसरे देश में पहुँचने के लिए, लेकिन पहुँचने का समय आज तक नहीं आया। वर्षों से ये 'उखड़े लोग स्टेशन के किनारे ही अटके हुए हैं, और न जाने कब इन्हें ट्रेन मिलेगी और कब ये अपनी मंजिल पर पहुँचेंगे। आज देश भर के हर शहर में, हर गाँव में, हर घर में, हर बाजार में स्कूलों कालिजों की कक्षाओं में, खेल के मैदानों में, सिनेमाघरों, होटलों और चाय की दूकानों में ये 'उखड़े लोग' इस 'भूखी पीढ़ी' के इन्सान दिखाई देते हैं, अतः ब्रज जनपद के सृजनात्मक और रचनाशील कवि और लेखकों को इन स्थितियों से अपने को संलग्न करके

साहित्य सृजन में प्रवृत्त होना है तभी जनपदीय साहित्य के वे रूप सामने आ सकेंगे जिनकी आज आवश्यकता है।

साहित्यकार का दायित्व एक सामान्य नागरिक के दायित्व से तीव्रता और गहराई की दृष्टि से ही भिन्न होता है। जिसे सामान्य मनुष्य दुख-सुख, आशा-निराशा जैसे शब्दों से प्रकट करता है, साहित्यकार उन्हीं को काल के मस्तक पर उभरे मूल्यगत प्रतिमानों से प्रकाशित करता है, इसीलिए नया कवि ढोल पीट-पीटकर विरदावलि गाने की निपट भाटगीरी के लिए तैयार नहीं होगा, और न पिंगल, छन्द और नायिका भेद की बेड़ियाँ पहनकर अनूठी शब्द-योजना का तमाशा दिखाना ही उसके कवि-कर्म का साध्य बनता है, क्योंकि कविता उसकी रोटी की मजबूरी नहीं है। वह तो उसके समस्त चेतन और अवचेतन अस्तित्व की विवशता है विघटन, विक्षोभ, अनास्था, घुटन, टूटन, यंत्रणा सकट और संघर्ष से आक्रांत समाज के बीच वह विशिष्ट या चाटुकार बनकर नहीं रह सकता। उसे अपने दायित्वों को निभाना है, और कृतित्व के उन मूक स्वरों को शब्द देने हैं, जो परम्परा के बन्धनों को तोड़कर नये संगीत का सृजन करते हैं।

आज आवश्यकता यह है कि आधुनिक जनपदीय साहित्य रचना की दिशा में ब्रज जनपद के साहित्यकार जीवंत प्रयोग करें, और इस क्षेत्र की साहित्यिक तथा सांस्कृतिक संस्थायें ऐसे साहित्य के सृजन और प्रकाशन के लिए सक्रिय रचनात्मक कार्य-क्रम अपनायें। स्पष्टतः इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए हमें भाव और भाषा दोनों ही क्षेत्रों में प्राचीनता तथा परम्परा का मोह छोड़ना पड़ेगा, आधुनिक साहित्य-रचना, नवीन भाव बोध, रचना-शिल्प, वस्तु और अस्तित्व के नवीन मूल्यों की अभिव्यंजना करने के लिए परम्परागत ब्रजभाषा समर्थ नहीं हो सकती, अतः हमें भाव और भाषा के क्षेत्रों में नवीन प्रयोग करने होंगे और भाषा को उन साँचों में ढालना पड़ेगा जो भावयोजना के अनुकूल शब्द-योजना प्रस्तुत कर सकें। इस सबके लिए व्यापक विचार-विमर्श और प्रयोग किये जाने की आवश्यकता है, किन्तु इतना हमें समझ लेना चाहिये कि ब्रजभाषा के प्राचीन कवियों और परम्परा की जय बोलकर अथवा राजनैतिक सत्ता प्राप्त व्यक्तियों और धनकुबेरों के सभापतित्व में कवियों के जन्म-मरण की तिथियों पर समारोह करके कुछ व्यक्ति अथवा संस्थायें अपनी दूकानदारी भले ही कायम करलें, इससे साहित्य और संस्कृति के वे दायित्व पूरे नहीं हो सकते जो इस जनपद के विकास प्रगति, लोक रंजन और लोक रक्षण के लिए आज आवश्यक है।

* * *

भारत की ऐतिहासिक सामग्री का निरूपण

(ले० श्री वृन्दावन दास, बी० ए०, एल-एल० बी०)

भारत की सभ्यता प्राचीनतम है । यह सहस्त्रों वर्ष पुरानी है । भारतीय इतिहास के आधार स्वरूप भारतीय साहित्य के अनेक आर्ष ग्रन्थ हैं । वेद, ब्राह्मण, आरण्यक, सूत्र, उपनिषद् पुराण आदि प्राचीन इतिहास के निर्माण की दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं । दोनों महाकाव्य हिन्दू जाति की महानता और भारत की श्रेष्ठता तो उद्घोषित करते ही हैं वे हिन्दू इतिहास के सौन्दर्य को भी प्रस्तुत करते हैं । विश्व के इतिहास—साहित्य में हमारे महाकाव्य सुन्दरतम और अनुपमेय हैं । यह माना कि इनमें प्रक्षिप्त अश हैं, उनमें वर्णित कुछ वृत्तान्त अतिरंजित हैं तथा कहीं कहीं अलङ्कारिक भाषा एवं शैली को अपनाया गया है इनकी ऐतिहासिकता के विषय में अब कोई शंकाएं शेष नहीं हैं । अनेक पाश्चात्य विद्वानों ने वर्षों की खोज के उपरान्त यह तथ्य स्थिर किया है कि रामायण और महाभारत ऐतिहासिक ग्रन्थ हैं । अनेक पुरातत्ववेत्ता भी अपनी शोधों के आधार पर इनकी एतिहासिकता को प्रमाणित करते हैं ।

महाभारत का काल ५००० वर्ष पहिले का माना जाता है। इस विषय में अनेक विद्वान् एक मत हो गये प्रतीत होते हैं । परन्तु महाभारत के अनेक शताब्दियों पहिले रामायण काल और उससे भी पहिले वेद, ब्राह्मण, आरण्यक और उनमें वर्णित आर्य सभ्यता अत्यन्त प्राचीनतम हैं । इसको बारह से लेकर बीस हजार वर्ष पुरानी तो लोग मानने ही लग गये हैं परन्तु वह दिन दूर नहीं जब कि लोग इसे इससे भी अधिक हजारों वर्ष पुरानी मानने लगेंगे । विश्व के अनेक भाग जिनमें योरप भी सम्मिलित है आज से दो तीन हजार वर्ष पहिले सभ्यता के विकास से वंचित थे, उनका जीवन वन्य था परन्तु भारत की सभ्यता और उसका इतिहास बहुत प्राचीन हैं ।

भारतीय इतिहास साहित्य में ऐसे इतिहास की कमी तो स्पष्ट है जो घटना क्रम के आधार पर तिथिवार लिखा गया हो परन्तु इससे यह निष्कर्ष निकालना कि भारतवर्ष के प्राचीन लोग इतिहास लिखना नहीं जानते थे, अथवा उन्होंने इतिहास नाम की किसी वस्तु के महत्व को ही नहीं समझा या इतिहास लिखा ही नहीं भ्रम मूलक है । हिन्दू शास्त्रों में इतिहास की कल्पना बड़ी उच्च और व्यापक है । भारतीय सभ्यता और साहित्य में इतिहास का महत्व नीचे लिखे हुए उद्धरणों से स्पष्टतया सिद्ध होता है ।

ब्राह्मणानीतिहासान् पुराणानिकल्पान् गाथानाराशंसीरिति अर्थात् ब्राह्मणों को इतिहास पुराण कल्प गाथा नाराशंसी भी कहा जाता है । (गृह्य सूत्र)

छांदोग्योपनिषद् में भी महर्षि सनत्कुमार और देवर्षि नारद के सम्वाद के अन्तर्गत इतिहास का महत्व दिखाया गया है । नारद जी कहते हैं कि मैंने ऋक्, यजु, साम अथर्व के साथ इतिहास पुराण वेदार्थ और अनेक विद्याओं का अध्ययन किया है । समझने की बात यह है कि वेदों के बाद ही महत्व की दृष्टि से इतिहास का नम्बर आ गया ।

पुनः सनत्कुमार नारद से कहते हैं, ''विज्ञानेन वा ऋग्वेदं विजानाति यजुर्वेदसामवेदमाथर्वणं चतुर्थ मितिहास पुराणं पंचमम्'' । अर्थात् ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, इतिहास और

पुराण के तत्व को विज्ञान से पहिचानना चाहिये। यहाँ भी वेदों के बाद महत्व की दृष्टि से इतिहास ही ज्ञातव्य वस्तुओं में सबसे पहिले है।

"इतिहासागमाद्याश्च का व्यालंकार नाटकम्" इस वाक्य में इतिहास का स्थान वेद, काव्य, अलंकार नाटक आदि सब से प्रथम है।

धर्मार्थ काम मोक्षाणामुपदेश समन्वितम्।
पूर्ववृत्त कथा युक्तमितिहास प्रचक्षते ॥

अर्थात् इतिहास वह है जिसमें पूर्वकाल की कथाओं का वर्णन धर्म, अर्थ, काम मोक्ष के उपदेश से युक्त हो। इतिहास की कैसी सुन्दर कल्पना है ?

संस्कृत वांग्मय में अनेक स्थानों पर इतिहास ग्रन्थों का उल्लेख आया है। राजतरंगिणी के लेखक कल्हण कहते हैं कि उन्होंने ग्यारह इतिहासों के आधार पर अपना इतिहास लिखा है।

भारतीय राज्यों में नील पत्री लिखे जाने का उल्लेख है। इस पत्री में सभी घटनाओं का दैनिक वर्णन लिखा जाता था और इस महत्व पूर्ण कार्य को करने के लिए एक राजपुत्र की नियुक्ति की जाती थी। चीनी यात्रियों ने भारतवर्ष की इस पद्धति का वर्णन अपने यात्रा-इतिहासों में किया है। ऐसा प्रतीत होता है कि योरप में प्रचलित ब्लूबुक की प्रथा भारतीय नील-पत्री पर ही आधारित है।

अठारह पुराणों में से पाँच ऐसे हैं जिनमें भारतीय ऐतिहासिक लोक-कथाओं का क्रम राज्य वंशावलियों के साथ वर्णित है। उन पुराणों के नाम हैं—वायु, मत्स्य, विष्णु, ब्रह्माण्ड और भागवत। विष्णु पुराण में मौर्यवंश के इतिहास का वर्णन मिलता है। मत्स्य पुराण की एक हस्तलिखित प्रति में आंध्रवंश का इतिहास उपलब्ध होता है।

प्रश्न यह उठता है कि यदि इतिहास ग्रन्थ न थे, तो हर्ष चरित्र में उल्लिखित वह इतिहास कौन-सा था जिसे महाराज उदास चित्त होने की दशा में सुना करते थे ? यदि इतिहास का अस्तित्व ही न था तो कालिदास ने रघुवंश कैसे लिखा और अबुल फज़ल ने तवारीख किस आधार पर लिखी ?

मुसलमान काल में भारतीय साहित्य का बड़ा नाश हुआ। बहुत सा प्राचीन साहित्य सदा के लिए लोप हो गया। शताब्दियों तक दुर्दान्त शत्रुओं ने जो अत्याचार पूर्ण पाशविकताएँ कीं उनसे प्राचीन साहित्य और इतिहास की रक्षा करना कठिन था। कहावतें चली आरही हैं कि वर्षों तक बेगमों के हम्मामों में भारतीय ग्रन्थों से स्नान करने के लिए पानी गर्म किया गया। बड़े-बड़े पुस्तकालय अग्नि की भेंट कर दिये गये। दुष्ट आक्रान्ता हिन्दू संस्कृति के नाश पर तुले थे। उन्होंने जब करोड़ों के द्रव्य से बने देव मन्दिरों को ध्वंस किया तो हमारी साहित्यिक और ऐतिहासिक निधि को क्यों छोड़ते ? इतिहास ग्रन्थों का जो अभाव आज दिखाई दे रहा है उसका मुख्य कारण यही है कि वे अग्नि में झोंक कर नष्ट कर दिये गये। जब लाखों धर्म प्राण लोग मौत के घाट उतारे जा रहे थे तब उन ग्रन्थों की रखवाली कौन करता।

उत्तर पश्चिम की ओर से मुसलमानों के आक्रमण भारत पर ग्यारहवीं शती के आरम्भ में ही होने लगे। उन आक्रमणों से देश में जो ध्वंसलीला हुई उसका उल्लेख इस स्थान पर अभीष्ट नहीं है। यहाँ केवल उन्हीं आक्रमणों का थोड़ा सा उल्लेख किया जायगा जिनमें भारतीय साहित्य का विनाश किया गया।

हिन्दुस्तान रिव्यू मार्च सन् १९०६ की प्रति में राय सरतचन्द्रदास के व्याख्यान का सार छपा है उसका भाषार्थ उद्धृत किया जाता है। "उदान्तापुरी का बिहार मन्दिर जो बुद्ध गया और नालन्दा के बिहार मन्दिर से भी ऊँचा था और जिसमें ब्राह्मणों और बौद्धों के बनाये हुए ग्रन्थों का विशाल संग्रह था ऐलैक्जन्डरिया के महान् पुस्तकालय की भाँति सन् १२०२ ई० में बख्त्यार खिलजी के सेनापति मुहम्मद बिनसीम की आज्ञानुसार जला कर भस्म कर दिया गया।

महाराज महिपाल के पुत्र पाल महान् के शासन काल में उदान्तापुरी में बौद्धों के हीनयान सम्प्रदाय के १००० साधु और महायान मत के ५००० साधु निवास करते थे। पालवंशीय महाराजाओं ने उदान्तापुरी में महन्तों के लिए एक विश्वविद्यालय की स्थापना की थी जिसमें एक विशाल पुस्तकालय बौद्धों और ब्राह्मण ग्रन्थों से परिपूर्ण विद्यमान था। सन् १२०२ ई० में मुसलमानों ने उस मठ पर आक्रमण करके सब साधुओं का कत्ले आम कर दिया और पुस्तकालय को जला कर भस्म कर दिया।"

इस प्रकार के अन्य वर्णन न देकर हम इस घटना पर श्री रामदेव द्वारा रचित 'भारतवर्ष के इतिहास' द्वितीय खण्ड में दी हुई टिप्पणी को ज्यों की त्यों उद्धृत करना अधिक उपयोगी समझते हैं। वह इस प्रकार है।

"ऐसी दुर्घटनाएँ कितनी हुईं इसका पता कौन लगा सकता है। वर्तमान संस्कृत ग्रन्थों में अनेक ऐसे ग्रन्थों के नाम आते हैं जिनका इस समय कहीं भी पता नहीं लगता। इसका कारण क्या? यही कि अनेक भारतीय ग्रन्थ मुसलमानी ईर्षाग्नि में भस्म हो गये। जब आर्य जाति पर विपत्ति पड़ी तो उसके नेताओं ने यह सोचा कि इतिहासादि साधारण ग्रन्थ तो फिर बन सकते हैं परन्तु यदि वेदों, उपनिषदों तथा दर्शनादि शास्त्रों का नाश हो गया तो न केवल आर्य जाति ही नष्ट हो जायगी प्रत्युत संसार मात्र की आत्मिक, मानसिक तथा सामाजिक उन्नति में बाधा पड़ेगी। अतएव वह वेदोपनिषद दर्शनादि कतिपय ग्रन्थों को विशेष रूप से कण्ठस्थ करने लगे जिससे आर्यों के सैकड़ों ग्रन्थ बच गये परन्तु सहस्त्रों परमोपयोगी ग्रन्थों की रक्षा न हो सकी, वेदों की प्रायः एक सहस्त्र शाखाओं का नाश हो गया, धनुर्वेद, आयुर्वेद, शिल्पविद्या, इतिहासादि के सैकड़ों ग्रंथ विलुप्त हो गये।" (भारतवर्ष का इतिहास, द्वितीय खण्ड, प्रथम भाग, पृष्ट १०)

कर्नल टाड ने अपने ग्रंथ 'राजस्थान के इतिहास' में भी इस समस्या पर यथेष्ट प्रकाश डाला है। कर्नल टाड का मत है कि भारत में इतिहास ग्रंथों की कमी का कारण वह ध्वंस लीला है जो हिन्दुस्तान में आक्रान्ता महमूद और उसके उत्तराधिकारियों ने की। टाड साहब कहते हैं "आठ शताब्दी तक हिन्दू लोग ऐसे विजेताओं के अधीन रहे जो उनकी प्राचीन भाषा संस्कृत से

सर्वथा अनभिज्ञ थे, जबकि प्रायः प्रत्येक हिन्दू राजधानी पर आक्रमण कर असभ्य, दुर्दान्त, धर्मान्ध बर्बर शत्रुओं ने बार-बार लूट मार की, ऐसी दुर्दशा में यह आशा करना कि भारतीय इतिहास और साहित्य को वह क्षति न पहुँचेगी जो हिन्दुओं की प्रत्येक प्रकार की सांस्कृतिक और भौतिक निधियों को पहुँची व्यर्थ है। बहुधा हिन्दू राजाओं को एक दुर्ग से दूसरे दुर्ग को भागना पड़ता और पर्वतों की गुफाओं में गुप्तरूप से जीवन व्यतीत करना पड़ता था, यह भी उनको विश्वास न रहता कि जो भोजन उनके लिए तैयार किया जारहा है उसको वे पा भी सकेंगे या नहीं, ऐसी अस्त व्यस्त दशा में इतिहास निर्माण की बात तो कल्पनातीत ही है।"

अब भारतीय इतिहास का निर्माण जिन स्रोतों से हुआ है अथवा और विशद रूप से हो सकता है उन पर विचार करना है। वेद, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद् और अठारह पुराण शुद्ध ऐतिहासिक सामग्री से भरे पड़े हैं। इसके बाद बहुत से श्रौत सूत्र, गृह्य सूत्र, धर्मसूत्र आते हैं जो सभ्यता और संस्कृति के इतिहास से परिपूर्ण हैं। दो महाकाव्य रामायण और महाभारत विशुद्ध भारतीय इतिहास के समुद्र से जान पड़ते हैं। उपरोक्त समस्त साहित्य का अनुशीलन कर इतिहास का निर्माण करना एक दुरूह कार्य है। इस समस्त साहित्य को पढ़ने और समझने के लिए ही एक जीवन काल से अधिक का समय चाहिये फिर इतिहास का सृजन कौन करे ?

उपरोक्त साहित्य के बाद बौद्ध साहित्य का काल आरम्भ होता है। उसमें ५ पाली निकाय और अन्य ग्रंथ बहुत बड़े बड़े हैं। इसके अतिरिक्त पुनः संस्कृत साहित्य आ जाता है। मनु, विष्णु, याज्ञवल्क्य, नारद, वृहस्पति पाराशर इत्यादि की स्मृतियाँ एवं धर्म शास्त्र अपना महत्व रखते हैं। १८ पुराण यद्यपि अत्यंत विशाल हैं तथापि ऐसी सामग्री से परिपूर्ण हैं जिसे इतिहास की संज्ञा दी जा सकती है। अब अर्थशास्त्र, काम शास्त्र, नीतिशास्त्र को और लीजिये। इनमें भी अथाह सामग्री सभ्यता एवं संस्कृति के इतिहास विषयक हैं। भास, कालिदास, भारवि, भवभूति बाणभट्ट, दण्डी, सुबन्धु, क्षेमेन्द्र गुणाढ्य, सोमदेव आदि आचार्यों के ग्रन्थ-रत्नों में भारतीय सभ्यता का अनुपम चित्र विद्यमान है।

उपरोक्त साहित्य के अतिरिक्त शताब्दियों में निर्मित शिलालेख एवं ताम्र पत्र हैं। सम्राट अशोक के शिलालेख, खारवेल की हाथीगुम्फा, आन्ध्रक्षत्रप और गुप्त सम्राटों के शिलालेख और ताम्र पत्र भी प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं। इनके अतिरिक्त अनेक मुद्राएँ भिन्न-भिन्न कालों की प्राप्त हुई हैं।

उपरोक्त सामग्री इतनी प्रचुर है कि इसका अध्ययन, अनुशीलन बहुत दुरूह है। पहिले तो संस्कृत अथवा पाली भाषा का ज्ञान अर्जित करना फिर इस अथाह सागर में निमग्न होकर तत्वों को खोजना एक तो क्या अनेकों जन्मों का कार्य है। अतः सामग्री की प्रचुरता और बहुतायत भी बहुधा इतिहास के निर्माण में बाधक होती है यद्यपि हमारे अगणित इतिहास ग्रन्थ मुस्लिम आक्रान्ताओं की पाशविकता से नष्ट हो गये तथापि जो सामग्री विद्यमान हैं वह भी अत्यधिक विशाल है, उससे अनेकों इतिहास ग्रन्थों का निर्माण हो चुका है और भविष्य में भी इसी प्रकार होता रहेगा।

मथुरा की मूर्तिकला

(ले० शिवाधार मिश्र एम. ए. पुरातत्व संग्रहालय मथुरा)

मथुरा का धार्मिक दृष्टि से असाधारण महत्त्व है। इसकी गणना सप्तमहापुरियों में की गई है। यहाँ से बहुत सी प्रतिमायें प्राप्त हो चुकी हैं जिनसे यह स्पष्ट है कि यह नगर मूर्ति निर्माण का एक प्रमुख केंद्र था। इन कलाकृतियों के बनाने के लिए शिल्पियों ने प्रायः लाल बलुए पत्थर का प्रयोग किया है जो फतहपुर सीकरी, रूपवास आदि स्थानों पर पाया जाता है। बौद्ध, जैन, हिंदू आदि धर्मों की मूर्तियों के अतिरिक्त यहाँ से लेखांकित कलाकृतियाँ भी प्राप्त हुई हैं जो तत्कालीन स्थिति पर प्रकाश डालती हैं। कुछ उपर्युक्त मूर्दियों का नीचे उल्लेख किया जाता है।

बौद्ध धर्म की मूर्तियाँ :—कुषाणकाल से पूर्व भगवान बुद्ध का पूजन बोधिवृक्ष, धर्मचक्र आदि प्रतीकों के द्वारा होता था। मथुरा के तक्षकों ने जातक कथाओं (बुद्धजी के पूर्व जन्म की कहानियों) को भी अंकित किया जिनमें से एक जातक कथा का उल्लेख करना समीचीन होगा। मथुरा के संग्रहालय में प्रदर्शित एक वेदिका स्तंभ (सं० १५.५८६) पर दुःखोपादान जातक की एक कथा अंकित है। संक्षेप में कथा इस प्रकार है :—चार भिक्षुओं में यह बहस हुई कि दुःख का सबसे बड़ा कारण क्या है। चारों भिक्षुओं के मत अलग-अलग थे, अतः वे शंका समाधान के लिए भगवान् बुद्ध के पास गए। बुद्ध ने पूर्व जन्म की एक घटना को बतलाते हुऐ कहा कि प्राचीन समय में हिरण, कौवा, सर्प तथा कबूतर में भी इसी प्रश्न पर विवाद हुआ था। कबूतर ने दुख का कारण 'प्रेम', कौवे ने 'क्षुधा', सर्प ने 'घृणा', तथा हिरण ने 'भय' बतलाया। पूछने पर पास में रहने वाले साधु ने बतलाया कि तुम में से कोई भी बात की तह तक नहीं पहुँच सका। प्रेम, क्षुधा, भय आदि दुःख तभी होते हैं जब मनुष्य शरीर धारण करता है। अतः देह- संप्राप्ति ही दुःख का महान कारण है। वेदिका स्तंभ पर भगवान् बुद्ध तपस्वी के वेष में तथा भिक्षु, कौवा, सर्प, हिरण तथा कबूतर के रूप में चित्रित किये गए हैं। इस जातक कथा का वर्णन चीनी भाषा में लिखी हुई बुद्ध की जीवनी में मिलता है। इस कलाकृति का समय प्रथम शती ई० पूर्व है।

ई० सन् की प्रथम शताब्दी में बुद्ध की मूर्ति का निर्माण हुआ। ऐसा माना जाता है, कि बुद्ध की प्रतिमा का गढ़न सर्व प्रथम मथुरा के तक्षकों ने किया। ज्ञान प्राप्ति से पूर्व भगवान् बुद्ध को बोधिसत्व तथा उसके पश्चात् उन्हें बुद्ध कहा जाता है। बुद्ध तथा बोधिसत्व की मूर्तियों में अन्तर यही है कि बोधिसत्व को मुकुट आदि से सुसज्जित तथा बुद्ध को संन्यासी के रूप में दिखलाया गया है। मथुरा से बुद्ध तथा बोधिसत्व की बहुतसी प्रतिमायें प्राप्त हो चुकी हैं। बुद्ध की प्राप्त प्रतिमाओं में (संख्या ए ५) बड़ी ही मनोहर मूर्ति है, जो पुरातत्व-जगत् में महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है।

बुद्ध तथा बोधिसत्व प्रतिमाएँ हाथों की स्थिति-द्वारा भावों को व्यक्त करती हैं। इन्ही भाव विशेषों को मुद्रा कहते हैं। मथुरा-कला में निम्नलिखित मुद्राएँ पाई जाती हैं :—

(१) ध्यान मुद्रा: —यह मुद्रा बैठी हुई प्रतिमाओं में पाई जाती है। इसमें बुद्ध या बोधिसत्व बांये हाथ के ऊपर दाहिना हाथ रखे हुए दिखलाये गए हैं।

(२) अभय मुद्रा :—वे दाहिने हाथ को उठाकर कंधे की ओर मोड़कर अभयदान देते हुए दिखलाये गए हैं।

(३) भूमि स्पर्श मुद्रा :—यह मुद्रा बैठी हुई मूर्तियों में पाई जाती है। इसमें वे दाहिने हाथ से भूमि को स्पर्श करते हुए दिखलाये गए हैं। बोध गया में जब कामदेव ने बुद्धजी के ज्ञान-प्राप्ति में बाधाएँ डालने का प्रयत्न किया, तब उन्होंने भूमि को स्पर्श कर उसका आह्वान किया, जिसे इस मुद्रा द्वारा अभिव्यक्त किया जाता है।

(४) धर्मचक्र-प्रवर्तन मुद्रा :—वे दाहिने हाथ की उँगलियों को बाँए हाथ की उँगलियों पर इस प्रकार रखे हुए हैं कि मानों वे चक्र घुमा रहे हों। यह दृश्य भगवान् बुद्ध के प्रथम उपदेश को सूचित करता है।

बुद्ध तथा बोधिसत्व प्रतिमाओं के अतिरिक्त मथुरा कला में भगवान् बुद्ध के जन्म, ज्ञान-प्राप्ति, धर्मचक्र-प्रवर्तन आदि को भी अंकित किया गया है।

जैनधर्म की मूर्तियाँ :—मथुरा में कंकाली टीले पर जैनियों का एक प्रमुख केंद्र था। वहाँ से तीर्थंकरों की प्रतिमायें, आयागपट्ट आदि प्राप्त हो चुके हैं। तीर्थंकरों की दो प्रकार की प्रतिमायें प्राप्त हो चुकी हैं (१) पद्मासन में बैठी हुई, (२) कायोत्सर्ग-मुद्रा में खड़ी हुई। तक्षकों ने सर्वतोभद्रिका प्रतिमाओं का भी गढ़न किया, जिनके चारों तरफ एक-एक तीर्थंकर अंकित हैं। इनके अतिरिक्त उनके द्वारा नेगमेश, रेवती आदि की प्रतिमाओं का भी निर्माण किया गया।

जैन धर्म की कलाकृतियों में आयागपट्ट का विशेष महत्त्व है। यह एक शिलापट्ट है जो पूजा के काम में आता था। संख्यक ००. क्यू २ आयागपट्ट मथुरा के संग्रहालय में प्रदर्शित है जिस पर एक स्तूप बना हुआ है। आयागपट्ट पर उत्कीर्ण लेख से ज्ञात होता है कि इसको वसु नामक एक वेश्या ने दान में दिया था।

हिन्दू धर्म की मूर्तियाँ :—मथुरा के कलाकारों ने ब्रह्मा, विष्णु, शिव, गणेश, कार्तिकेय, अग्नि, कृष्ण, दुर्गा आदि देवी-देवताओं की मूर्तियों का गढ़न किया, जिनमें से कुछ प्रतिमाओं का उल्लेख पाठकों की जानकारी के लिए नीचे किया जाता है —

विष्णु—संख्यक १५. ९५६ विष्णु की एक चतुर्भुजी कुषाणकालीन प्रतिमा है। वे अपने हाथों में शंख, चक्र, गदा लिए हुए हैं। दाहिना हाथ जो टूटा हुआ है, वह अभय मुद्रा में था।

सूर्य :—सूर्य की उदीच्यवेषीय मूर्तियों का सर्व प्रथम निर्माण मथुरा के कलाकारों के द्वारा किया गया। संख्यक १२. २६९ प्रतिमा में भगवान् सूर्य दो घोड़ों के रथ में वैठे हुए हैं। वे एक लम्बा कोट, जूते, तथा पायजामा पहने हुए हैं। इस प्रतिमा का समय लगभग प्रथम शताब्दी ई० है।

कृष्ण :—संख्यक १७. १३४४ कुषाणकालीन शिलापट्ट है जिस पर वसुदेव कृष्ण को सूप में लेजाते हुए अंकित किये गए गए हैं।

कृष्ण की दूसरी मूर्ति (सं० ४७. ३३७४) मथुरा संग्रहालय में सुरक्षित है जिसमें वे कालियनाग का दमन करते हुए दिखलाये गए हैं। इस कलाकृति का समय लगभग पाँचवी शती ई० है। इनके अतिरिक्त मथुरा से गोवर्धनधारी कृष्ण की भी कई प्रतिमाएँ प्राप्त हो चुकी हैं।

बलराम :—कृष्ण की अपेक्षा मथुरा से बलराम की मूर्तियाँ अधिक मात्रा में प्राप्त हो चुकी हैं। बलराम की सबसे प्राचीन मूर्ति शुंग काल की है, जिसमें वे अपने हाथ में हल तथा मूसल लिए हुए दिखलाये गए हैं। यह प्रतिमा लखनऊ संग्रहालय मे सुरक्षित है।

अन्य प्रतिमायें :—इस नगर तथा आस पास के स्थानों से नाग, यक्ष आदि की अनेक प्रतिमायें प्राप्त हो चुकी हैं। कलाकारों ने शक व कुषाण शासकों की मूर्तियों का भी निर्माण किया। माँट ग्राम के इटोकरी टीले से विम कैडफासिस, कनिष्क तथा चष्टन की बहुमूल्य प्रतिमायें प्राप्त हो चुकी हैं, जो मथुरा के संग्रहालय में प्रदर्शित हैं।

सप्तर्षि टीले से एक सिंह शिखर प्राप्त हुआ है। यह कलाकृति लंदन के ब्रिटिश म्यूजियम की शोभा को बढ़ा रही है। मथुरा के संग्रहालय में इसकी एक प्रतिमूर्ति (सं० २६-२७. १६१३) सुरक्षित है। इस पर उत्कीर्ण लेख से विदित होता है कि महाक्षत्रप राजुल की अग्रिमहिषी कंबोजिका ने एक स्तूप तथा विहार का निर्माण कराया था। मथुरा छावनी से अभिलिखत सिरदल का एक टुकड़ा प्राप्त हुआ है जिस पर उत्कीर्ण लेख से पता चलता है कि महाक्षत्रप शोडास के राज्यकाल में भगवान् वासुदेव के मंदिर, तोरण आदि की स्थापना की गई थी।

मथुरा से प्राप्त कलाकृतियाँ वाद्ययंत्रों, केशविन्यास, विविध आभूषण, अस्त्र-शस्त्र आदि पर प्रकाश डालती हैं। वेदिका स्तंभों पर अंकित यक्षणियाँ अनेकानेक आभूषणों से सुसज्जित हैं। प्रथम शती ई० से पाँचवी शती ई० तक का समय कला की दृष्टि से स्वर्णयुग कहा जाय तो अत्युक्ति नहीं होगी। मथुरा की कला को कुषाण शासकों द्वारा प्रोत्साहन मिला, जिसके फलस्वरूप कला अपनी चरम सीमा पर पहुँची। मथुरा बौद्ध, जैन, हिंदू धर्मों का केंद्र था। अतः इन धर्मों से सम्बंधित कलाकृतियों का गढ़न स्वाभाविक था। कलाकारों ने प्राकृतिक दृश्यों, पशु, पक्षियों, आदि को अपना विषय बनाया। उनके द्वारा नारी सौंदर्य को विशेष स्थान मिला, जिसका सफल चित्रण वेदिका स्तंभों पर मिलता है।

ब्रजभाषा का सौन्दर्य

(श्री गिरीश कुमार चतुर्वेदी)

ब्रजभाषा पनपी थी राधा और कृष्ण के चरणारविन्दों का सहारा लेकर, प्रज्ञाचक्षु सूर ने जिसका श्रृंगार किया, प्रेमदिवानी मीरा जिस भाषा में अमर प्रेम पद गाकर शब्दों के फूलों में अमृत भर गई और रीति कालीन कवियों ने जिसका सहारा लेकर काव्य कामिनी का आँचल भरा था अपने काव्य प्रसूनों से। ब्रजभाषा में रस है, रस में काव्य है और काव्य में है कवियों के मनोभावों की गहरी अभिव्यक्ति। ब्रजभाषा का सौन्दर्य नित नूतन और नितमोहक है। यह वह भाग्यशाली भाषा है जिसमें मचल-मचल कर काँन्हा ने माखन माँगा था। सत्यनारायण कविरला के शब्दों में :—

बरनन को करि सकत भला तियभासा कोटी।
मचलि मचलि माँगी जामें हरि माँखन रोटी॥

हाँ यह उस ब्रज नन्दन के अधरों से बोली हुई भाषा है जिसने एक ओर बाँसुरी को अधरों से लगाया तो दूसरी ओर गीता के पावन उपदेश दिये, जिसने शरद की रजत राका में महारास किया तो दूसरी ओर भक्तों की लाज रखने के लिये गिरिगोवर्धन को छिगुनी पर उठाया। गिरिधारी की भाषा यदि रसमय नहीं होगी तो रस स्वयं रसहीन हो जायगा।

ब्रजभाषा का सरस श्रृंगार समय-समय पर अनेकानेक कवियों ने किया। यह रसवल्लरी प्रेममय अपनत्व पाकर फैल गई देश के एक कौने से दूसरे कौने तक रस और श्रृंगार से पूर्ण ब्रजभाषा प्रमुख काव्य भाषा बनी और विशेषतः श्रृंगार वर्णन इस काव्य गन्धा की गन्ध में फैलने लगा। ठीक ही तो है :—

'वानी कौ सार सिंगार बखानौ, सिंगार कौ सार किसोर किसोरी'

ब्रजभाषा ब्रज की करील कुंजों, यमुना के कलित कद्दारों को पार करती हुई गूँजी थी सम्पूर्ण भारत में। बंगाल में ब्रज बुली बनी तो, गुजरात, महाराष्ट्र और पंजाब में काव्य बोली बन कर अपना सरस सौन्दर्य विकीर्ण करती रही। न जाने कितने भक्तों के अधरों का रस पीया है इसने; न जाने कितने आराधकों ने इस भाषा के तुलसी दल चढ़ाये हैं अपने आराध्य के भी चरणों में और न जाने कितनी मीराओं ने पाया हैं अपने गिरधारी को इस भाषा की ललित पदावलियों में रसखान यदि नन्द के लाल पर आसक्त हुये और ब्रज में रहने की कामना करने लगे तो स्वाभाविक ही था। वह तो जन्म जन्मातर तक ब्रज में रहना चाहते थे चाहे रूप कोई भी क्यूँ न हो। ब्रज, ब्रजराज और ब्रज भाषा उसी तरह है जिस तरह पलक और पुतली, प्राण और सांस, लता और पुष्प। ब्रजभाषा किसी जाति और वर्ण की भाषा नही कृष्ण तो सबके हैं और यह ब्रजनागरी सभी के

कंठों का हार। ब्रजराज के रंग में डूबी होने के कारण यह ब्रजनागरी रसगागरी बन गई। ठीक ही है :-

ये रसखान के रंग रँगी रसखान खरी रसखान की गाथा।
यामें घुरी मिसुरी मधुरी यह गोपिन के अधरान की गाथा॥
को सखि याकी करै कवि व्यास ये भाव भरे अधरान की भासा।
बोरति भक्ति निचोरति ज्ञान सुगोविंद के गुन-गान की भासा॥

भक्ति काल में अनेकानेक कवियों ने भक्ति का अलख जगाया था। करताल की प्रत्येक धुन पर गूँजे थे ब्रजभाषा के मधुर पद, मृदंग की मन भावनी थाप पर नाची थी संगीत की सरस-स्वर लहरी, भजन और संकीर्तन की प्रत्येक लहर पर गूँजी थी ब्रजवाणी, जो चिरकाल तक पीयूष वर्षा करती रही। रीतिकाल में आकर ब्रजभाषा पनपी राज दरबारों में, नायक नायकाओं की प्रेम क्रीड़ाओं में, नायका के हास में और चन्दा के रजत प्रकाश में। सौंदर्य और कवित्व एक दूसरे का ही नाम है। ब्रजभाषा कवियों ने जहाँ एक ओर नायका की रूप माधुरी का वर्णन किया तो दूसरी प्रकृति सुन्दरी के सौन्दर्य ने भी उन्हें अपनी ओर आकर्षित किया। एक ओर पोड़सी के रूप माधुर्य पर उन्होंने लेखनी उठायी तो दूसरी ओर बसन्त की रसमीनी बयारों ने भी उनके हृदय में रसगन्ध फैलाई। पायल के नूपुर की सरस झंकार यदि काव्य क्षेत्र में गूँजी तो रण क्षेत्र में मचलती हुई नग्न तलवारों का ताडव भी देखा ब्रज कविता ने संयोग और वियोग की बाँसुरी ने रस फैलाया है तो वात्सल्य प्रेम भी अपनी चरम सीमा पर पहुँचा है। इसका रूप तो नित नूतन है नित प्रेरक है ठीक है :—

ज्यों-ज्यों निहारिये नेरे ह्वै नैनन,
त्यों-त्यों खरी निकसै सी निकाई।

ब्रजभाषा कवि तो सौन्दर्य के उपासक थे। वह सौन्दर्य ही क्या जो सदैव एक सा रहे। यही कारण था कि ब्रज कवियों ने सदैव नूतन सौन्दर्य पर कलम उठाई ब्रजभाषा कविता में आपको रमणीयता मिलेगी और नितनूतन रमणीयता। रमणीयता का लक्षण है :—

क्षणे क्षणे यनवता मुपैनो तदैव रूपं रमणीयताय:

ब्रजभाषा की मधुरिमा जीवन की मधुरिमा है, काव्य का लावण्य है और भावना का शृंगार ब्रज और ब्रजभाषा पर रसिक उसी तरह आकर्षित हुये जिस प्रकार मकरन्द पर भ्रमरावलियाँ। फारस का प्रसिद्ध कवि अली हजी एक बार ब्रज यात्रा पर भी पहुँचा था। उसका कहना था कि फारसी भाषा से मीठी अन्य कोई भाषा ही नहीं है लेकिन उसका भ्रम दूर हुआ था ब्रज बीथियों में। एक ग्वालिन अपनी बालिका के साथ सर पर गागर रखे जा रही थी कि बालिका माँ से बोली 'माई री माई साँकरी गली में मोहि काँकरी गड़त है।' सुनकर अलीहजी आश्चर्य चकित रह गया और उसने कहा कि जहां पर बालक इतनी मीठी भाषा बोलते हैं वहाँ का काव्य कितना मधुर होगा। सत्य तो यह है :—'ब्रजभाषा सी मिठलौनी कहाँ। ब्रज भाषा कवियों ने रस की वह वर्षा की कि भारती धन्य हो गई। चाहे शृंगार वर्णन हो, हास्य, वीर सभी क्षेत्रों पर इनकी लेखनी समान अधिकार से चली है। यदि कहा

जाय कि ब्रज भाषा कवियों ने अपने काव्य में गागर में सागर भरा है तो सत्य ही है । जहां भावना कविता बनती है तो कविता भावना । जहाँ राधा श्याम बनती है तो श्याम राधिका । टीक ही यह सक्षमता ब्रज और ब्रज कविता में ही है कि :—

'राधिका कान्ह कौ ध्यान धरै,
तब कान्ह ह्वौ राधिका के गुन गावै ॥

ब्रजभाषा कवियों ने वर्णन किया संयोग का वियोग का । यह जानते हुए भी कि :—

यह प्रेम कौ पंथ कराल महा,
तरवार की धार पै धावनौ है ।

प्रेम के गीत गाये । ब्रजभाषा के सौन्दर्य ने अवधी भाषी तुलसी, नरोत्तम और न जाने कितने कवि शिरोमणियों को अपनी रूप माधुरी की ओर आकर्षित किया । आँध्र प्रदेश के होने पर भी पदमाकर ब्रज और ब्रज कविता के अनन्य उपासक बने । कवि की कला चातुरी से तो कविता बनती ही है, परन्तु भाषा का भी उसके सौन्दर्य में बहुत स्थान होता है । महाकवि केशव ने राम चन्द्रिका के प्रारम्भ में लिखा है कि :—

'रामचन्द्र की चन्द्रिका भाखा करी प्रकास'

'रामचन्द्रिका' ब्रजभाषा का विशाल रसमय काव्य है । यही नहीं सुकवि हरिऔध ने भी 'प्रिय प्रवास' लिखते समय न जाने कितनी क्षमा याचना की है ब्रजभाषा में न लिखने के लिये ब्रजभाषाकाव्य और संगीत की प्रमुख भाषा है । स्वामी हरिदास, सूरदास, तानसेंन, बैजू और न जाने कितने महान संगीतज्ञों ने इसी भाषा में राग-रागनियों की साधना की है । राजदरबारों में भी ब्रजभाषा सम्मानित हुई । अकबर, बीरबल, रहीम, गुरुगोविन्द सिंह, बनीठनी आदि न जाने कितने कवि इस भाषा के सौंदर्य से आर्कषित हुए ।

आधुनिक युग तक आते-आते ब्रजभाषा उपेक्षित हो गई । इसमें भाषा का दोष नहीं था । भाषा तो अब भी उसी रस में पगी है लेकिन काव्य प्रेमियों की उपेक्षा से ब्रजभाषा का मम अवश्य घायल हुआ । इस उपेक्षित को अपनाया भी गया तो उस ममत्व से नहीं जो कि इसका वांछित था । आधुनिक युग में जहाँ काव्य में वादों और विवादों की विविधता फैली हुई है वहाँ आज भी ब्रजभाषा एक ही निर्मल ज्योति से दैदीप्यमान है और वह है :—

'रसात्मकं वाक्यं काव्यं'

आज आवश्यकता इस बात की है कि साहित्य की इस जीवित भाषा को अपनाया जाय क्योंकि ब्रजभाषा में जीवन है, रस है तथा जो सदैव ऋतुराज बन कर साहित्य जगत में सौरभ विकीर्ण करती है । द्विजदेव के यह वाक्य यदि हम ब्रजभाषा कविता के लिये कहें तो सही उतरते हैं ;—

चिर जीवौ वसन्त सदा द्विजदेव,
प्रसूनन की झरि लायौ करौ ।

* * *

ब्रजत्व के पुनरुत्थान की दिशा-एक चिन्तन

(श्री मोहन लाल शर्मा. एम० ए० (हिन्दी, राजनीति) साहित्यरत्न)

भारत में व्रज कौ महत्वपूर्ण स्थान है । भारत की राष्ट्रीय संस्कृतिमें ब्रजमण्डल ने महनीय योगदान दियौ है । जा भांति राष्ट्र-जीवन में व्रजेश्वर श्रीकृष्ण जी की देन अपने आप में अद्वितीय रही है, वाही भांति ब्रजलोक के जीवन दर्शन, ब्रजभाषा, वाके साहित्य और कला हू कौ अपनौ स्थायी महत्त्व रह्यौ, है । ब्रजभाषा साहित्य तौ भारतीय साहित्य विशेषकर हिंदी-साहित्य कौ आधार रह्यौ है । एक समय हौ जब ब्रजभाषा काव्य हिन्दी काव्य कौ पर्याय मान्यौ जाय हौ । आजहू ब्रजलोक जीवन और ब्रजभाषा-साहित्य कौ सांस्कृतिक पक्ष भारत के राष्ट्रीय जीवन की अमूल्य निधि है ।

ब्रजदर्शन और ब्रजलोक जीवन के कछू ऐसे मौलिक तत्व हैं जो ब्रज के कण-कण में समाए भये हैं और ब्रजवासीन के सतत प्रेरणा स्रोत हैं । जैसे–दिव्य प्रेमभाव, रमणीयता यदि । इनते ब्रजलोक जीवन कौ अपनौ एक ऐसौ निजी स्वरुप सौ गठित ह्वै गयौ है जो अपने आप में एक दम अपनौ है । याकूं एक शब्दमें 'ब्रजत्व' कह सकें हैं यानी ब्रजपनौ । वास्तव में यह ब्रजत्व ही ब्रज कौ प्राण है । आज याही के पुनरुत्थान की आवश्यकता है ।

ब्रज एक सांस्कृतिक इकाई है । वाके या सांस्कृतिक रूप कौ संरक्षण ही सच्चे अर्थ में ब्रजत्व कौ उत्थान है । यों तौ भोगोलिक रूप ते ब्रजभाषा रूपी क्षेत्र ब्रजप्रदेश के रूप में हू जान्यौ जाय है । कछू महानुभाव वाकूं राजनीतिक इकाई के रूप में हू संगठित करिबे कौ सपने सौ देखिबे लगे हैं । पर या विषय में हमें बड़्यौ ही सावधान रहनौ परगौ कि कहूँ राजनीति की बलिवेदी पै ब्रज कौ शोषण नाय ह्वै जाय । ब्रजभाषा भाषी क्षेत्र निसन्देह एक संगठित अन्तर्प्रदेश है परन्तु या बखत भारतीय राजनीति की जैसी धारा बहरही है, वाकूं देखिकें यही विचार अधिक समीचीन लगै है कि ब्रज के सांस्कृतिक, सामाजिक व साहित्यिक पक्षकूं ही अधिक पुष्ट कियौ जाय और राजनीतिक आन्दोलन कूं यासों जितनौ ह्वै सकै, दूर ही रख्यौ जाय ।

यों तौ 'ब्रजत्व' बड़ौ व्यापक शब्द है । यामें सम्पूर्ण ब्रजतत्व समाय जाय है परन्तु मोटे तौर ते हम याके तीन विभाग करसकें हैं :—

१. ब्रजभाषा और वाकौ साहित्य
२, ब्रज की कला
३. ब्रजलोक जीवन और दर्शन

ब्रजभाषा और वाकौ साहित्य

ब्रजभाषा ब्रज की वाणी है । व्यापक रूप में आजहू याकौ प्रचलन है । ब्रज बोली के रूप में अपनी विशेषतान ते युक्त आजहू ब्रजभाषा बड़ी रसीली मानी जाय है । ब्रज के नगरन में अपेक्षाकृत याकौ प्रयोग कछू कम ह्वै चल्यौ है । ब्रज के महानुभावन कौ कर्त्तव्य है कि ब्रज

के उत्सवन में, छोटे-बड़े कार्यक्रमन में तथा गोष्ठीन में ब्रजभाषा के अधिकाधिक प्रयोग कूँ प्रोत्साहन दे । ब्रज की संस्था ब्रज की बानी में ही ब्रजत्व कूं अभिव्यक्त करें तौ बड़ौ उपकार होइगौ। ब्रजभाषा के भाषाशास्त्रीय अध्ययन की ओर तौ कछू विश्व-विद्यलयन के विद्वान महानुभावन कौ ध्यान गयौ हैं और पर्याप्त कार्य हू भयौ है पर ब्रजभाषा साहित्य अभी उपोक्षित ह्वै रहयौ है ।

ब्रज भाषा मधुर होइवे के कारन काव्य के लिए तौ सदा ते ही उपयुक्त रही है । सन् १९०० ते आधुनिक हिन्दी साहित्य कौ विकास भयौ जामें ब्रजभाषा के साथ-साथ खड़ी बोली कौ हू अपनौ स्थान बनतौ गयौ । खड़ी बोली के विकास कौ रूप इतनौ व्यापक हो तौ गयौ कि ब्रजभाषा काव्य की धारा सीमित ह्वै गई । पूर्व भारतेन्दु युग में जो ब्रजभाषा हिन्दी साहित्य और प्रधानतः काव्य में स्वामिनी ही, वह भारतेन्दु युग में खड़ी बोली की सगिनी ह्वै गई और द्विवेदी युग में तौ अनुगामिनी बनी । बाबू जगन्नाथ दासजी रत्नाकर तक ब्रजभाषा काव्य कौ प्रतिनिधि रूप जिवित रह्यौ । वाके बाद श्री बनारसी दास जी चतुर्वेदी के प्रशंसनीय प्रयास सौं श्री सत्यनारायण कविरत्न कौ काव्यरूप सम्मुख आयौ और वे ब्रजभाषा काव्य के अन्तिम प्रतिनिधि कवि से माने गए । श्री वियोगी हरि हू 'ब्रज माधुरी सार' में कविरत्न जी कूँ ब्रजभाषा काव्य कौ अन्तिम प्रतिनिधि कवि मानकें ग्रन्थ कूँ समाप्त करें हैं । तत्पश्चात ब्रजभाषा-काव्य रचना कौ कछू स्पष्ट स्वरूप देखिवे में नांय आवै । यों तौ स्फुट रूप ते ब्रजभाषा काव्य इतनी अधिक मात्रा में रच्यौ गयौ हैं और कछू स्थानन पै प्रकाशित हू भयौ है परन्तु इतनी अधिक मात्रा में रचना होते भये हू वाकौ रूप काव्य गोष्ठीन तक ही सीमित रह्यौ है और कोई प्रतिनिधि-रूप विकसित नांय ह्वै सकौ। यही एक मात्र कारन है कि हिन्दी के कतिपय आधुनिक आलोचक महानुभावन कूँ यह कहिवे कौ अवसर मिलि गयौ है कि आधुनिक ब्रजभाषा काव्य के नाम पै कछू है ही नांय जबकि स्थिति ठीक याके विपरीत है । अतएव आज आवश्यकता या बात की है कि श्री सत्यनारायण कविरत्न के समकालीन और पश्चात् से रचित ब्रजभाषा काव्य और वाके कवीन कौ प्रतिनिधि स्वरूप साहित्यसंसार के सम्मुख रख्यौ जाय । जब तक 'आधुनिक ब्रजभाषा काव्य के प्रतिनिधि कवीन'' कौ परिचय एक सुनियोजित सम्पादित स्वरूप में नांय होइगौ तब तक यही विचार दृढ़ हौ तौ चलौ जाइगौ कि ब्रजभाषा काव्य अब जीवन ते बाहर की वस्तु ह्वै गयौ है । वाके अस्तित्व हू में शंका और गहरी होती चली जाइगी ।

ब्रजभाषा गद्य कौ तौ और हू अधिक हाल बेहाल ह्वै रहयौ है । खड़ी बोली के आन्दोलन की व्यापकता ने ब्रजभाषा गद्य कूँ तौ ऐसौ देस निकारौ सौ दियौ कि बहुत से ब्रजभाषा के विद्वान हू अब यह विश्वास करन लगे हैं कि ब्रजभाषा गद्य की तौ बातहू करनी बेकार हैं । एक बार पद्मश्री पं० हरिशङ्करजी शर्मा ने ब्रजभाषा गद्य के विषय में लेखक ते ऐसौ ही मत प्रकट कियौ हौ पर वास्तविकता याते कछू औरई है । यह सच है कि आज ब्रजभाषा गद्य की रचना खड़ी बोली के या व्यूह में 'नक्कार खाने में तूती की सी आवाज' भले ही लगै पर ब्रजभाषा गद्य हू हिन्दी गद्य कौ एक जीवित रूप है । ब्रजभाषा गद्य ब्रज बोली के रूप में तौ सम्पूर्ण ब्रजक्षेत्र में पूरी तरह

व्याप्त ह्वै ही रही है परन्तु वाकौ लिखित रूप हू व्रज के अन्तरतम प्रदेश में दृष्टिगोचर होय है। छाता क्षेत्र (मथुरा जनपद) के अन्तर्गत नन्दगाँव बरसाने के आस-पास के गामन में आज हू जो पत्र व्यहार होइ है, वाकी भाषा विशुद्ध व्रजभाषा गद्य है जो अपने पर्याप्त पुष्ट रूप में जीवित है। दूसरे, व्रज की रासमण्डलीन में पात्रन के सम्वाद व्रजभाषा गद्य में ही होय हैं। जिनकौ कछू न कछू रूप उनके पास सुरक्षित रहै है। या प्रकार आज समय की मांग है कि व्रज भाषा गद्य के या प्रचलित स्वरूप कौ क्रमशः विकास कियौ जाय। छोड़े से ही प्रयास सौं ब्रजभाषा साहित्य कौ यह अभाव पूरौ है सके है। या क्षेत्र में व्रज साहित्य मण्डल ने प्रारम्भ में कछू प्रशंसनीय प्रयास कियौ हौ। कछू नवप्रयास हू आरम्भ भयौ है। डा० शरणबिहारी गोस्वामी कौ 'पूछरी कौ लौठा' नामक पउन्यास एक दिशासूचक उपलब्धि है। मेरौ यह विनम्र सुझाव है कि यदि व्रजभाषा के विद्वान महानुभाव पारस्परिक पत्र व्यवहार में व्रजभाषा गद्य कूँ धीरे धीरे प्रयोग में लाइकें प्रचलित करें तौ बहुत दिनान ते उपेक्षित हमारी भाषा समय पाइकें उचित सामाजिक संरक्षण पाइसकै है। हाँ आरम्भ में कछू अटपटौ सौ तौ जरुर लगैगौ पर प्रयोग में आइवे के पश्चात् एक युग के विकास की आधार सिला धर जायगी। बाद में तौ कहानी, निबन्ध और समीक्षा हू के अवरुद्ध द्वार खुल जाइंगे।

ब्रज की कला—

व्रज की कला के अन्तर्गत व्रज कौ संगीत रंगमंच और नृत्य आदि आवै है। व्रज संगीत अपने आप में बड़ौ पुष्ट और पूर्ण है पर अभी तक वाकी कुशल अभिव्यक्तिपरक आयोजना विधिवत् नाय है सकी है। व्यावसायिक व अव्यावसायिक रंगमंच व्रज में बड़े हो अस्पष्ट रूप में है। रासलीला तौ व्रज की जगत्प्रसिद्ध है पर वाहू कौ रूप अब ही तक नांय सुधरपायौ है। डा० सेठ गोविन्द दास जी की सद्प्रेरणा ते रासलीला के शास्त्रीय रूप कौ उद्धार करिबे कौ प्रयत्न कछू दिना पहले वड़ी सफलता पूर्वक चल्यौ हौ पर बाद में वाकौ कोई स्थायी रूप नांय बन सकौ। व्रजकला केन्द्र या दिशा में चेष्टारत है और व्रज लोक मंच के शुद्ध स्वरूप कूँ कछु स्थापित कर सकैगौ, ऐसी आशा हैं। व्रज के लोक नृत्यन की ओर अभी गम्भीरता पूर्वक ध्यान नांय गयौ हैं। आशा है, लोक रंगमंच के क्रमिक विकास के साथ-साथ याहू कौ उद्धार होइगौ।

ब्रजलोक जीवन और दर्शन—

व्रजलोक जीवन के विशिष्ट स्वरूप की रक्षा कौ जानों आज आवश्यक है गयौ है। व्रजदर्शन तौ भारतीय वाङ्मय कौ स्वर्णिम अध्याय है। याके वैज्ञानिक अध्ययन की ओर ध्यान जानो चाहिऐ। लोकतात्विक साहित्य के प्रसिद्ध विद्वान डा० सत्येन्द्र जी ने या क्षेत्र में प्रर्याप्त कार्य कियौ है और उनके व्रजलोक तत्व सम्बन्धी ग्रन्थ व्रज साहित्य की अमूल्य निधि हैं। कछू विद्वान महानुभावन ने व्रज के लोकगीतन कौ जिलाश: वैज्ञानिक अध्वयन प्रस्तुत करकें बड़ौ प्रशंसनीय प्रयास कियौ है। व्रजलोक जीवन के ऐसे बहुत से सारगर्भित छिपे भए तत्व हैं अभी जिनके विधिवत् प्रकाश में लाइवे की आवश्यकता है। व्रज के प्राचीन, अर्वाचीन भक्त, कवि तथा विद्वानन के स्मारक निर्माण

आदि की ओर हू ध्यान दैवो अपेक्षित है । ब्रज संस्कृति परिषद ने रससिद्ध कवि रसखान के स्मारक कौ पुनरुद्धार कर सही दिशा में पग उठायौ है ।

या प्रकार ब्रजत्व के पुनरुत्थान की दिशा स्पष्ट रूप ते हमें आह्वान करै है कि अपनी या सांस्कृतिक धरोहर कूँ हम कछू अधिक संलग्नता ते संरक्षित व पोषित करिबे कौ प्रयास करें। सूरस्मारकमण्डल गौघाट, रुनकता (आगरा) के तत्वावधान में आयोजित गत सूरमेले में भाषण देते भये केन्द्रीय प्रसारण मन्त्री श्री राजबहादुरजी ने बड़े मार्मिक रूप ते यह कही कि ब्रज के महत्त्व कूँ देखिते भये मथुरा में आकाश-वाणी कौ केन्द्र हू स्थापित करिबे कौ निर्णय कियौ गयौ है पर इतने मात्र ते सन्तोष नहीं हौनो चाहिए । आकाशबाणी केन्द्र कछू यन्त्रन के लगि जाइबे ते तौ सफल नांय होय बल्कि अपेक्षित तौ यह है कि वाके द्वारा उच्चस्तरीय ब्रजभाषा साहित्य, संगीत व संस्कृति के कार्यक्रम प्रसारित होंय जो ब्रज के शाश्वत सन्देश कूँ दै सकें जाते ब्रज के सांस्कृतिक मूल्यन के द्वारा न केवल भारत वरन् सम्पूर्ण विश्व कूँ कल्याणकारी प्रेरणा मिलै ।

वास्तव में ब्रजत्व के समग्र विकास के लिए विवध प्रकार के चल रहे स्वतन्त्र प्रयासन में उचित समायोजन हौनो चाहिए । ब्रज की समस्त संस्था और पत्र यथा—ब्रजभारती, नवरंग, अमर उजाला आदि पारस्परिक सहयोग के आधार पै सही ब्रजचेतना जाग्रत कर नव निर्माण में अग्रसर होंय तौ ब्रज और भारत की सच्ची सेवा करि सकिगे ।

पत्र-व्यवहार

गोवर्धन मथुरा उ. प्र.
दिनांक ११-७-६६

श्रद्धेय बाबूजो !

सादर हरि स्मरण ।

यह जानकर हार्दिक प्रसन्नता हुई कि आपके सम्पादकत्व में व्रज भारती पुनः प्रकाशित हो रही है और व्रज साहित्य मंडल सक्रिय हो उठा है । व्रज साहित्य मंडल के सफल संचालन और शुभ संकल्प के लिए मेरी हार्दिक शुभ कामना और बधाई स्वीकार करें ।

व्रज भारती के अंकों को नियमित रूपसे भेजने के लिये कोटिशः साधुवाद । यह आप की महानता है कि आप मुझ पर इतनी श्रद्धा व प्रेम रखते हैं ।

आपके हृदय में 'व्रज साहित्य मंडल, के उत्थान के प्रति जो आस्था है, उसे मैं भली भाँति अनुभव कर रहा हूँ । मुझे आशा ही नहीं पूर्ण विश्वास है कि आपको इस कार्य में मंडल के सभी कार्यकर्ताओं का सहयोग प्राप्त होगा ।

व्रज की चेतना को मुखरित करने का श्रेय व्रज साहित्य मंडल को है। व्रजप्रदेश में भूतकाल में ऐसी अनेक साहित्यिक विभूतियां उत्पन्न हुई हैं जिनके उत्कृष्ट ग्रन्थों ने विश्व में इस जनपद का नाम ऊँचाकर इसे यश एवं गौरव प्रदान किया है । समय के फेर में वे प्रतिभाऐं हमारे मध्य से विलीन हो गई। उनके ग्रन्थ प्रायः लुप्त होते जा रहे हैं और हम उन्हें भूलते जा रहे हैं ।

यह बड़े खेद का विषय है । वे व्रज की विभूतियाँ है । हमें विश्व के समक्ष उन्हें सदैव जीवित रखना चाहिये। इसी से व्रज भूमि का और हमारा गौरव है। इसके अतिरिक्त अनेकों साहित्यिक और ऐसे साहित्य महारथी मथुरा मंडल में विद्यमान हैं जिन्हें मथुरा मंडल भी पूरा नहीं जानता दूसरों की तो बात ही क्या है ?

आज आवश्यकता है व्रजभाषा के वैज्ञानिक तुलनात्मक भाषा शास्त्रीय विवेचन, दुर्लभहस्त लिखित ग्रन्थों के प्रकाशन संरक्षण के लिये अधिकोष की व्यवस्था, अष्टछाप भवन, व्रज में सांस्कृतिक स्थल केन्द्र की स्थापना, व्रजलोक जीवन और लोक काव्य के परिशीलन तथा व्रज में राष्ट्रीयता के प्रति एक नवीन चेतना की जिससे व्रज अपने प्राचीन गौरव को प्राप्त हो सके ।

ब्रज साहित्य मंडल के पुनरत्थान में नवोदित प्रतिभाओं का सक्रिय सहयोग लाभ प्रद हो सकता है ब्रज में नवोदित प्रतिभाओं का अभाव नहीं। "ब्रज भारती" के माध्यम से आप मंडल को उसका प्राचीन गौरव उपलब्ध कराने में अवश्य सफल होंगे।

मंडल की सफलता के लिये मेरी शुभ कामनाएँ।

भवदीय

राधेबिहारी लाल सक्सेना 'राकेश'

शोधकार्यकर्ता ब्रज साहित्य

संपादकीय नोट:—

सक्सेनाजी के आदेशानुसार हम उनका पत्र छाप रहे हैं। सक्सेना जी जनपदीय क्षेत्र में हिन्दी की सेवा में रत हैं। हम उनसे अनुरोध करेंगे वे ब्रजभारती के इसी अंक में मुद्रित हमारे सम्पादकीय लेख को पढ़ें और उसके अन्तर्गत दी हुई हिन्दी सम्वर्द्धिनी योजना में अपना महत्वपूर्ण योगदान दें। चूँकि उनका कार्यक्षेत्र जनपद में ही है अतः वह इसमें अपने महत्वपूर्ण कार्य से हिन्दी के भन्डार की वृद्धि कर सकते हैं।

—वृन्दावनदास

स्व. डा. वासुदेव शरण अग्रवाल के निधन पर संवेदना

(रचयिता श्री गोविन्द चतुर्वेदी शास्त्री)

(कवित्त)

पुरातत्व वैदिक विग्यान इतिहास विग्य
भारतीय संस्कृति प्रधान ग्यान दै गयौ।
भनत 'गोविन्द' गीतामथि नवनीत काढ़यौ
व्याकरन साहित सुधासमुद्र ह्वै गयौ।
तंत्र मंत्र यंत्र योगविद्या के स्वतन्त्र ख्याल
हाल काल गतिसों न जानें वौ कितै गयौ।
अग्रवाल वंस हंस भारत वसुन्धरा तें
वासुदेव सरन अमूल्य रत्न ख्वै गयौ।।

वेद और उनके साहित्य का इतिहास

लेखक—श्री वृन्दावन दास

वैवस्वत मनु से महाभारत के युद्ध तक राजवंशों की ९५ पीढ़ियों का वर्णन पुराणों से उपलब्ध होता है । सामान्यतया इन राजवंशों की ३६ पीढ़ियाँ समाप्त हो चुकी तब वैदिक मन्त्रों का निर्माण आरम्भ हुआ । मनु से लेकर अनेक पीढ़ियाँ राज्य कर चुकीं और भारत में आर्यों का राज्य व्यवस्थित हो गया तब ऋषियों की एक परम्परा ने वैदिक मन्त्रों की रचना करना आरम्भ कर दिया । जो मन्त्र श्रुति द्वारा चले आते थे उनका संकलन कर उन्हें वेदों का रूप दिया गया । वैदिक मन्त्रों के संकलन का नाम संहिता है जिस रूप में कि वह आज विद्यमान है । चारों वेदों का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है ।

ऋग्वेद :—ऋग्वेद के प्रधान ऋषि गृत्समद, विश्वामित्र, वामदेव, अत्रि भारद्वाज और वशिष्ठ हैं । ये ऋषि सात मण्डलों से सम्बन्धित हैं । आठवें मण्डल के ऋषि कण्व और अङ्गिरस हैं । सूक्तों के निर्माता वैवस्वत मनु, शिव औशीनर, पतर्दन, मधुछन्दा और देवापि प्रख्यात हैं ।

यजुर्वेद : यजुर्वेद दो प्रकार का है । शुक्ल यजुर्वेद और कृष्ण यजुर्वेद । शुक्ल यजुर्वेद को वाजसनेयी संहिता भी कहते है । इसकी दो शाखाएँ हैं (१। कण्व (२) माध्यन्दिनीय, कृष्ण यजुर्वेद चार शाखाओं विभाजित है । (१) काठक संहिता (२) कपिष्ठल संहिता (३) मैत्रेयी संहिता (४) तैत्तिरीय संहिता । उपरोक्त सब संहिताओं में वाजसनेयी संहिता सब से अधिक मान्यता प्राप्त है । वस्तुतः पण्डित जन उसे ही यजुर्वेद मानते हैं ।

सामवेद :—सामवेद की तीन शाखाएँ हैं । (१) कौथुम शाखा । (२) राणायनीय शाखा (३) जैमिनीय शाखा । इन शाखाओं में कौथुम शाखा अधिक महत्वपूर्ण है और वही प्रचलित है । सामवेद में बहुत से मन्त्र ऐसे हैं जो ऋग्वेद में भी आ चुके हैं । सामवेद के मन्त्रों को गीत के रूप में गाया जा सकता है ।

अथर्ववेद :— अथर्ववेद की दो शाखाएँ हैं । (१) शौनक और (२) पिप्पलाद । अथर्ववेद की शौनक शाखा अधिक प्रामाणिक है । अथर्ववेद में ७३१ सूक्त हैं ।

ऋषि का अर्थ है मन्त्र द्रष्टा । वैदिक पद्य का अर्थ है ऋक् या ऋचा । वैदिक गद्य को यजुष् कहते हैं । गीतात्मक छन्द को साम कहते हैं । ऋचा, यजुष् और साम को सूक्त कहते हैं वेदों के सूक्त वस्तुतः ऋचाओं और सामों के समूह ही हैं ।

वेदों के साथ ब्राह्मण ग्रन्थों का वर्णन करना भी उपयुक्त है । ऋग्वेद का ब्राह्मण ग्रन्थ ऐतरेय ब्राह्मण है । यह ग्रन्थ भी महिदास ऐतरेय द्वारा संकलित है । श्रुति के आधार पर इसका भी संकलन हुआ है ।

शुक्ल यजुर्वेद का ब्राह्मण शतपथ है और कृष्ण यजुर्वेद का तैत्तिरीय । ये दोनों विशालग्रन्थ हैं और इनमें याज्ञिक अनुष्ठानों की विधियाँ हैं ।

सामवेद के तीन ब्राह्मण हैं, ताण्ड्य महाब्राह्मण, षड्विंश ब्राह्मण और जैमिनीय ब्राह्मण। ये तीनों ब्राह्मण अन्य ब्राह्मणों की अपेक्षाकृत अधिक प्राचीन है।

अथर्ववेद का ब्राह्मण गोपथ हैं।

प्राचीन वैदिक काल में ऋषिगण वनों में आश्रम बनाकर अध्यात्म चिन्तन किया करते थे। बहुत से राजा लोग भी सांसारिक कार्यों से निवृत्त होकर वन में निवास करते और याज्ञिक अनुष्ठानों के साथ आध्यात्म चिन्तन किया करते थे। आश्रम-वासी कई राजा मन्त्रद्दष्टा ऋषि हुए हैं। राजा देवापि प्रख्यात मन्त्रद्दष्टा ऋषि थे। अगस्त्यपत्नी लोपामुद्रा प्रसिद्धनामा महिला ऋषि थीं। इस अध्यात्म चिन्तन के परिणाम स्वरूप आरण्यक एवं उपनिषदों की उत्पत्ति हुई। आरण्यक और उपनिषद् भी एक प्रकार से वेदों के अङ्ग हैं। इनकी संख्या लगभग २०० है। ऐतरेय उपनिषद्, ईशोपनिषद् केन, और छान्दोग्य उपनिषद अधिक प्रसिद्ध हैं। ये उपनिषद पहिले तीन वेदों से सम्बन्धित हैं। मुण्डक उपनिषद्, प्रश्न उपनिषद और माण्डूक्य उपनिषद् का अथर्ववेद से सम्बन्ध है।

आरण्यक और उपनिषदों का निर्माण वैदिक सूक्तों के बाद हुआ। इनमें अध्यात्म-चिन्तन के अतिरिक्त राजवंशों के उपाख्यानों के रूप में बहुत सी ऐतिहासिक सामग्री भी है। दार्शनिक विचारों और अध्यात्म चिन्तन की दृष्टि से आरण्यकों और उपनिषदों का अत्यन्त महत्व है।

ऋग्वेद में वर्णित मानव-जीवन बड़े आनन्द और आल्हाद का है। ऋग्वेद के काल के सम्बन्ध में विद्वानों में गहन मतभेद है। मॅक्समूलर के मत से ऋग्वेद के निर्माण का समय ईसा से १०००—१२०० वर्ष पहिले का है। मैकडानल और कीथ भी कुछ ऐसी ही बात कहते हैं। जर्मन विद्वान् जैकोबी ज्योतिष के प्रमाणों के आधार पर कहते हैं कि ऋग्वेद ईसा से ४००० वर्ष पहिले बना। लोकमान्य बाल गङ्गाधर तिलक ऋग्वेद की रचना ईसा से ८००० वर्ष पूर्व की बतलाते हैं।

ऋग्वेद की भाषा सुन्दर सुसंस्कृत और समुन्नत है। ऋग्वेद में वर्णित सभ्यता तो स्वभावत: ऋग्वेद के निर्माण से भी बहुत पुरानी है। वह बड़ी उच्च कोटि की है और उसे इस अवस्था तक विकसित होने में अनेक शताब्दियाँ लगी होंगी। यह सभ्यता जिस जाति की है उसको ऋग्वेद ने स्वयं 'आर्य' कहा है। ऋग्वेद से प्रगट है कि आर्य लोग कहीं बाहर से आकर भारत के उत्तर प्रदेश और गङ्गा जमुना के दुआब में बस गये। ऋग्वेद में यमुना नदी तक के ही वनों, पक्षियों और प्राकृतिक दृश्यों के सौन्दर्य का वर्णन है। ऋग्वेद के मन्त्रों में वितस्ता, असिक्नी, परुष्णी, विपाश और शुतुद्री नदियों का अनेकों बार उल्लेख आया है। ये नदियाँ पंजाब की क्रमश: झेलम, चिनाव, रावी, व्यास और सतलज वर्तमान नदियाँ हैं। ऋग्वेद में पुरु, तुर्वशम्, यदु, अनु, द्रुह्यु आदि पाँच जनों का उल्लेख बहुतायत से आया है। इससे प्रकट है कि उस समय आर्यगण बहुत से जनों में विभाजित थे। इनके अतिरिक्त भरत, गंधार और उशीनरस् जनों का उल्लेख भी ऋचाओं में आया हैं। ऋग्वेद की ऋचाओं में आर्यों से अनार्य जाति के संघर्ष का

भी उल्लेख है। यद्यपि अनार्य लोगों की सभ्यता भी उच्च स्तर की थी तथापि वे आर्यों के उत्कृष्ट जीवन दर्शन की समता न कर सकते थे। पारस्परिक संघर्ष में अनार्यों की पराजय हुई और आर्यों की विजय। यद्यपि अनार्यों ने विकट संग्राम छेड़ा था उनको अन्त में आर्यों से हार माननी पड़ी। उन्होंने आर्यों की दासता स्वीकार करली। सम्भवत: निम्न वर्ण की जातियाँ इन्हीं अनार्यों की थी। कुछ समय उपरान्त आर्य और अनार्य जातियाँ घुल मिलकर एक हो गई, ऊँच नीच का भेद जाता रहा। दोनों की सम्मिलित एक संस्कृति बनी। आर्य सभ्यता ने अनार्य सभ्यता पर प्रभाव डाला और इसी प्रकार अनार्य सभ्यता आर्य सभ्यता से प्रभावित हुई।

दुर्भाग्यवश ऋचाओं से पूरी ऐतिहासिक सामग्री उपलब्ध नहीं होती है। जीवन निर्वाह के दो साधन थे। (१) कृषि (२) पशुपालन। ऋग्वेद के समय भारत की जलवायु इतनी गर्म न थी। यहाँ का मौसम उस समय ठण्डा और सुहावना था और इसी कारण ठण्डे देशों से आये हुए आर्यों को वह अनुकूल सिद्ध हुआ। उस समय सरस्वती नदी का अस्तित्व था और रेगिस्तान न होकर जंगलों की बहुतायत थी। समय व्यतीत होने पर सरस्वती के लोप होने और रेगिस्तान के बढ़ने से यहाँ की जलवायु गर्म होती गई और जन-जीवन में ऋग्वेद के समय का सा आनन्द न रहा। वर्षा भी समय पर न होकर कभी-कभी अपर्याप्त होने लगी। परिणाम स्वरूप लोग दैव से भयभीत होकर निराशा के भावों से पीड़ित होने लगे। ऋग्वेद के समय का सा अपूर्व उल्लास कालान्तर में कम होता गया।

'हिन्दुस्तान की पुरानी सभ्यता' नामी अपनी पुस्तक में डा० बैनीप्रसाद ऋग्वेद काल के जीवन के सम्बन्ध में लिखते हैं, "ऋग्वेद के समय जैसा उल्लास और सामाजिक स्वातंत्र्य था वैसा हिन्दुस्तान में फिर कभी न देखा गया। प्रेम और प्रसन्नता के भाव में आर्य लोग आनन्द से जीवन बिताते थे, परलोक की बहुत चिन्ता न थी, तप का कोई विचार न था, खान-पान की कोई रोक टोक न थी। मांस भोजन की प्रथा सब लोगों में प्रचलित थी। सुरा और सोम खूब पिये जाते थे। जर्मनों की तरह हिन्दू आर्य भी जुआ बहुत खेलते थे। नाच गाने का शौक बहुत था। खुले मैदान में स्त्री पुरुष बड़े चाव से नाचा करते थे। गान विद्या की बहुत उन्नति हो चुकी थी। सितार बांसुरी ढोल वगैरह प्रचलित थे। रथों की अक्सर दौड़ होती थी। आदि।"

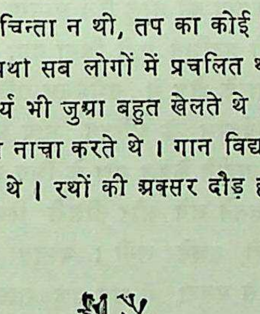

मथुरा से प्राप्त एक नवीन मृण्मूर्ति

—ले० डा० नीलकण्ठ पुरुषोत्तम जोशी

कुछ ही दिन पूर्व मथुरा के पुरातत्त्व संग्राहलय ने एक ऐसी प्राचीन मृण्मूर्ति प्राप्त की जो अपनी कई विशेषताओं के कारण प्राचीन भारतीय कला के संसार में एक अनोखा स्थान रखती है। यह स्त्री मूर्ति (संग्रहालय संख्या ६५. १८. ६) चार टुकड़ों में होते हुए भी लगभग समूची है। इसकी ऊँचाई १२ इञ्च है। यह काली मिट्टी की बनी है जो मथुरा की प्राचीन मृण्मूर्तियों की एक अपनी विशेषता है।

स्त्री की इस मृण्मयी मूर्ति का मुख एवं केशभाग साँचे से बनाया गया है, शेष भाग हाथ का गढ़ा हुआ है। इसके रमणीय मुख के साथ-साथ केशों की रचना और उनमें पिरोये गये आभूषण विशेष ध्यान देने योग्य हैं। प्रत्येक ओर सीमन्त से लेकर कान के बीच में दो नौ आरों वाले चक्रों के बीच एक ऐसा अभिप्राय बना है जिसका आकार कुछ आमने-सामने रखे हुए दो मनुष्यों के समान मिलता है। ललाट के ठीक ऊपर एक पूर्ण विकसित पुष्प बना है तथा दोनों कानों के बीच ललाट को आवर्तित करती हुई एक मणिमाला दिखलाई पड़ती है। एक कान में चक्राकार कुण्डल और दूसरे में तरखी पड़ी हुई है। मुख का भाव, केश विन्यास, आदि की समुचित गढ़न के लिए साँचा बनाते समय बहुत बारीकी से काम लिया गया है।

स्त्री के अन्य आभूषणों में तारांकित मणियों से युक्त ग्रैवेयक, दोहरी लड़ी वाले मणियों का स्तनावहार, छः लड़ियों वाले कंकण तथा पाँच लड़ियों की मोटी करधनी मुख्य है। पैरों में पड़े हुए तीन लड़ियों वाले नूपुरों को भी गिनाना होगा, उसी प्रकार पेट के चारों ओर लपेटा हुआ छोटा सा पट भी विशेष आकर्षण की वस्तु है। सम्पूर्ण मूर्ति में वस्त्रों के कोई चिन्ह नहीं हैं, यद्यपि प्रयत्न पुरस्सरभग्नता को भी प्रदर्शित नहीं किया गया है। यह मूर्ति उस काल का प्रातिनिध्य करती है जब मृन्मूर्तिकला के क्षेत्र में सर्वप्रथम साँचों का प्रयोग अंशतः अर्थात् केवल मुख के लिए प्रारम्भ हुआ था। मौर्यकाल के अन्तिम भाग में कलाकारों ने साँचे के महत्व एवं उपादेयता को समझा था। पहले उन्होंने केवल मुख के लिए साँचा बनाया फिर मुख के साथ केश और उनके आभरण भी साँचे में बनने लगे और तीसरी स्थिति में अर्थात् शुंगकाल की उत्कर्षावस्था में सम्पूर्ण प्रतिमा साँचे में ही ढलने लगी। प्रस्तुत मूर्ति में भी मुख और केशाभरणों के लिए साँचा प्रयुक्त है। दुर्भाग्य से मथुरा में अब तक शास्त्रीय उत्खनन नहीं हुए हैं अतएव उत्खननों के आधार पर इस मूर्ति का तिथि निश्चय नहीं किया जा सकता। मथुरा संग्रहालय की इस प्रकार की अन्य मूर्तियाँ भी इसी तरह एकत्रित की गई हैं अतएव हमारे सामने तिथि निश्चय के लिए एक मात्र साधन 'शैली' ही रह जाता है। तदनुसार इस सुन्दर मूर्ति का काल मौर्य युग की समाप्ति और शुंगकाल का प्रारम्भ मानना चाहिए।

प्रस्तुत स्त्री मूर्ति की निम्नांकित विशेषताएँ ध्यान देने योग्य हैं :—

(१) अलंकार:-इनमें सर्वप्रथम कर्णाभूषणों की ओर ध्यान देना चाहिए। दोनों कानों में एक से आभूषण नहीं है। तरखी और चक्राकार कुण्डल का मेल बैठाया गया है। यह विशेषता

संग्रहालय की कुछ अन्य समकालीन मृन्मूर्तियों में भी पायी जाती हैं (संग्रहालय मूर्ति संख्या ४६·३४६०; ५४·३८०५; ५८·४४८३; ३८·२८१३)। ऐसा लगता है कि असमान आभूषणों को पहिनना कदाचित इस काल की एक अभिरुचि थी। शुंग और कुषाण काल की कुछ प्रस्तर मूर्तियों में भी यह पद्धति दिखलाई पड़ती है (वेणीमाधव बरुआ **धरहट** (बरहूल) चित्र ७६; कुषाण कालीन मूर्ति के लिये लखनऊ संग्रहालय संख्या J. १०३।

आभूषणों में दूसरी विशेषता नूपुरों का उपभोग है। मूर्तिकला में तो नुपुरों के कई प्रकार दिखलाई पड़ते हैं परन्तु मिट्टी की इस काल की मूर्तियों में अब तक किसी समूची मूर्ति के प्राप्त न होने के कारण नूपुरों के कोई नमूने नहीं मिले थे।

(२) हाथ की स्थिति :—इस स्त्रीमूर्ति का एक हाथ खण्डित है। दाहिने हाथ से वह अपने दक्षिण स्तन को स्पर्श कर रही है। माताओं को इस विशिष्ट स्थिति में दिखलाने की बड़ी परम्परा है। शुंग कालीन प्रस्तर कला में इसके दर्शन होते हैं। भरहूत की कलाकृतियों में एक स्थान पर गज लक्ष्मी बनी हुई है जो दाहिने हाथ से अपने बाँयें स्तन को स्पर्श कर रही है (वेणीमाधव बरुआ, **बरहूत** चित्र ८०)। इस परम्परा का सूत्र इससे भी अधिक प्राचीन है। प्रारम्भिक मेडेटिरीयन कला में तथा वेबिलोन में माताओं की ऐसी मृण्मूर्तियां मिली हैं जो अपने दोनों हाथों से स्तनों को दबाकर मानो दूध निकालती हुई दिखलाई गई हैं (गोस्वामी व गागुली, Indian Terracottas, कलकत्ता १९५९, पृ० ८ के सामने वाला फलक)। इनका काल ईसा पूर्व लगभग २००० कूता गया है। भारत में यह परम्परा शुंगही नहीं अपितु कुषाण काल तक विद्यमान थी। इसका सर्वोत्तम उदाहरण मथुरा से प्राप्त कमल वन में खड़ी लक्ष्मी की वह प्रतिमा है जो आजकल राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली की शोभा बढ़ा रही है (कुमारस्वामी, History of Indian and Indonesian Art, 1927 फलक २० चित्र ७४)।

(३) आकार और निर्माणकला :—यह मूर्ति लगभग एक फीट ऊँची है। यह ऊँचाई भी उसकी एक विशेषता है। इस प्रकार की और इस काल की इतनी ऊँची मूर्तियां अब तक नहीं प्राप्त हुई हैं। एक बात यह भी है कि कोई समूची मूर्ति हाथ न लगने के कारण ऊँचाई की ठीक कल्पना भी सम्भव नहीं थी। इस बात को जान सकने का यह प्रथम अवसर है।

इस मूर्ति की ऊँचाई एक और बात की ओर भी संकेत करती है। वह है उसके निर्माण की प्रक्रिया। साधारण मिट्टी की बड़ी मूर्तियां बनाने के लिए किसी ढांचे की आवश्यकता होती है। परन्तु इस मूर्ति के टुकड़ों को देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि यहां किसी प्रकार के ढांचे का उपयोग नहीं किया गया था। बहुधा प्रथम स्थिति में इस मूर्ति को लिटा कर बनाया गया होगा और बाद में मिट्टी के कुछ बड़ा होने पर उसमें पैर आदि अवयव तथा अलंकार चिपकाये गये होंगे।

मूर्ति की चौकी भी कम मनोवेधक नहीं है। क्योंकि अब तक की शुंग कालीन मूर्तियों में चौकी नहीं दिखलाई पड़ी थी।

अखिल भारतीय ब्रजसाहित्य मण्डल के महत्वपूर्ण प्रकाशन

१. ब्रज की लोक-कहानियाँ–(सम्पादक डा० सत्येन्द्र)

ब्रज में प्रचलित रोचक लोक-कहानियों का वैज्ञानिक वर्गीकरण-पद्धति पर सङ्कलन, भूमिका, आवश्यक टिप्पणियाँ तथा उपयोगी शब्द-कोष सहित अपने विषय की सर्वप्रथम पुस्तक, रङ्गीन आवरण, डिमाई साइज, पृष्ठ सं० १०+१८७। सजिल्द, मूल्य ३।)

२. ब्रज लोक-संस्कृति [सचित्र]–(सम्पादक डा० सत्येन्द्र)

ब्रज साहित्य मण्डल द्वारा आयोजित लोक-शिक्षण-शिविर में अधिकार विद्वानों द्वारा ब्रजभाषा-साहित्य, कला, संगीत, इतिहास और लोक-वार्ता पर दिए गये भाषणों का सङ्कलन। आर्ट पेपर पर छपे ३० चित्रों सहित, डिमाई साइज, पृष्ठ संख्या २२७। सजिल्द, मूल्य केवल ४)

३. पोद्दार अभिनंदन ग्रन्थ–(प्रधान सम्पादक डा० वासुदेव शरण अग्रवाल)

सेठ कन्हैयालाल जी पोद्दार के सम्मान में जनपद के बहुमुखी अङ्गों पर ८० से अधिक विद्वानों के लेखों का संग्रह। यह ग्रंथ ब्रजभाषा साहित्य एवं संस्कृति के विश्व-कोश के रूप में कई वर्षों के परिश्रम से तैयार किया गया है। सुपर रायल साइज में चिकने कागज पर मुद्रित सैकड़ों चित्रों सहित, पृष्ठ संख्या ११५४। मूल्य ३०)

४. ब्रज का इतिहास–(श्री कृष्ण दत्त बाजपेयी)

यह ब्रज का प्रथम प्रमाणिक विस्तृत इतिहास है, जिसमें ब्रज का भौगोलिक एवं प्राकृतिक विवरण, ब्रज के इतिहास की सामग्री, शूरसेन प्रदेश तथा श्रीकृष्ण के समय से लेकर आज तक का ब्रज का क्रमबद्ध इतिहास अनेक मानचित्रों सहित दिया गया है। ब्रज का पूरा परिचय जानने वालों के लिए ग्रन्थ अत्यंत उपयोगी है। डिमाई साइज, पृष्ठ २९०। मू० ५)

५. श्री कृष्ण जन्म-स्थान का इतिहास–(श्री कृष्णदत्त वाजपेयी) मूल्य≡)

६. ब्रज का लोक साहित्य–(डा० सत्येन्द्र)

ब्रज के लोक-साहित्य का प्रथम व्यवस्थित संकलन, सुपर रायल साइज, पृ० १५२। मू०५)

७. ब्रज भारती–(सम्पादक श्री वृन्दावनदास)

ब्रज साहित्य मण्डल की त्रैमासिक शोध-पत्रिका। वार्षिक मूल्य ३) मात्र, एक प्रति ।।।)

विशेष :—केवल ५) वार्षिक देकर ब्रज साहित्य मण्डल के सक्रिय सदस्य बनने वालों को 'मण्डल' द्वारा सभी प्रकाशित ग्रन्थ पौन मूल्य में ही प्राप्त होते हैं तथा 'ब्रजभारती' निःशुल्क मिलती है।

उक्त तथा ब्रजभाषा सम्बन्धी अन्य सभी प्रकार के साहित्य के लिए निम्न पते पर पत्र व्यवहार करें :–

प्रकाशन मन्त्री, अ० भा० ब्रज साहित्य मण्डल, मथुरा।

१-हमारे जवानों के शौर्य ने शत्रु के मनसूबे धूल में मिला दिए।

२-हमारे यहाँ बने हथियारों के सामने अमरीकी हथियार कामयाब न हो सके।

३-हमें अपने को अन्नोत्पादन में भी आत्म निर्भर होना है।

४-अमरीका या अन्य देशों का मुँह ताकना धोखा दे सकता है।

देश का हर व्यक्ति राष्ट्र की इस सबसे बड़ी समस्या में अपना योग दे सकता है। जिला सहकारी बैङ्क में अपना धन आप जमा करें जहाँ वह पूर्ण सुरक्षित है, ब्याज दूसरे बैङ्कों से आपको ज्यादा मिलेगा और किसानों के अन्नोत्पादन के कार्य में आपके धन का उपयोग होगा।

जिला निवासियों के लिये हमारी शुभ कामनाओं के साथ हम आशा भी करते हैं कि आप अपने ही सहकारी बैंक को अपनाकर अपना तथा इस बैंक का और अपने राष्ट्र का सदैव हित करेंगे।

ब्याज की दरें

सेविंग खाता पर	४	प्रतिशत	वार्षिक
कौल डिपौजिट पर	३।।।	,,	,,
६ माह की अमानत पर	५।।	,,	,,
१ साल की अमानत पर	६।	,,	,,
२ साल की अमानत पर	६।।	,,	,,
३ साल की अमानत पर	६।।।	,,	,,
४ साल की अमानत पर	७	,,	,,
५ साल की अमानत पर	७।	,,	,,
७ साल की अमानत पर	७।।	,,	,,

मथुरा जिला सहकारी बैंक लि०, मथुरा

अपनी सम्पूर्ण बचत आज ही

उत्तर प्रदेश कोआपरेटिव बैंक लिमिटेड

प्रधान कार्यालय लखनऊ में

जमा कर अपनी आर्थिक स्थिति सुदृढ़ कीजिये

उक्त बैंक सहकारी आन्दोलन के अन्तर्गत सरकारी साझेदारी तथा बैंकिंग संस्थान अधिनियम के अन्तर्गत सरकार द्वारा निरीक्षित एक मात्र एवं विश्वसनीय बैंकिंग संस्था है

शाखाएँ— आगरा, अलमोड़ा, बरेली, फैजाबाद, डी० ए० वी० कालेज कानपुर, गोंडा, पीलीभीत, कानपुर, रामपुर, सीतापुर, वाराणसी।

क्षेत्रीय कार्यालय— आगरा, गोरखपुर, कानपुर, बरेली।

हमारी विशेषताएँ

१—राज्य की समस्त कृषि योजनाओं के लिए जिला एवं केन्द्रीय सहकारी बैंकों के माध्यम से आर्थिक सुविधाएँ प्रदान करना।

२—प्रत्येक प्रकार की बैंकिंग सुविधायें प्रदान करना।

३—अल्प सामयिक एवं मियादी अमानतें आकर्षक दरों पर स्वीकार करना।

आप भी राष्ट्र निर्माण योजनाओं की पूर्ति, उसकी समृद्धि के निमित्त अपना धन लगाकर सहयोग प्रदान कर राष्ट्र निर्माण में हाथ बटाएँ।

अन्य जानकारी

क्षेत्रीय अधिकारी, शाखा प्रबन्धक या मुख्य कार्यालय से प्राप्त कीजिये

गत ५ वर्षों में बैंक की प्रगति के कुछ आंकड़े

	३०–६–६०	३०–६–६५
१—पूँजी	२५४·७६ लाख	५३८·७६ लाख
२—अमानतें	७४७·४६ लाख	२०६०·०८ लाख
३—सहकारी संस्थाओं को ऋण दिया गया	१३०५·६५ लाख	३३३६·२५ लाख
४—लाभ	१६·०५ लाख	३७·०२ लाख

गङ्गासिंह चूड़ामणि
आई० ए० एस०
अध्यक्ष

रोशनलाल शुक्ल
उपाध्यक्ष

ए० आर० खान
सामान्य प्रबन्धक

फोन नं० २४८५४ तार : मार्कफेड

उत्तर प्रदेश कोआपरेटिव फैडरेशन लि०,

(स्थापित : १९४३)

प्रधान कार्यालय:– ६ कैंपर रोड, लखनऊ

शाखायें:–बम्बई, कलकत्ता, धनवाद, कानपुर, हापुड़, आगरा, हाथरस, बाँदा, वाराणसी, कालपी।

राज्य की सहकारी क्रय-विक्रय समितियों एवं जिला सहकारी संघों की शीर्षस्थ संस्था

कारोबारी पूँजी—	रु० ४·३५ करोड़
निजी पूँजी—	रु० १·९८ करोड़
वर्ष १९६४-६५ में किया व्यवसाय-	रु० १४ करोड़ से अधिक

मुख्य व्यवसाय–

- ★ खाद्यान्न, कृषि-उपज, गुड़, खाँडसारी, जूट, पटसन आदि।
- ★ रासायनिक उर्वरक, उन्नतिशील बीज एवं कृषि-यन्त्र।
- ★ सहकारी भट्टों हेतु कोयला प्रदान।
- ★ रोजिन तथा टरपेन्टाइन के निर्माता।
- ★ विशुद्ध आयुर्वेदिक दवाओं के निर्माता।

दूसरे प्रदेशों की दालें, खाँडसारी, गुड़, सरसों का तेल, तिलहन तथा अन्य कृषि उपज के निर्यात हेतु एवं हमारे औषधि निर्माणशाला द्वारा निर्मित आयुर्वेदिक व अन्य पेटेन्ट दवाओं की बिक्री एजेन्सी के लिए सम्पर्क स्थापित कीजिए।

जी० एस० चूड़ामणि आई. ए. एस.	**वीरपालसिंह**	**ओमप्रकाश शर्मा**
अध्यक्ष	उपाध्यक्ष	मन्त्री

मथुरा जिला परिषद्

अपने पूज्य स्वर्गीय प्रधान मंत्री श्री लालबहादुर शास्त्री

को श्रद्धाञ्जलि अर्पित करती है तथा उनके राष्ट्रीय नारे

जय जवान जय किसान

के परिपालनार्थ संकल्प करती है कि :—

देश की खाद्य समस्या के समाधान हेतु

१—लघु सिंचाई योजनाओं द्वारा चप्पा-चप्पा भूमि को सिंचित करके दो फसली व तीन फसली बनायेंगे।

२—गोबर, कूड़े, पत्ते आदि की खाद बनाकर रसायनिक खाद की कमी को दूर कर उन्नतिशील कृषि यन्त्रों को अपनाकर अच्छे बीज प्रयोग कर, कीट नाशक दवाओं से फसलों की रक्षा कर अधिक अन्न उपलब्ध करायेंगे।

३—मत्स्य पालन, कुक्कुट पालन द्वारा सीमा पर लड़ने वाले जवानों को पौष्टिक आहार उपलब्ध करायेंगे।

४—सप्ताह में एक दिन व्रत रक्खेंगे।

सुरक्षा व समृद्धि हेतु

१—परिवार नियोजन के साधनों को अपनायेंगे।

२—राष्ट्रीय सुरक्षा प्रमाण-पत्रों पर धन लगायेंगे तथा राष्ट्रीय सुरक्षा कोष में गल्ला देकर जवानों का मनोबल बढ़ायेंगे।

शिक्षा व जन कल्याण हेतु

१—सभी बाल-बालिकाओं को शिक्षा प्राप्त हेतु पाठशाला भेजेंगे।

२—आवागमन के साधनों के सुधार के हेतु ब्रजयात्रा-मार्गों एवम् अन्य ग्रामीण मार्गों का निर्माण करेंगे।

बृजमोहन सिंह
मुख्य अधिकारी
जिला परिषद्, मथुरा।

चकलेश्वर सिंह
अध्यक्ष
जिला परिषद्, मथुरा।

मुद्रक तथा प्रकाशक : श्री किशन प्रसाद जैन, संयुक्त मन्त्री, अखिल भारतीय ब्रज साहित्य मण्डल, मथुरा के लिए राष्ट्रीय प्रेस, डैम्पियर नगर, मथुरा में मुद्रित।

ब्रजभारती

मार्गशीर्ष सं० २०२३ वि०

ब्रज साहित्य मंडल
प्रधान कार्यालय मथुरा

सम्पादक :
वृन्दावन दास
बी० ए०, एल-एल० बी०

प्रकाशक :
किशन प्रसाद जैन
संयुक्त प्रधान मन्त्री

अखिल भारतीय ब्रज साहित्य मंडल, मथुरा

वर्ष २०] [अङ्क ३

* अनुक्रमणिका *

क्र० सं० लेख लेखक पृष्ठ सं०
१—श्री कृष्ण अवतार [कविता] ... भक्त सूरदास जी १
२—सम्पादकीय ... श्री वृन्दावनदास २
३—महान निर्माता श्री बनारसीदास चतुर्वेदी ... ,, राजेन्द्र रञ्जन एम० ए० ६
४—ग्वाल-नवनीत जयन्ती ... ,, जुगलकिशोर चतुर्वेदी ८
५—ब्रज प्रदेश के लोक गीतों में राष्ट्रीय चेतना ,, श्रीराम शर्मा एम० ए० ९
६—हिन्दी की उत्पत्ति और उसका विकास ... ,, वृन्दावनदास १३
७—क्या सिख गुरुओं की भाषा पञ्जाबी थी ? ... ,, रामेश्वर उपाध्याय १७
८—भक्तवर सूरदास [कविता] ... ,, भगवानदत्त चतुर्वेदी १९
९—करवा चौथ ... ,, उमाशंकर दीक्षित एम.ए.२०
१०—भक्त कवयित्री बेगम ताज ... ,, भगवानदत्त चतुर्वेदी २१
११—पुष्यभूतिवंशीय सम्राट हर्षवर्धन ... ,, वृन्दावनदास २२
१२—ब्रजभाषा और राष्ट्रभाषा ... पद्मश्री डा० हरिशंकर शर्मा २८
१३—स्याम बिना सीत [कविता] ... श्री मोहनलाल शर्मा एम ए. २९
१४—प्रागैतिहासिक काल के कुछ ऐतिहासिक तत्व... ,, वृन्दावनदास ३०
१५—ब्रज का सांस्कृतिक पर्व गुरु पूर्णिमा ... ,, शर्मनलाल अग्रवाल ३३
१६—पुस्तक समीक्षा ... ,, राजेन्द्र रञ्जन एम० ए० ३६
१७—ब्रजभाषा में कृषि सम्बन्धी शब्द ... ,, ज्यो० राधेश्याम द्विवेदी ३७
१८—पुस्तक समीक्षा ... ,, राजेन्द्रकुमार पाठक ४०
१९—हिन्दी का गीत काव्य और विद्यापति के पद ... ,, जीवन प्रकाश जोशी ४१
२०—महाकवि ग्वाल और नवनीत ... ,, भगवान सहाय पचौरी 'भवेश' एम० ए० ४५

ब्रजभारती

[अखिल भारतीय ब्रज-साहित्य-मण्डल की मुख-पत्रिका]

वर्ष २०] मथुरा मार्गशीर्ष सं० २०२३ [अङ्क ३

श्री कृष्ण अवतार

(सूरदास)

नित्य-अखंड-अनूप अनागति, अविगत अनघ अनन्त ।
जाकौ आदि कोऊ नहिं जानत, कोऊ न पावत अन्त ।।
जब हरिलीला की सुधि कीन्ही, प्रगट करन विस्तार ।
श्री वृषभान रूप ह्वै प्रगटे, दीनौं तिमिर विदार ।।
पुन बसुदेव-देवकी कहियत, पहिले हरि बर पायौ ।
पूरन भाग्य आय हरि प्रगटे, जदुकुल ताप नसायौ ।।

(सूर सारावली)

* * *

सम्पादकीय

यह कहना कि ब्रजभाषा और हिन्दी (खड़ी बोली) की कुछ प्रतिस्पर्द्धा है अथवा यह डींग मारना कि खड़ी बोली ने ब्रजभाषा को अपदस्थ कर दिया है नितान्त भ्रममूलक है। इससे हिन्दी का अहित होता है। खड़ी बोली अथवा हिन्दी की जननी ब्रजभाषा है। हिन्दी का प्रधान साहित्य ब्रजभाषा साहित्य ही है। वह ही हिन्दी साहित्य का महत्वपूर्ण अङ्ग है। एक प्रकार से ब्रज भाषा साहित्य ही हिन्दी का मुख्य साहित्य है। ब्रजभाषा का उत्कृष्ट साहित्य पुरातन है। वह पुरातन होते हुए भी शाश्वत है। उसके निर्माता सूर, तुलसी आदि यावच्चन्द्रदिवाकरौ अमर हैं। हमें अपने गौरव और संस्कृति की रक्षार्थ पुरातन सामग्री का न केवल सम्मान करना है वरन् उसका संरक्षण भी करना है। यदि हम उसकी उपेक्षा अथवा निरादर करेंगे तो हमारी सांस्कृतिक परम्पराऐं और आदर्श ही क्या शेष रह जायेंगे।

कुछ लोग ब्रजभाषा के रीतिकालीन साहित्य को लेकर ब्रजभाषा साहित्य की यह कहकर निन्दा करते हैं कि इसमें नारी को अपमानित किया गया है, यह साहित्य विलासिता प्रधान हैं, इसने जनता को विलासी, अकर्मण्य बनाया, यह हमारी अवनति और दासता का मुख्य कारण रहा। ये आरोप निराधार हैं। विलासिता मानव मन की दुर्बलता है, साहित्य को कोसने से यह दूर नहीं हो सकती है। प्रकृति जन्य अवश्याभावी दोषों और दुर्बलताओं को उचित मोड़ देना साहित्य का कार्य है। हमें उसके कृष्णपक्ष की उपेक्षा कर धवलाङ्ग का अवलोकन करना चाहिये। रीतिकालीन साहित्य शृंगार प्रधान तो था परन्तु उसमें भाषा का परिमार्जन हुआ, काव्य का निरूपण हुआ और उच्च कोटि के साहित्य का निर्माण हुआ।

ब्रजभाषा केवल जनपदीय भाषा नहीं है वह तो साहित्य की भाषा है। जैसा ऊपर निवेदन कर चुके हैं उसमें तो हिन्दी का साहित्य विद्यमान है। ब्रजभाषा रूपी सरिता का प्रवाह अब भी अवरुद्ध नहीं है। इस युग में भी ब्रजभाषा में उच्चकोटि के ग्रन्थ लिखे गये हैं। हमें ब्रजभाषा साहित्य की दीपशिखा प्रज्वलित रखनी है, उसकी सरिता के पुण्यमय प्रवाह को अबाध रखना है। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि हम हिन्दी संवर्द्धन के प्रति विमुख हो जाँय। हिन्दी के प्रति अपने औचित्य का पालन तो हमें करना ही है। अनेक कारणों से हिन्दी अब समस्त देश की सम्पर्क भाषा बन चुकी है। उसके इस अविकल सामर्थ्य में किसी को सन्देह करने की गुंज़ाइश नहीं है। इस विषय में हम पाठकों की विस्तृत जानकारी के लिये १६ दिसम्बर के राष्ट्र भाषा सन्दश से निम्नलिखित सम्पादकीय टिप्पणी उद्धृत करना उपयोगी समझते हैं।

हिन्दी में स्वरूप और शक्ति पर सन्देह क्यों ?

परराष्ट्र मन्त्री श्री मुहम्मद करीम छागला ने दिल्ली में भारतीय भाषा समिति की प्रथम बैठक का उद्घाटन करते हुए कहा कि हिन्दी तभी इस देश की सम्पर्क भाषा हो सकती है जब अहिन्दी भाषी जनता भी अपनी रचनाओं द्वारा इसकी समृद्धि में योगदान करे। उन्होंने यह भी

कहा कि हिन्दी को सम्पर्क भाषा का स्थान ग्रहण करने के लिए एक मिली-जुली (मिश्रित) भाषा बनाना होगा। भारत की राष्ट्र भाषा हिन्दी हो, इस सम्बन्ध में श्री छागला के मन में कभी कोई सन्देह नहीं रहा और न आज ही है, किन्तु वे हिन्दी की शक्ति-सामर्थ्य और उसके स्वरूप के सम्बन्ध में सदैव ही शंकालु रहे हैं। यही कारण है कि हिन्दी की प्रकृति और उसके स्वरूप के प्रति उनके विचार संदिग्ध हैं। हिन्दी को राष्ट्रभाषा इसीलिये स्वीकार किया गया था कि वह एक ऐसी भाषा है, जो सर्वाधिक रूप से सम्पूर्ण भारत का प्रतिनिधित्व कर सकती है। मूलत: संस्कृत भाषा पर आधारित होने के कारण वह सभी राज्यों की भाषाओं के निकट पहुँच सकी है और प्रारम्भ से ही समस्त भारत की जनता के सम्पर्क का एकमात्र साधन होने के कारण उसमें समस्त भारत की अभिव्यक्ति की सामर्थ्य निहित हो गयी है। हिन्दी की ग्राहकता शक्ति, उसकी प्रकृति और शब्द निर्माण का उसका आधार इतना व्यापक और सर्वग्राही है कि उसके सम्बन्ध में एकांगी भाव या संकुचित प्रवृत्ति का आरोप टिक नहीं सकता। सच पूछा जाय तो राजनीतिक या प्रशासकीय रूप में हिन्दी को कोई सहारा न प्राप्त होने पर भी वह अपनी सहज और सरल प्रकृति तथा सर्वग्राही स्वरूप के बल पर ही सारे देश में फैलती रही। और यदि उसे सभी क्षेत्रों में प्रवेश करने का अवसर दिया जाय तो उसका स्वरूप अधिकाधिक व्यापक और अखिल भारतीय अभिव्यक्ति के लिये नितान्त उपयुक्त रूप से ही विकसित होगा।

श्री छागला के इस मत से हम सहमत है कि जब अहिन्दी भाषी जनता भी अपनी रचनाओं द्वारा हिन्दी के भण्डार में वृद्धि करेंगी तो हिन्दी का सच्चा स्वरूप निखरेगा। किन्तु उस स्वरूप का निर्माण तो तभी होगा, जब अहिन्दी भाषी क्षेत्रों में व्यापक रूप से हिन्दी को अपनाया जायगा और सभी क्षेत्रों में हिन्दी का व्यवहार होने लगेगा। राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी के व्यवहारत: प्रतिष्ठित हो जाने के पश्चात् उसके जिस स्वरूप का निर्माण होगा, उस स्वरूप के प्रति उसके व्यवहार में उतरने के पहले ही कल्पना करना उचित नहीं लगता।

यह बड़े आश्चर्य की बात है कि हिन्दी के प्रश्न पर देश के अनेक उच्चकोटि के विद्वानों के मन में भी अस्वाभाविक और उल्टी बातें भरी हुई हैं। श्री छागला ने हिन्दी को सम्पर्क भाषा की योग्यता प्रदान करने के लिए जो मिश्रित भाषा बनाने का सुझाव दिया है, हम नहीं जानते कि मिश्रित भाषा से श्री छागला का क्या तात्पर्य हैं? फिर प्रश्न यह उठता है कि क्या देश की राष्ट्र भाषा ऐसी हिन्दी होगी, जिसे देश के नेता लोग बनाकर तैयार करेंगे और शायद यह मिश्रित भाषा के नाम से पुकारी जायगी। किस अर्थ में श्री छागला हिन्दी को मिश्रित बनाना चाहते हैं और क्या वे या उनकी सरकार हिन्दी को अपनी इच्छा के अनुसार मिश्रित भाषा का रूप दे सकती है? किसी भाषा के सम्बन्ध में उसके भावी विकास या स्वरूप के सम्बन्ध में इस प्रकार की बात करना कितना अवैज्ञानिक है यह भाषा विज्ञान के विद्वान ही बता सकते हैं। भाषा वैज्ञानियों का तो कहना है कि हिन्दी मिश्रित भाषा है ही और संस्कृत के शब्दों के कारण तो वह अखिल भारतीय स्वरूप को प्राप्त हो गई है। फिर श्री छागला के मन में किस प्रकार के मिश्रण की भावना है, यह बात स्पष्ट नहीं होती। जहाँ तक अहिन्दी भाषी राज्यों के प्रभाव की बात है, वह तो हिन्दी के व्यवहार में आ जाने पर बिना किसी प्रकार के प्रयत्न के घटित होने वाली प्रक्रिया है, उसकी चिन्ता क्यों करनी चाहिए? हिन्दी संकृत से पैदा हुई है और उसी के आधार पर उसके स्वरूप विकास की सम्पूर्ण भित्ति खड़ी

हुई है और आगे भी यहीं प्रक्रिया होती रहेगी। अपनी संस्कृत बहुल शब्दावली के कारण ही वह अहिन्दी भाषी राज्यों की भाषाओं और वहाँ की जनता के समीप पहुंची है। साथ ही वह फारसी, अरबी, अंग्रेजी, पुर्तगाली आदि ऐसी सभी भाषाओं के उन्मुक्त भाव से शब्द ग्रहण करती रही है जो उसके समीप पहुँचती हैं। आगे भी हिन्दी किसी भी भाषा से शब्द ले लेने में हिचकिचाहट नहीं बरतेगी, ऐसी उसकी प्रकृति है। फिर अन्य प्रान्तीय भाषाओं के सहयोग या उनसे शब्द भाव, शैली आदि के प्रभाव-ग्रहण के क्षेत्र में तो हिन्दी आगे बढ़ रही है और निरन्तर बढ़ती रहेगी। किन्तु यह सब तभी हो सकता है जब हिन्दी को उन्मुक्त भाव से सभी क्षेत्रों में व्यवहारतः प्रतिष्ठित किया जाय।

हिन्दी के स्वरूप और सामर्थ्य पर राष्ट्र भाषा सन्देश के सम्पादक का उपरोक्त विश्लेषण अत्यन्त विद्वत्तापूर्ण है। इसमें प्रस्तुत किए गए तथ्य अकाट्य हैं।

दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा

यह सभा दक्षिण भारत में हिन्दी प्रचार का बड़ा स्तुत्य कार्य कर रही है। सभा के प्रधानमन्त्री श्री जी० सुब्रमणियम एक बहुत ही कर्मठ और कर्त्तव्यनिष्ठ व्यक्ति हैं। इस सभा की गतिविधियों को जो सफलता मिली है उसका मुख्य कारण है कार्योंका नियमों के अनुसार संचालना सभा द्वारा दो पत्रिकायें भी प्रकाशित की जाती हैं उनके नाम हैं हिन्दी प्रचार समाचार और हिन्दी पत्रिका। इन पत्रिकाओं में सभा की गतिविधियों का लेखा-जोखा संक्षिप्त रूप से निकलता रहता है। पत्रिकाओं में प्रकाशित विवरण से ज्ञात होताहै कि सभा ने समस्त दक्षिण भारत में हिन्दी प्रचार आन्दोलन का एक जाल जा बिछा रक्खा है जिसके द्वारा हिन्दी प्रचार की सर्वाङ्गीण उन्नति हुई है। सभा ने अनेक साधनों के माध्यम से दक्षिण भारत में हिन्दी प्रचार कार्य को अग्रसर किया है। राष्ट्र भाषा प्रवीण' और 'राष्ट्र भाषा विशारद' आदि परीक्षायें भी सभा द्वारा संचालित हैं।

सभा के कार्यों से प्रभावित होकर इन पंक्तियों के लेखक ने भी सभा के हिन्दी प्रचार आन्दोलन में अपना योगदान देने की योजना बनाई। इस योजना के अनुसार प्रति वर्ष सभा द्वारा राज्यस्तर पर एक हिन्दी निबन्ध प्रतियोगिता आयोजित की जायगी जिसमें सर्वश्रेष्ठ दो निबन्धों पर प्रथम व द्वितीय पुरस्कार दिए जायेंगे। यह योजना इन पंक्तियों के लेखक ने अपने निजी दृव्य से संचालित की है। हर्ष है कि सन् १९६६ के वर्ष की प्रतियोगिता बड़े सुचारु रूप से सम्पन्न हो गई और सभा के २९ दिसम्बर के वार्षिक पदवीदान समारोह में विजेता को पुरस्कार भी प्रदान कर दिया गया। योजना को विधिपूर्वक कार्यान्वित करने के लिए मैं सभा और उसके प्रधानमन्त्री श्री जी० सुब्रमणीयम को हार्दिक धन्यवाद देता हूँ। आशा है सभा इसी मनोयोग से भविष्य में भी इस योजना का कार्यान्वयन करती रहेगी।

हिन्दी-भवन-निर्माण योजना

हिन्दी साहित्य के इतिहासज्ञ वर्तमान हिन्दी के स्वरूप का आदि काल सातवीं शताब्दी से लगाते हैं। अंग्रेजी भाषा का आरम्भ भी सातवीं सदी से हुआ बताया जाता है। उपरोक्त दोनों

भाषाओं का आरम्भ जब लगभग एक ही समय से होता है तो क्या कारण है कि एक भाषा तो विश्वप्रचलित हो गई और एक का उसके अपने देश में भी अभी ठौर-ठिकाना नहीं है। यह बात निर्विवाद है कि अंग्रेजी भाषा के अनेकों गुण और उसका समृद्ध साहित्य उसको विश्ववन्द्य बनाने में सहायक हुए। परन्तु प्रश्न यह उठता है कि हिन्दी में ऐसी कौन-सी कमी है जिसके कारण उसे अंग्रेजी जैसा सौभाग्य प्राप्त न हुआ। हिन्दी भाषा सरल है, सुबोध है और संस्कृत भाषा पर आधारित होने के कारण उसमें असीम अभिव्यक्ति की क्षमता निहित है। उसकी सर्वग्राही प्रकृति ने उसमें अनेक भाषाओं के शब्दों का समावेश करा कर उसे व्यापक भाषा बनने का स्वरूप प्रदान कर दिया है। उसकी लिपि की सरलता और सुन्दरता विश्व की समस्त भाषाओं में अप्रतिम हैं। इन सब तथा प्रसाद, माधुर्य आदि अनेक गुणों से युक्त होते हुए भी हिन्दी अंग्रेजी के सदृश लोकप्रियता प्राप्त न कर सकी इसमें हिन्दी का नहीं हमारा दोष है। हम अपनी मातृभाषा के प्रति कर्तव्य परायण नहीं रहे हैं। हमारे धनी मानी व्यक्तियों ने मन्दिर देवालय धर्मशाला आदि अनेकों धार्मिक और सांस्कृतिक महत्व की वस्तुओं पर तो असंख्य धन राशि व्यय की है और आज भी कर रहे हैं परन्तु यह देखने में आया है कि मातृभाषा का पक्ष सदैव आर्थिक अभाव से क्षतिग्रस्त रहा है। यहां हम बिड़ला बन्धुओं से कुछ विशेष निवेदन करेंगे। धार्मिक पुनरुत्थान और सांस्कृतिक चेतना के प्रति उन्होंने जो योगदान किया है वह भारत के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखे जाने योग्य है। उन्होंने देश के विभिन्न भागों में निर्माण कार्य किए हैं। उनकी तुलना भारतीय इतिहास के महानतम निर्माताओं जैसे चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य, वीरसिंहदेव, राजा मानसिंह आदि की कृतियों से की जा सकती है। उनसे हमारा अनुरोध है कि वे अब हिन्दी की ओर अपनी उदारता और निर्माण शक्ति का हाथ बढ़ावें। हमारा विश्वास है कि हिन्दी में वे गुण विद्यमान है जो उसे अंग्रेजी की भाँति विश्व में प्रसिद्ध एवं लोकप्रिय बना सकते हैं।

इस सम्बन्ध में हमारा सुझाव है कि विश्व के प्रधान नगरों में हिन्दी भवन बनाये जायें। प्रत्येक भवन में हिन्दी का पुस्तकालय और वाचनालय हो। यदि रात्रि-कक्षाओं के द्वारा वहाँ हिन्दी की शिक्षा का भी प्रबन्ध हो जाय तो देखिए कितने लोग हिन्दी के प्रति आकर्षित होते हैं। सर्वप्रथम कुछ नगरों में ही इस प्रकार की व्यवस्था की जाय। हम अपनी योजना के प्रति बिड़ला बन्धुओं,देश के अन्य धनी मानी सज्जनों तथा केन्द्रीय सरकार का ध्यान आकर्षित करते हैं।

प्राचीनकाल में हमारा दृष्टिकोण दिग्विजयी होता था। अति प्राचीनकाल में हमने अपने धर्म और संस्कृति की पताका विदेशों में फहराई थी। इतिहास साक्षी है कि शताब्दियों तक भारतीय साम्राज्य मध्य एशिया से लेकर बर्मा, लङ्का और इन्डोनेशिया तथा मलाया प्रायदीप तक फैला हुआ था। हमारा प्रभाव और व्यावसायिक सम्बन्ध सुदूर देश रोम और निकटवर्ती मिश्र से था। अशोक का धर्म विजय एक प्रकार से भारतीय संस्कृति का दिग्विजय था। अशोक के धर्म प्रचारक अफगानिस्तान, फारस, चीन और जापान तक पहुँचे थे। भारत का प्राचीन दिग्विजयी दृष्टिकोण न केवल धार्मिक और सांस्कृतिक प्रचार में सहायक होता था वरन् उससे बढ़ती हुई जनसंख्या आदि अनेकों समस्याओं का समाधान भी होता था। आज के युग में इस प्रकार के दृष्टिकोण को राजनीतिक दृष्टि से भले ही साम्राज्यवाद का एक स्वरूप कह दिया जाय परन्तु धार्मिक अथवा

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सांस्कृतिक प्रचार के लिए तो कोई बाधा हो ही नहीं सकती । इस प्रकार की योजनायें जनकल्याण के लिए होती हैं । उनका जनकल्याण की दृष्टि से अन्तर्राष्ट्रीय महत्व है । हिन्दी-भवन निर्माण योजना का भी जनहित की दृष्टि से महत्व विश्वव्यापी है । हमें आशा है कि धनीमानी लोग इस ओर ध्यान देकर अपने औचित्य का पालन करेंगे ।

हिन्दी सम्बर्द्धिनी योजना

हमें प्रसन्नता है कि हमारे अनेक साहित्यिक बन्धुओं ने हमें इस योजना के प्रति अपना साधुवाद भेजा है । हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष पद्मश्री डा० हरिशङ्कर जी शर्मा ने 'ब्रज-भाषा और राष्ट्रभाषा' शीर्षक एक लेख पत्र रूप में हमें भेजा है । हम उसे अविकल रूप से अन्यत्र इसी अङ्क में प्रकाशित कर रहे हैं । लेख अत्यन्त शोध एवं पाण्डित्य पूर्ण है ; मित्रवर ज्योतिषी राधेश्यामजी द्विवेदी ने भी एक सुन्दर लेख इस योजना के अतर्गत लिखा है । वह कृषि संबंधी विभिन्न यन्त्रों, उपकरणों आदि की शब्दावली से सम्बन्धित है । उपरोक्त दोनों लेख बड़े महत्वपूर्ण एवं उपयोगी हैं ।

चतुर्वेदी जी की ७५ वीं वर्षगाँठ

हम इस अवसर पर आदरणीय पं० बनारसीदास जी चतुर्वेदी को हार्दिक बधाई देते हैं । वे आधुनिक हिन्दी के महाद् निर्माताओं में से एक हैं । हिन्दी के प्रति उनकी दीर्घकालीन सेवायें अविस्मरणीय हैं । हम उन पर अपने मित्र की राजेन्द्ररंजन द्वारा लिखित एक लेख इसी अङ्क में छाप रहे हैं ।

—बृन्दावनदास

——

७५ वीं वर्ष जयन्ती के अवसर पर

महान निर्माता श्री बनारसी दास चतुर्वेदी

(राजेन्द्र रन्जन, एम० ए०)

आदर्श पत्रकार, सुविख्यात साहित्यकार एवं महान् निर्माता श्री बनारसीदास चतुर्वेदी उपनिषद् के 'चरैवेति चरैवेति सिद्धान्त' के साकार प्रतीक हैं । श्री चतुर्वेदी जी ने जब से अपने सार्वजनिक जीवन का आरम्भ किया है तभी से वे अपनी मौलिक सूझ-बूझ और चिन्तना के आधार पर सत्सङ्कल्प-पूर्वक निर्माण करते रहे हैं । देश के विभिन्न भागों में साहित्यिक और सांस्कृतिक वातावरण का पुनर्निर्माण आपही का कार्य है, इसके लिए आप साहित्यिकों को सतत प्रेरणा देते रहते

हैं। साहित्य जगत में जहाँ उन्होंने किसी बात की न्यूनता देखी, साहित्यकारों का दृष्टि विन्दु उस ओर आकृष्ट किया और उसे पूरा करने के लिए लिए चेष्टा की। 'हिन्दी भवन' तथा ब्रजसाहित्य-मन्डल उनके इसी कार्य के प्रतीक हैं। अ० भा० ब्रज साहित्य मन्डल के निर्माण के सपने पहले उन्हीं की आँखों में घूमे थे, दिल्ली में सांस्कृतिक वातावरण के लिए हिन्दी भवन की आवश्यकता पहले आप ही ने अनुभव की थी। इस प्रकार न जाने कितनी संस्थाओं के जन्म के मूल में चतुर्वेदीजी की प्रेरणा रही है। आज ७५ वर्ष की आयु में भी आप कितने व्यस्त और सचेष्ट हैं, देख कर विस्मय होता है।

श्री बनारसी दास चतुर्वेदी की साहित्य सर्जना के मूल में 'मानव जीवन के लिए साहित्य' का सिद्धान्त निहित है, और यही कारण है कि उनके साहित्य में सजीवता के दर्शन होते हैं। उनके रेखा चित्र में पढ़ने से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि मानव के लिए उनके हृदय में कितना स्थान है, श्री बनारसी दास जी ने जहाँ नव-भारत के निर्माता पं० जवाहर लाल नेहरू, राजेन्द्र प्रसाद दीनबन्धु एण्ड्रूज और शहीद गणेशशङ्कर विद्यार्थी जैसे महामानवों को अपने रेखा-चित्रों का चरित्रनायक बनाया है वहाँ उनके साहित्य में अनेक उपेक्षित पीड़ित और शोषित पात्र अपनी करुण कथा व्यथा कहते परिलक्षित होते हैं।

श्री बनारसी दास चतुर्वेदी की सर्वप्रथम रचना सन् १९१८ ई० में नवजीवन नामक पत्र (काशी) में प्रकाशित हुई थी तभी से आप निरन्तर भारती के भंडार को भरते हैं। उनकी सबसे पहली कृति है 'फिजी में मेरे २१ वर्ष।' यह पुस्तक गुजराती, बङ्गला, मराठी और अंग्रेजी में भी अनूदित की गई। इसके अतिरिक्त आपकी कृतियों में प्रमुख हैं, भारत भक्त एण्ड्रूज, सत्यनारायण कविरत्न, प्रवासी भारत वासी, रेखाचित्र, संस्मरण, हमारे आराध्य, साहित्य और जीवन सेतुबन्ध, मेरी रूस की साहित्यिक यात्रा तथा शहीद ग्रन्थमाला के चौदह ग्रन्थ। पत्र लेख साहित्य तो आपका बहुत विशाल है। महात्मा गांधी, गुरुदेव, रोमारोलाँ सी० एफ० ऐण्ड्रूज, आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी, मुन्शी प्रेमचन्द, गणेशशङ्कर विद्यार्थी, पं० नेहरू आदि अनेक महान व्यक्तियों के पत्र भी सैकड़ों की संख्या में आपके पास सुरक्षित है। मधुकर और विशाल सम्पादक के रूप में भी चतुर्वेदी जी ने जो हिन्दी की सेवा है वह किसी हिन्दी भाषाभाषी से छिपी नहीं। इस क्षेत्रमें आपने हिन्दी को बहुत बड़ा लोकोपयोगी तथा उत्कृष्ट साहित्य ही नहीं दिया अपितु अनेक साहित्यकार भी दिए हैं, जिनके हृदय में आपकी प्रेरणायें ही सतत स्पन्दित होती रहती हैं।

इस प्रकार श्री बनारसी दास चतुर्वेदी ने राष्ट्र और राष्ट्रभाषा की महती सेवा की है। आप सचमुच महान निर्माता और आदर्श पुरुष हैं, आपके विशाल हृदय में मानव-प्रेम, उत्साह तथा करुणा है और यही कारण है कि जिस क्षेत्र में आप जाते हैं स्वतः आपके अनुयायी बनते चले जाते हैं।

ग्वाल-नवनीत जयंती

(ले० श्री जुगल किशोर चतुर्वेदी गोष्ठी मन्त्री)

दिनाङ्क १७-१२-६६ को ब्रज के दो महाकवियों स्व० ग्वाल जी और स्व० श्री नवनीत जी की समवेत जयन्ती श्री हीरालाल धर्मशाला में अखिल भारतीय ब्रज साहित्य मण्डल मथुरा के तत्वावधान में मण्डल के अध्यक्ष और ब्रजभारती-सम्पादक बाबू वृन्दावन दास बी० ए० एल० एल० बी० के सभापतित्व में धूम-धाम से मनाई गई। वह प्रथम अवसर था, जब ब्रज की इन विभूतियों की पुण्य स्मृति में सार्वजनिक समारोह आयोजित किया गया। महाकवियों के सुन्दर चित्रों पर माल्यार्पण के साथ श्री गोपीनाथ जी ने नवनीत विरचित मंगलाचरण का सुन्दर पाठ किया। तरुण लेखक श्री अमरनाथ चतुर्वेदी ने श्री नवनीत जी की जीवन रेखा खींचते हुए उन्हें अपनी श्रद्धांजली अर्पित की। उन्होंने अपने लेख में नवनीत जी के व्यक्तित्व और कृतित्व की झांकी देते हुए उनके स्वभाव, काव्य उत्कर्ष, पांडित्य, कवित्व-शक्ति आदि विविध पहलुओं पर विस्तृत प्रकाश डाला। नवनीत जी ब्रज की विभूति थे। उन्होंने अपने काव्य द्वारा सैकड़ों लेखकों को प्रेरणा और सौहार्द्र दिया। हर्ष है कि उनके योग्य पुत्र श्री गोविन्द चतुर्वेदी और पौत्र भी कवि और साहित्यिक है। गोविन्द तो अपने पितृ तुल्य ही पंडित हैं। इसके पश्चात् ग्वाल-साहित्व के अनुसन्धाता-समालोचक श्री भगवानसहाय पचौरी एम० ए० ने महाकवि ग्वाल और नवनीत जी को अपनी हार्दिक श्रद्धांजली विद्वत्तापूर्ण शब्दों में दी। श्री पचौरी ने आरम्भ में दोनों महाकवियों की सर्वांगीण साहित्यिक तुलना प्रस्तुत की। दोनों के साहित्य की समानताएँ और असमानताएँ दिखाईं। परन्तु मुख्य रूप में उन्होंने ग्वाल जी के साहित्य की अपनी खोजों पर प्रकाश डालते हुए उनके नवोपलब्ध वृहत साहित्य शास्त्रीय ग्रन्थ 'साहित्यानन्द' का विवरण दिया साथ ही उनके अन्य दो नये छोटे ग्रन्थों 'गुरुपचासा' और 'बलवीर विनोद' के मिलने की सूचना दी। ग्वाल के कुल मिलाकर १७ ग्रन्थ प्राप्त हो चुके हैं, जिनमें साहित्यानन्द, रसिकानन्द, भक्तभावन, रसरंग, विनय विनोद, इश्कलहर दरियाव, हमीरहठ वृहद् ग्रन्थ हैं। श्रद्धा सुमन अर्पण होंने के पश्चात् यह सभा ग्वाल-नवनीत के काव्य की पढ़न्तगोष्ठी में परिणत हो गई। पहले सर्व श्री महेश शर्मा, ने अपना सुन्दर गीत गाया। सर्वश्री मुनीश चतुर्वेदी, सव्यसाची, महेन्द्र शर्मा, आत्मानन्द आदि तरुण कवियों ने काव्य पाठ किया। पढ़न्त में प्रमुख भाग लिया सर्व श्री गोविन्द चतुर्वेदी, उनके सुपुत्र, नटवर लाल, कैलाशचन्द्र 'कृष्ण', गोपीनाथ, मिहीलालगुप्त, विष्णुदत्त शर्मा ने। गोष्ठी की पढ़न्त ने श्रोताओं को रसमग्न किया। समारोह ने अन्त में अध्यक्ष पद से बाबू वृन्दावन दास ने इन दोनों कवियों के साहित्य के प्रकाशन की महती आवश्यकता पर सारगर्भित भाषण देते हुए नवनीतजी के साहित्य को स्वयं प्रकाशित करने की घोषणा करके एक बड़ा निर्णय लिया। बाबू जी ने तत्कालीन गोपी प्रेम की गूढ़ विवेचना प्रस्तुत करते हुए रीति कवियों के आध्यात्मिक पक्ष पर विशद प्रकाश डाला। आपने काव्य में जनपदीय शब्दों को अपनाने के अभियान का श्री गणेश किया और ब्रजभाषा साहित्य ने पठन-पाठन पर बल दिया। अन्त में दुग्ध-पान और ताम्बूल के साथ सभा विसर्जित हुई।

ब्रज प्रदेश के लोकगीतों में राष्ट्रीय चेतना

श्री श्रीराम शर्मा, एम. ए., साहित्य रत्न

लोक गीतों के विषय में स्पष्ट रूप से यह कहा जा सकता है कि जनजीवन एवं जनमानस का सही एवं वास्तविक चित्रण इनमें रहता है। भारतीय जनता में अपने देश के गौरव, उसके स्वातन्त्र्य तथा उसके लिए बलिदान करने की मनोवृत्ति बड़ी प्रबल रही है। इसी राष्ट्रीय जागरण के दर्शन हम ब्रज के लोक गीतों में करते हैं।

राष्ट्रीयता का सबसे प्रमुख भाव है अपने देश की आन, बान और शान पर कुर्बान होना। इसी प्रकार का भाव एक लोक गीत में देखिए। एक अपने साथी से प्रस्ताव करता है:—

चलि न्यौछावर करदें भैया, सबु भारत देश हमारे पै ॥
भारत माँ ने जनमु दयौ ऐ।
ग्वाई ने तू बड़ौ कर्यौ ऐ ॥
अरपन करिदें शीश दुधारे पै ॥ १ ॥ चलि न्यों०
शानि न ग्वाकी जामन पावै,
चाहें सीसु अलग है जावै,
इखि टूठे है जाउ एक इसारे पै ॥ २ ॥ चलि०
ना कोई लायौ न लै जाइगौ,
खाली नामु यादि रहि जाइगौ,
मरि मिटि जाऔ रतन हजारे पै ॥ ३ ॥ चलि०
आनि हमारे पुरिखन की ऐ,
ग्वाई पै हिम्मति वाँधि लई ऐ,
गाइ डकरावै आजु लबारे[1] पै ॥ ४ ॥ चलि०

देश की शान पर, हर समय तलवार पर सर रखने के लिए लोक कवि उद्यत हो रहा हैं और अपने पूर्वजों की आन के लिए साहस का परिचय देता पाया जाता है।

एक अन्य लोकगीत में देश की परतन्त्रता पर कुढ़न व्यक्त की गई है और जन साधारण को एक ललकार के साथ आह्वान किया गया है। लोक कवि स्वतन्त्रता के महत्व के प्रति भी जागरूक प्रतीक होता है:—

रोदन करि रही माँ ठाड़ी, मेरी कैदि छुड़इयौ माँ के लाल ॥
ठाड़ी भारत माता रोवैं लाल तुम्हें धिक्कारूँ।
चालीस कोटि करि रहे औ कहा परीर चिक्कारूँ ॥ मेरी० ।१।

---

(१) बछड़ा,

जंजीरन से जकड़ि दई ऊँ दुबलो भई सम्हारौ,
सोइ रहे चों वीर सपूतौ केसरिया तन धारौ । मेरी० ।२।
जब आजादी मोइ मिलैगी ऊपर सीना तानौ,
नहीं तो ठौपर खाँत रहौगे, कोड़ाऊ सन्नातौ । मेरी० ।३।
लिखिवौ, बोलिवौ, चलिवौ, फिरिवौ रोकि दियौ सबु त्यारौ,
अवऊ नींद में भोइ[2] रहे औ करिकें, म्होंड़ा[3] कारौ । मेरी० ।४।

यहाँ पर भारत माँ के द्वारा ही लोककवि ने अपनी पुकार को अङ्कित किया है । अंतिम झड़ में तो उसके पुत्रों पर दास तुल्य नियन्त्रण की टीस व्यक्त की गई है ।

एक अन्य गीत में देश की समृद्धि और उसके प्राचीन इतिहास के गौरव को उन्नत मस्तक हो लोककवि ने अतीत के आलोक का चित्र प्रस्तुत किया है:—

सबकौ रहयौ सदाँ सिरताज, भारत देसु हमारौ प्यारौ । टेक ।
जहँ गंगा जमुना प्यारो,
गोदावरि सरसुति न्यारी ।
चक्करवर्ति भये महाराज, जिनकौ राज जगत में सारौ । १ ।
अर्जुन से भये धनुर्धारी,
जिन विश्व बिजै करि डारी ।
सारे सदाँ जगत के काज, छायौ जस दुनियाँ में भारौ । २ ।
हिमगिरि सौ परवतु राजा,
दुनियाँ ते ऊँचौ साजा ।
राखी दीन दुखिन की लाज, पुरिखनु सदां सदाँ पनु पारौ । ३ ।
दुनियाँ में ऐसौ नाएँ,
दूधन की नदियाँ म्वाँ एँ ।
रक्षा करौ गरीब निवाज, पर चंगुल ते आइ उबारौ । ४ ।

चूँकि हमारे देश में धार्मिक भावनायें ही मूल में बैठी रहती हैं इसीलिए लोककवि यहाँ ईश्वर से प्रार्थना कर रहा है कि उसके देश को सङ्कट से बचायें ।

एक लोककवि पावस ऋतु के प्रसिद्ध लोकगीत 'वारहमासी' के माध्यम से राष्ट्र के प्रति अपने विचारों को अभिव्यक्त करता है । द्वितीय महायुद्ध में हमारी सहायता के परिणाम-स्वरूप भी हमें आजादी न देने पर टीस व्यक्त की गई है:—

चैत में चिंता व्यापि रही अव देश हमारे पै ।
आजादी नाइ दई दुष्ट के कष्ट उबारे पै ।।

---

(२) गलफत में पड़ना, (३) मुख ।

हमारे ज्वान लड़े भारी ।
सात समुन्दर पार दयौ इनकौ संकटु इनकौ टारी ।।
क हिटलरु इनकूँ धरि खाँतौ ।
जौ न पहुंचते वोर हमारे सबै सटकि जाँतौ ।।
वदलि गयौ कामु निकारे पै ।। श्राजादी नाइ दई० ।।
लाग्यौ वैसाख मास डोकरा सब पै फरियादौ ।
घर घर ते देउ वीर लड़ाके जर्मन कूं लादौ ।।
पांइन में टोपु भुकाइ दियौ ।
जब तौ मीठौ बन्यौ मतलबी काम बनाइ लियौ ।। श्राजादी० ।।
जेठ दुपहरी परै नहरि में पानी नाइ श्रावै ।
जो बन, मक्का बऐ रात दिन मुर्झि मुर्झि जावै ।।
क पानी लयौ हमारौ एै ।
देश हमारे की नदि यन कौ लयौ सहारौ ए ।।
क उल्टे पैसा खीचि रहे ।
तऊ बखत पै पानी नाइ टेंटिया मनुकरि भींचि रहे ।
सताइ रहे जानि सम्हारे पै ।। श्राजादी नाइ० ।।

यहाँ अन्तिम पंक्ति में लोककवि नहर, जो कि देश की नदियों से ही निकली हैं, के पानी के कर लेने को वैधानिक चुनौती देता है।

एक अन्य गीत में लोककवि जाति, धर्म आदि के भेद को भुलाकर राष्ट्रीय मन्त्र के लिए भारत माँ के पुत्रों को एक सूत्र में पिरोने का सत्कार्य करता सामने दिखाई दे रहा है:—

चाँदि पै कछू धारि लेउ, भारत माँ के सरदार ।
नामु चाँए कछू पारि लेउ, भइया रहोगे हस्सेदार ।।
धर्म चाहें सिक्ख ईसाई, मुसलमान लेउ धारि ।
बोलिवे में बोलीन के, रूप बनाश्रो नौ हजार ।।
देश के काले सबरे भारती कहाश्रो हल्लेदार ।।
गांधी, जिन्ना चाहें अजीतसिंह सरदार ।
माइ एकई के बेटा जन्मे चाहे उल्ली पल्ली पारि ।
भूलि श्रापुस के झगड़े, दुश्मन कूँ फेंकौ निकारि ।।

यही नहीं कि आपसी मतभेद को राष्ट्र के लिए भूल जाने का सन्देश ही इन गीतों में मिलता है अपितु केसरिया झन्डा लिए प्रत्येक युवक बलवेदी पर अपने शरीर की आहुति देने को आतुर दिखाई दे रहा है:—

लै लेउ केसरिया हाथ सङ्ग में आगे बढ़े चलौ भैया ।
हुंकारौ दैकें दिल्ली पै चढ़ि चलौ लाल गढ़ चढ़वैया ।।
तूफान अगारी आमें, परि माता की लाज नहीं जावै ।
मरि जाइ, मिटि जाँय, लुटें चाहें, मैया पै आंच नहीं आवै ।।
मैया पूतन पै नाज करै ऐसौ जौहर दिखलाइ दु'गो ।
गोली तीरन कूँ फूलन सौ समझूँ दुश्मन दहलाय दु'गो ।
निजदेस लाज के आज काज, गोलीन ते खेली खिलवैया ।
बोलौ जै हर हर महादेव, दुश्मन के छक्के छुड़वैया ।।

यहीं नहीं वीरता एवं ओजपूर्ण शैली के लोकगीत आल्हा में तो नाम के अनुसार वीरता एवं ललकार का वातावरण हमें मिलता है । लोककवि ३५ कोटि भारत मां के पुत्रों को शेर बनकर बन दहलाने की भावना का पुट देकर ललकारता है:—

सिंहिन बेटा एकुई जन्मै, जाकी भय मानै संसार ।
एक सिंहिनी नाहरु जनिकें, बन में सोवै टांग पसारि ।।
पेंतीस कोटि जनिकें दुखपावै हाइ त्यारे जोवन कूँ धरकार ।
जागौ जागौ अब तौ जागौ, बरसें बीतीं कई हज्जार ।।

राष्ट्र की बलिवेदी पर समाप्त होने वाले भारत माँ के पुत्र को स्वर्ग प्राप्ति की परिकल्पना भी प्रस्तुत करता है:—

खटिया परिकें जौ मरि जाऔ, खेंचें सूअर और सिगाल ।
देश धरम पै मारे जाओ सूधे स्वर्ग लोक कूँ जाउ ।।

यही नहीं एक स्थान पर लोककवि सरोजिनी नाइडू की जेल यात्रा पर नारियों की लाज अपहरण जैसे भावोन्तेजक अवसर का उपयुक्त लाभ उठाकर आह्वान करता पाया जाता है—

कांगरेसि के ऊपर भैया फिरि सिरकार गई रिसियाइ ।
गिरफ्तार करिकें सरोजिनी जेल यरवदा दई पठाइ ।
जागौ जागो अवतौ जागौ ऐसे सोइ रहे पाँय पसारि ।
देश देवियां गई जेल में, त्यारे जीवन कूँ धरकार ।।

* * *

हिन्दी की उत्पत्ति और उसका विकास

आदि काल (सन् १४०० ई० तक)

लेखक—श्री बृन्दावनदास

ऋग्वेद में जिस भाषा का आभास मिलता है वह वैदिक संस्कृत है। वैदिक भाषा का ही संस्कार करके उसको व्याकरण के नियमों से प्रतिवन्धित किया गया। व्याकरणकारों में पाणिनि प्रमुख हैं। संस्कार की हुई भाषा का नाम संस्कृत हुआ।

प्राचीन काल में बोल-चाल की भाषा प्राकृत थी। बुद्ध ने अपना उपदेश बोल-चाल की भाषा यानी प्राकृत में ही दिया था। यही भाषा पीछे पाली कहलाई। अशोक के शिलालेख भी इसी भाषा में लिखे गए। प्राकृत के भी दो भाग हैं (१) साहित्यिक प्राकृत, (२) साधारण बोलचाल की भाषा जो पीछे अपभ्रन्श कहलाई।

अपभ्रंश के चार भेद थे। (१) नागर [यह गुजरात और राजपूताने की भाषा थी,] (२) ब्राचड़ [यह सिन्ध में प्रचलित थी], (३) उपनागर [नागर और ब्राचड़ के बीच की भाषा], (४) शौरसैनी [यह समस्त उत्तर भारत की भाषा थी, ब्रज भाषा की उत्पत्ति इसी से हुई समझी जाती है]।

हिन्दी के आदि काल के विषय में बड़ा विवाद है। कुछ विद्वान् कहते हैं कि 'अपभ्रंश साहित्य हिन्दी की पूर्व पीठिका है।' कुछ विद्वानों का मत है कि प्राचीन हिन्दी अपभ्रंश से भी पुरानी है। एक मत यह भी है कि पुरानी हिन्दी और अपभ्रंश में घनी समानता है। सामान्यतया हिन्दी की उत्पत्ति ७०० ई० के लगभग मानी गई है। “अंग्रेजी का प्रारम्भ भी इसी काल में हुआ बतलाया जाता था। अपेक्षाकृत अंग्रेजी की उन्नति अधिक और हिन्दी की कम हुई। इसके कारण एक अंग्रेज विद्वान् के मत के अनुसार इस प्रकार हैं, हिन्दुओं का जीवन कुछ आध्यात्मिक सा था। वे सांसारिक बातों को झंझट समझते रहे, जीवन को बन्धन समझकर सूक्ष्म धार्मिक सिद्धान्तों का विवेचन करते रहे। भारत में बहुत काल तक प्रेस का अभाव रहा तथा हिन्दुओं का सम्बन्ध भी बाह्य जगत से कम रहा। जीवन को दुःखपूर्ण समझने के कारण उन्होंने उससे निवृत्ति के ही अनेक मार्ग सोचे। संसार में परिस्थितियों का सामना कर जीवन की उपयोगिता बढ़ाने की ओर उन्होंने बहुत ही कम ध्यान दिया”

अपभ्रंश भाषाओं का व्यवहार १४०० ई० तक चलता रहा। ब्रज भाषा आदि अनेक बोल-चाल की भाषायें ७०० ई० से ही अपभ्रंश भाषाओं से अपना अलग अस्तित्व स्थापित करने लग गई थीं। इन भाषाओं का तत्कालीन साहित्य बहुत ही थोड़ी मात्रा में उपलब्ध हुआ है। ऐसा प्रतीत होता है कि कदाचित् साहित्य निर्माण भी कम ही हुआ। ईसा पूर्व पहिली सदी से शुङ्ग

राज्य के स्थापित होने पर भागवत् धर्म का पुनरुत्थान हुआ। संस्कृत फिर एक बार राज्य भाषा हुई। उस काल में रचे हुएसंस्कृत साहित्य का मान होता था। साहित्यकारों ने राज्याश्रय प्राप्त कर अथवा राज्य द्वारा सम्मानित होकर संस्कृत में ही प्रभूत साहित्य की रचना की। पाणिनि ने अष्टाध्यायी पर महाभाष्य पहिली शताब्दी में लिखा। भरत ने भी नाट्यशास्त्र की रचना पहिली सदी में की। भास ने तीसरी शताब्दी में स्वप्नवासवदत्ता की रचना की। चौथी सदी में महा कवि कालिद स ने मेघदूत, ऋतुसंहार, रघुवंश, कुमार सम्भव काव्य ग्रन्थ और शकुन्तला, विक्रमोर्वशीय, मालविकाग्निमित्र आदि प्रसिद्ध नाट्य ग्रन्थों को रचा। किरातार्जुनीय के निर्माता भारवि पाँचवी सदी में उत्पन्न हुए थे। 'काम शास्त्र' के रचयिता वात्स्यायन तथा ज्योतिष और गणित में अनेक ग्रन्थों के रचयिता आर्यभट्ट भी पाँचवी सदी में हुए थे। छटी सदी में वराहमिहिर ने अनेक ज्योतिष ग्रन्थ और विशाखदत्त ने 'मुद्राराक्षस' लिखे। माघ का 'शिशुपाल वध' और हर्ष की 'रत्नावली' और 'नागानन्द' सातवी सदी की रचनायें हैं। दण्डी के 'दशकुमारचरित' और बाण के 'हर्षचरित' और 'कादम्बरी' सातवीं सदी में ही लिखे गए। भवभूति के उत्तररामचरित, महावीरचरित, मालतीमाधव ८ वीं सदी के ग्रन्थ हैं। इतिहासकार कल्हण ने राजतरङ्गिणी १२ वीं शताब्दी में लिखी। वस्तुतः इस उच्चकोटि के साहित्य के सामने अपभ्रंश भाषाओं का साहित्य दबा रहा और उसमें उभर कर सामने आने की सामर्थ्य न थी।

बौद्ध धर्म की ह्रासोन्मुख होने के पहिले विकृति होने लगी थी। वज्रयानी सम्प्रदाय के रूप में ही उसका विकृत स्वरूप स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है। वज्रयानी सम्प्रदाय के आचार्य सिद्ध कहलाते थे। इनका मत वाममार्ग पर आधारित था। ये पञ्चमकार अर्थात् मानिक, मदिरा, मच्छ, मांस और मैथुन को उपासना के सर्वश्रेष्ठ साधन मानते थे। इन्होंने प्रचलित भाषा में अपनी कविता की रचना की। सिद्ध साहित्य हिन्दी वाङ्मय की आरम्भिक कड़ियों में से है अतः इसका महत्व है। कुछ विद्वान् सिद्ध साहित्य को धार्मिक होने के कारण साहित्य ही नहीं मानते। उनकी धारणा है कि धार्मिक साहित्य में लालित्य नहीं होता। परन्तु यह बात सामान्यतया अमान्य है कारण इस प्रकार तो साहित्य का एक महत्वपूर्ण अङ्ग ही पृथक कर दिया जायगा। इस प्रकार तो सूर और तुलसी की कृतियाँ भी धार्मिक मानली जायेंगी। सूर के पद तो मन्दिरों में ही सुरक्षित हैं, कारण वे वर्षोत्सवों पर गाये जाते हैं।

सिद्ध सम्प्रदाय अपने बामाचार के कारण जनप्रिय न रह सका। उसके विरुद्ध आन्दोलन हुआ। उस आन्दोलन के कर्णधार थे नाथ सम्प्रदाय के योगी और सन्यासी। ये लोग शिव को परब्रह्म स्वरूप मानते थे और उन्हीं की उपासना करते थे। सिद्ध सम्प्रदाय बाद के विपरीत इन्होंने आत्म संयम और ब्रह्मचर्य को साधना का प्रमुख साधन माना। गोरखनाथ द्वारा मत्स्येन्दुनाथ को विलासिता पूर्ण जीवन से मुक्ति मिली। मत्स्येन्द्रनाथ स्त्रियों के प्रति आसक्त होकर वाम मार्ग में पड़ गये थे। गोरखनाथ के सम्बन्ध में मतभेद है। कोई इन्हें आठवीं, कोई नवीं और कोई दसवीं शताब्दी का मानते हैं। इन्होंने गद्य और पद्य में लगभग ४० ग्रन्थों की रचना की। इनकी भाषा राजस्थानी से मिलती-जुलती खड़ी बोली है।

अपभ्रंश साहित्य को हिन्दी के अन्तर्गत मानने में प्रधान आपत्ति उसके धार्मिक स्वरूप के कारण है। यह तो निर्विवाद है कि उस साहित्य में आध्यात्मिक और दार्शनिक चिन्तन की प्रवृत्तियां विद्यमान हैं परन्तु इससे उसकी साहित्यिकता समाप्त हो जाय ऐसी कोई बात नहीं है। कुछ विद्वान् अपभ्रंश साहित्य को हिन्दी से पृथक कर उसे हिन्दी का पूर्ववर्ती साहित्य मानते हैं। वास्तव में तो वह हिन्दी का एक स्वरूप ही है और उसके क्रमिक विकास की शुरू की कड़ी है। वीरगाथा-काव्य अपभ्रंश और प्रचलित भाषा दोनों में ही लिखा गया है। वे सभी विद्वान जिन्होंने हिन्दी साहित्य का इतिहास लिखा है वीरगाथा काव्य को हिन्दी साहित्य का अङ्ग मानते हैं तथा इनको 'वीरगाथा काल' के अन्तर्गत निर्मित हुआ बतलाते हैं।

वीरगाथा साहित्य का निर्माण कुछ ऐतिहासिक तथ्यों की पृष्ठ भूमि में हुआ। हर्षोत्तर भारत में राजनीतिक दशा बड़ी अस्त व्यस्त थी। हर्ष के बाद कोई ऐसा हिन्दू सम्राट न हुआ जो नन्द, मौर्य, शुङ्ग सातवाहन और गुप्त सम्राटों की तरह भारत में केन्द्रीय शासन स्थापित कर सकता। भारत भूमि के अनेक भू भाग विभिन्न राजवन्शों द्वारा शासित थे। ये राजा लोग सदैव परस्पर युद्धरत रहते। कूपमण्डूकवत् ये लोग अपने और अपने पड़ौसियों के छोटे-छोटे राज्यों को ही पूरी दुनियाँ समझ लेते। बाहरी खतरे का इन्हें कभी आभास ही न हुआ। जब बाहरी शक्तियों ने आकर इन्हें दबोचा तो इन्होंने या तो आत्म समर्पण करके अपनी रक्षा की अथवा युद्ध में सर्वस्व होम कर नाश को प्राप्त हो गए। निस्संदेह ये राजा लोग वीर थे, वीरता और शूरोचित गुणों में इनमें किसी प्रकार की कमी न थी। इनकी सबसे बड़ी कमी यह थी कि इनमें भारत के प्रति राष्ट्रीय भावना का अभाव था। अपने छोटे से राज्य को ही उनमें से प्रत्येक अपनी मातृभूमि मानता था और उस पर अपने प्राणोत्सर्ग करने को उद्यत रहता। राष्ट्रीय भावना की इस कमी ने ही भारत को दासत्व की बेड़ियों में जकड़ दिया और मुट्ठी भर मुसलमान आक्रान्ता समस्त देश के स्वामी बन बैठे। जो भी हो, राजाओं का शासन हिन्दू शास्त्रों की परम्परा और आदर्शों के अनुसार था। वे कला, साहित्य और संस्कृति के संरक्षक थे। वे विद्वानों और गुणियों को प्रश्रय देते थे। उनके दरबारों में अनेक कवियों और कलाकारों को आश्रय प्राप्त था। कवियों ने इन राजाओं में वीर भाव उत्पन्न करने के लिए वीर रस प्रधान कवितायें लिखीं। उन्होंने अपने चरित्रनायकों की प्रशस्तियों में शौर्य के अतिरञ्जित वर्णन भी लिखे।

वीरगाथा काल में दो प्रकार की कवितायें लिखी गईं। (१) वीर रस के गीत, (२) प्रबन्ध काव्य। वीर रस गीतों में बीसलदेव रासो और आल्हा आदि ग्रन्थ हैं। खुमानरासो, पृथ्वीराज रासो जयचन्द्र प्रकाश, जयमयङ्क जसचन्द्रिका आदि की प्रबन्ध काव्यों में गिनती है। ऐसा प्रतीत होता है कि वीर गीत काफी संख्याओं में लिखे गए परन्तु उनका पता नहीं चल रहा है, सम्भव है वे नष्ट हो गए हों।

हिन्दी के आदि काल में चार प्रकार की भाषायें प्रचलित थीं। अपभ्रंश, डिङ्गल, मैथिली और खड़ी बोली। सिद्धों, जैन संन्यासियों आदि ने अपभ्रंश में लिखा। रासो डिङ्गल

भाषा में लिखे गए । डिङ्गल राजस्थानी भाटों की भाषा है । अमीर ख़ुसरो की भाषा आधुनिक खड़ी बोली के सदृश थी । ख़ुसरो की पहेलियां और मुकरियाँ वीरगाथा काल के साहित्य में अपना विशेष स्थान रखती हैं ।

वीरगाथा काल के साहित्य में ऐतिहासिक तथ्यों का बोध होता है । उसमें युद्धों का सजीव वर्णन है । ये वर्णन बहुधा अतिरञ्जित हो गए हैं और उनमें काल्पनिक पात्रों का समावेश भी बहुतायत से किया गया है । युद्धों के वर्णन में अद्भुत, वीभत्स और रौद्र तीनों रसों का समावेश है । कहीं कहीं शृङ्गार रस की छटा भी देखने को मिलती है । वीरगाथा काव्य की प्रमुख भाषा डिङ्गल है । इस काव्य में दूहा, पाघड़ी और कवित्त आदि की भरमार है ।

पृथ्वीराज रासो के रचयिता चन्दवरदाई थे जिन्हें कुछ विद्वान् हिन्दी का आदि कवि ठहराते हैं । खुमान रासो दलपति विजय ने लिखा था । राजा परमाल के राजकवि जगनिक आल्हखण्ड के रचयिता थे । आल्हखण्ड में आल्हा ऊदल की वीरता का अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन है ।

हिन्दी के आदि कालीन साहित्य का अपभ्रंश भाग साम्प्रदायिक था । उसके निर्माता कूपमन्डूकवत् अपने सम्प्रदाय के सिद्धान्तों के निरूपण में ही लगे रहे । उस साहित्य में वाह्य जगत तथा सामाजिक अवस्था के वर्णन का पूर्णतया अभाव है । वीरगाथा कालीन साहित्य राज्याश्रय प्राप्त है । उसके चरित्रनायक राजा और सामन्त हैं, उन्ही की प्रशस्ति में उस साहित्य का निर्माण हुआ । जनजीवन के समसामयिक चित्रण का उसमें भी सर्वथा अभाव है ।

जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है हिन्दी ७०० ई० सन् के लगभग अपभ्रंश से अपना पृथक् अस्तित्व स्थिर करने में समर्थ हो चुकी थी । पुष्य कवि की अलङ्कार शास्त्र की भाषा दोहरों में सन् ७१५ ई० में और अब्दुल्ला ऐराकी की कुरान का तर्जुमा हिन्दी में सन् ८७० ई० में लिखा गया ।

भारतवर्ष में विदेशों के आक्रान्ताओं का पदार्पण ईसा के पूर्व से आरम्भ होकर ईसा के बाद तक चलता रहा । यहाँ यूनानी, सीथियन, मङ्गोलियन, शक, पार्थियन, हूण आदि बड़ी संख्याओं में आये । वे या तो पराजित होकर अथवा हिन्दू संस्कृति के सौन्दर्य के प्रति नतमस्तक होकर हिन्दू समाज के अङ्ग बन गए । उनकी संस्कृति का भारतीय हिन्दू समाज और धर्म में पूर्णरूप से विलय हो गया । परन्तु बारहवीं सदी के अन्त में जब मुसलमानों ने विजयश्री प्राप्त कर यहां बसना शुरु किया तो उन्होंने अन्य भूतपूर्व आक्रान्ताओं की भांति न तो हिन्दू धर्म ही अङ्गीकार किया और न वे यहाँ की संस्कृति में ही विलीन हुए । उन्होंने अपनी संस्कृति और धर्म के स्वरूप को यथावत् रक्खा । फिर भी पारस्परिक संघर्ष और सम्पर्क से एक दूसरे की संस्कृति परस्पर प्रभावित हुए बिना न रही । तेरहवीं शताब्दी के आरम्भ में जब यहां मुसलमानों ने अपनी सत्ता स्थापित की तो उन्होंने हिन्दुओं की साहित्यिक और सांस्कृतिक भाषाओं जैसे ब्रजभाषा, संस्कृत और अपभ्रंश से तो कोई सम्बन्ध न रक्खा परन्तु लोगों की बोलचाल की भाषा की जो शहरों में खासतौर से दिल्ली, मेरठ आदि में बोली जाती थी उपेक्षा न कर सके । उनके सम्पर्क से इसी भाषा की अज्ञात रूप से उन्नति होती चली ।

——

क्या सिख गुरुओं की भाषा पंजाबी थी?

लेखक—श्री रामेश्वर उपाध्याय

अब प्रायः निर्विवाद रूप से यह माना जाने लगा है कि पंजाबी भाषा हिन्दी से भी अधिक प्राचीन है और धार्मिक क्षेत्रों में तो इसी आधार पर सिख गुरुओं को पंजाबी-भाषी मान लिया गया है। एक सिख विद्वान् प्रि० तेजासिंह के मतानुसार, वेद भी पंजाबी में ही लिखे गए थे मगर वर्तमान पंजाबी की अपेक्षा, वे प्राचीन पंजाबी में हैं; परन्तु हैं पंजाबी में, संस्कृत में नहीं। संस्कृत की रचना तो बाद में हुई। पंजाबी को प्राचीन भाषा सिद्ध करने में इस विद्वान् को शायद अधिक व्यामोह रहा होगा। वरना वैदिक-संस्कृत से तो समस्त आर्य भाषायें निकली हैं। अब हर भाषा-भाषी यही कहने लगे कि वेद उसकी भाषा में ही हैं तो कैसा मजाक रहेगा।

'पंजाबी बोली दा निकास ते विकास' नामक ग्रन्थ पंजाबी भाषा का विकास ९०० ई० के आस-पास मानता है (पृ० २५८–५९) और तत्पश्चात बारहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में हुए मुलतान निवासी मुहम्मद रहमान नामक कवि को पंजाबी का प्रथम कवि मानता है। निस्सन्देह सिख गुरुओं का समय इससे भी काफी बाद में आता है और पंजाबी को बारहवीं शताब्दी से ही प्रचलित कराने का अप्रत्यक्ष प्रभाव यह भी पड़ता है कि सिख-गुरुओं की भाषा पंजाबी ही थी। इसी परिप्रेक्ष्य में पंजाबी के अन्य समर्थकों ने, गुरुओं की भाषा पंजाबी बताई है।

अधिक तर्क-वितर्क में न जाकर, हम सर्व प्रथम सिख गुरु नानक साहब की भाषा का एक उदाहरण प्रस्तुत करते हैं:—

१. पुष्प मध्य ज्यों बास बसति है मुकुर मांहि जल छांहि।
तैसे ही हरि बसैं निरन्तर घट ही खोजो भाई।
२. गगन में थालु रविचंदु दीपक बने, तारिका मंडल जनक मोती
धूप मलियानिल, पवणु चवरा करे, सकल बनराइ फलंत ज्योति।

(गुरु ग्रन्थ साहिब, महला १, पृ. १३)

पंजाबी के समर्थकों ने शुद्ध ब्रज भाषा में पद रचना करने वाले गुरु नानक की कविता में भी बड़े कौशल पूर्वक पंजाबी भाषा की खोज की है।

पंजाबी के समर्थक विद्वान् गुरु अङ्गद की भाषा को 'मध्यकालीन पंजाबी' मानते हैं। गुरु अङ्गद ने जन-भाषा का ही प्रयोग किया है। अब उनकी इस मध्यकालीन पंजाबी भाषा का एक रूप प्रस्तुत है: —

गुरु कुंजी पाहु निबल मनु कोठा, तन छत्ति
गुरु बिन मन का ताकु न उधड़े, अवर न कुंजी हाथ।

(गुरु ग्रन्थ साहिब, महला २, पृ. १२३७)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

स्पष्ट है कि तत्कालीन अन्य कवियों एवं सन्तों के समान इन्होंने भी ब्रज भाषा में ही कविता की। उपर्युक्त उदाहरण विशुद्ध ब्रज भाषा का है। न जाने क्यों उसमें पंजाबी थोपने का प्रयास किया गया। केवल गुरु अमरदास की भाषा को उन्होंने प्राचीन पंजाबी की अपेक्षा ब्रज के निकट' मानने की उदारता दिखाई है। वे गुरु ते विमुख होवै, बिनु सतगुरु मुक्ति न पावै। पढ़ि-पढ़ि पंडित ज्योतषी वाद करहि' आदि विशुद्ध भाषा के प्रयोग गुरु अमरदास ने किए थे।

तत्पश्चात् गुरु रामदास ने भी परम्परागत ब्रजभाषा में काव्य रचना की। सन्तोष की बात है कि उनकी भाषा को प्राचीन या मध्य पंजाबी से संबंधित्त नहीं बताया गया है। ते (से) दीया (दिया) किरपा (कृपा) और परगासि (प्रकाश कर) आदि विशुद्ध ब्रज भाषा के रूपों के कारण, उनकी भाषा को ब्रजभाषा मान ही लिया गया।

ज्ञानु अंजनु गुरु दीया, अभिमान अंधेर विनासि,
हरि किरपा ते संत भेट्या, नानक मन परगासि।

(गुरु ग्रन्थ साहिब सुखमनी पृ. २९३)

गुरु अर्जुनदेव तो ब्रजभाजा के सुपरिचित कवि माने गए हैं। अन्य कवियों के समान उन्होंने रस अलङ्कार की छटा के माध्यम से ललित पदावलि में ब्रज कविता लिखी। उनके पदों को अष्टछाप के कवियों की लालित्यमयी कविता से पृथक छाँट सकना भी प्रायः दुष्कर ही है:—

कवन गुन प्रानपति मिलउ री मेरी माई,
रूप हीन, बुधिहीन, बलहीनी, मो परदेसिन दूर ते आई।
नाहिन दरबु, न जोबन माती, मोहि अनाथ की करहु समाई।।
खोजत खोजत भई बैरागिन, प्रभु दरसन कऊ फिरति तिसाई।
दीनदयाल कृपाल, प्रभु नानक, साधु संग मेरी जलनि बुझाई।

इन्होंने ६००० से अधिक पद रचनायें करके प्रमुख ब्रज कवियों में स्थान प्राप्त किया। सुखमनी उनकी सुप्रसिद्ध कलाकृति है।

गुरु तेगबहादुर ने भी यद्यपि थोड़ी रचनायें कीं, किन्तु उनकी भाषा विशुद्ध ब्रज भाषा ही रही:—

१. गुरु गोविन्द गायौ नहीं, जनमु अकारथ कीन्ह।
२. विरधु भयह सूझै नहीं, काल पहोंच्यौ आनि।
३. पतित उधारन, भै हरन, हरि अनाथ के नाथ।

ब्रज भाषा के एक अन्य प्रतिष्ठित कवि थे गुरु गोविन्द सिंह। जाप, अकाल-स्तुति, चंडी चरित्र, विचित्र नाटक, शास्त्र नाममाला, रामावतार, कृष्णावतार आदि उनकी सुप्रसिद्ध ब्रज रचनायें हैं और वीर कवि के रूप में उनका ब्रज-साहित्य में उल्लेख है। तत्कालीन ब्रज काव्य के मानदण्डों

के अनुरूप उन्होंने नवीन उपमाओं, उत्प्रेक्षाओं, एवं रूपकों की मनोरम योजना की। निम्न कवित्त में उनकी भाषा का लालित्य देखिए:—

कोप के चंड प्रचंड चढ़ी इत, क्रुद्ध के घूम चढ़ी उत सैनी।
वान कृपानन मार भई, तब देवी लगी बरछी कर पैनी ॥
दौर दमी अरि के मुख पै, कटि ओठ दिए जिमि लोहे को छैनी।
देत गंगा जमना तन स्याम सौं, लोहू बहयो जिहि भांति त्रिवैनी॥

सिख गुरुओं के काव्य के उपर्युक्त उद्धरणों से स्पष्ट है कि वे कविता के लिए ब्रजभाषा का ही प्रयोग करते थे। मगर जो वेदों को पंजाबी में लिखा मानें, उनके लिए यह भी अस्वाभाविक नहीं कि वे इन गुरुओं की भाषा को 'प्राचीन, मध्यकालीन या अप्रत्यक्ष पंजाबी' करार दें। ब्रजभाषा को अलबत्ता अपने सभी साधकों पर गर्व है और उसी श्रृङ्खला में ब्रज-भाषा इन सभी सिख गुरुओं को भी गौरवपूर्ण पद प्रदान करती है।

भक्तवर सूरदास

लेखक—श्रीभगवानदत्त चतुर्वेदी

(१)

सूर अनेक धरापै भये पै, न,
सूरसौ कोऊ भयौ कविनामी।
जन्मते दीठि न पाई तऊ दिख,
राई परे इनकों निज स्वामी ॥
बाल चरित्र रचे व्रज चंद के,
ह्वै पथ वल्लभ के अनुगामी।
स्याम सनेह भरे पद गाय,
किये बस आपुने अंतरजामी ॥

(२)

पूरब पुन्य प्रभाउ सों फेरि,
मिले गुरु बिठ्ठल नाथ गुनागर।
अस्ट सखान कौ सङ्ग हुतौ निज,
इष्ट हुतो तिनकौ नट नागर ॥
गोविंद के गुनगान किये.
यहितें भयौ लोक में नाम उजागर।
भक्ति पगे पद पूर भर्यौ कवि.
सूरनें गागर में रस सागर ॥

लोकवार्ता में

करवा चौथ

श्री उमाशङ्कर दीक्षित एम. ए. साहित्यरत्न

सरद की सुन्दर सुहानी ऋतु। कार्तिक के महीना में करवा चौथ कौ पावन दिना। संजा कौ समै। हौले-हौले आसमान में तारे टिमटिमामन लगे और अंधेरे पै अपनौ राज जमामन लगे। थोरी देर में चन्दा हू उगि आयौ। बाकी दूधिया चाँदनी ते धरती ऐसी सुफेद लगिवे लगी मानों वानें सुफेद चूँनरी ओढ़ि लीनी होय। सुहागिनी नारीन नें चन्दा की जो मूर्ती भीति पै काढ़ि राखी हती बाकी पूजा करी। मट्टी के करुआ पल्टे और आसमान के चन्दा कूँ अरगु दीयौ। फेरि सवेरे ते जो निर्जल वर्त करि राख्यौ हो बाकूँ पूरौ करिकै भोजन पाये हम सबहू रोटी पानी खाय पी कें निच्चू भये और सोइवे की तैय्यारी करिवे लगे। तबई छोटौ 'पप्पू' अपनी बूढ़ी दादी के पास खाट पै जायकें बोल्यौ—दादी! आजु तौ मोकूँ करबा चौथ की कहानी सुनाइ दै। बैसैही सुनइयो जैसें चन्दा मामा की पूजा में तैनें अम्मा कूँ सुनाई हती। बूढ़ी दादी नें अपने लाड़िले नाती की बात कूँ सुनिकें बड़ै प्यार ते बाके मांथे पै हाथ फेर्‌यौ और पुचकारि कें वासौं वोली—अच्छौ बेटा आज वोकूँ करवा चौथ की ही कहानी सुनाऊँगी। सोइयो मति। हूँकरा भरत रहियो। लै सुनि—

सात भैय्यान की एक लाड़िली भैन हती। वाकौ नाम कोऊ कोऊ बींझा भैन वतावैं हैं। करवा चौथ आई। नन्द भौजाई सब बर्ती रहीं। भैन के बिना भैय्यन नें हू कछू नहीं खायौ। भैय्यन नें कही कै भैन आजा खाइवे कूँ खाइलै। भैन बोली—आजु तौ मेरौ बर्तु है। मैं तौ आज चन्दा कूँ अरग दैकें खाऊँगी।

संजा है गई। भैय्यान कूँ बड़े जोर की भूक लगी उनमें ते एक जङ्गल कूँ चलि दीयौ और एक पीपर के पेड़ पै नसैनी लगाइके चढ़ि गयौ। दीयौ जराइ कें बाकूँ चलनी ते ढकि आयौ। फेरि घर में आइके भैन ते बोल्यौ—कै भैन, देखि चन्दा निकसि आयौ चलि कें अरगु दै दै। भैन नें देखि कें भाभीन ते कही कै भाभी चलौ चन्दा निकरि आयौ है अरगु दै दै। भाभीन नें कही कै सात भईय्यान की प्यारी भैन कौ चन्दा निकरि आयौ है। हमारौ तो रात कूँ निकरैगौ।

भैन अकेली ही अरगु दै आई और पूजा करिकें भैय्यान के सङ्ग खाइवे बैठी। पैहले ही गस्सा में बार आय गयौ, दूसरे में छींक भई, तीसरे में बाके मालिक के मरिवे की खबरि आइ गई। जैसी बैठी वैसी ही रोबती पीटती उठि बैठी और अपने घर पौंहची। अपने मालिक की ल्हास लैंकें एक कोठरी में रखि कै बैठि गई वाकी खूब सेवा करिवे लगी।

ऐसें करत अघैन की चौथ आई। वर्ती रही, पूजा करी, रात में चौथ मइय्या आई।

चौथ मइय्या नें कही कै तू कहा मांगै है ? "मोय मेरौ सुहाग दै" बींझा नें कही। चौथ मइय्या बोली—सुहाग तौ मैं तोइ नांइ दै सकूँ। पूस की चौथ आवैगी बु देगी। पूस की चौथ आई। फिरि बानै एसेई कर्‌यौ। रात में चौथ मइय्या आई बाते बानें कही के मोइ सुहाग दै। बानेंऊ कही कै मैं नाहि दै सकूँ, माह की आवैगी बु देगी। ऐसेई माह की, फागुन की, चैत की, बैसाख की जेठ की, असाढ़ की, सामन कीं, सबन्नें अपनीन ते आगे बारीन पै टार दीनी कै आगे की दूसरी चौथ आवैगी बोई सुहाग देगी। अन्त में क्वार की चौथ आई। वानें कही कै कातिक की चौथ जो करवा चौथ है बुई तोहि सुहाग दै सकै है और कोऊ नांहि दै सकै। बु दांतन काटती लातन मारती आवैगी। तू बाके पैर पकरि लीजो। छोड़ियो मति।

कातिक लागत चौथ आइ। बानें वैसेई वर्त राख्यो। पती की पूजा करी। लीप पोत कें भींति पै चन्दा काढ्‌यौ। रात में चौथ मइय्या आई। ऐसेई लातन मारती दाँतन काटती आई। बींझा नें बाके पैर पकरि लीने, ह्वौतु विनती करी और कही कै मय्या मोय मेरौ सुहाग दै।

चौथ मइय्या ने ह्वौतु नाहीं करी। परि बु नहीं मानी। पीछें ही परि गई। रोवै पैरन में परै, वेरि बेरि हाथ जोरै तब तौ चौथ मइय्या कूँ दया आइ गई और अपनी कन्नी उँगरिया चीर कें बाके मालिक के म्हौड़े में डारि दई। सोई बु हरे हरे करिकें उठि बैठ्यौ।

बींझा नै चौथ मईय्या की खूब पूजा करी। जब आसमान में साँजे कौ चन्दा निकसि आयौ तब बाकूँ अरगु दीयौ और भींति के चन्दा की पूजा करिकें मट्टी के चेरुआ पल्टे। पती कूँ भोजन कराइ कें पीछें आपुनेंहू प्रसादु लयौ। बस, जैसी पैहली आई काऊ कें मति अइयो, पीछै आई सब काहूकें अइयो।

कहानी सुनिकें पप्पू कूँ हूँ नींद आइवे लगी और दादी हू सोइ गई।

भक्त कवयित्री बेगम ताज

श्री भगवानदत्त चतुर्वेदी

सहंसाह अकबर मिल्यौ हो पति जोग्यताहि,
उरहो उदार ताकौ दीन जनकौ निवाज।
पाय उपदेस विठ्ठलेस कौ समय पाय,
गिरिवर धारी को अनन्य भक्त भयो ताज ॥
परमपुनीत व्रजराज सों बढ़ाय प्रीति,
रीति भीति तजकें बनाये सेव्य गिरिराज।
भासा व्रजभावनी में यावनी युवाके रचे,
स्याम के स्वधाम स्वधाम गाये जाऐं गीत आज ॥

पुष्य भूति वंशीय सम्राट हर्षवर्द्धन

(श्री बृन्दावनदास बी. ए., एल-एल. बी.)

गुप्त साम्राज्य के ह्रास के उपरान्त भारत के राजनीति-गगन में अनेक राज्य-शक्तियाँ उदीयमान हुईं। परन्तु उनमें से कोई भी भारत में एकसत्तात्मक शासन स्थापित करने में समर्थ न हुई। गुप्तसम्राटों के बाद हिमालय से कन्या कुमारी और बङ्गाल से गुजरात तक एक छत्र शासन किसी भारतीय हिन्दू सम्राट का न हुआ। गुप्त साम्राज्य के ध्वस्त होने के लगभग ५० वर्ष के भीतर घोर संघर्ष के उपरान्त तीन राज्य शक्तियाँ भारत में पृथक२ रूप से अपना प्रभुत्व स्थापित कर सकीं। उत्तर भारत (आर्यावर्त) में पुष्यभूतियों, दक्षिण भारत में चालुक्यों और सुदूर-दक्षिण द्रविण प्रदेश में पल्लवों ने अपनी राज्यसत्ता स्थापित की। इन तीन बड़ी शक्तियों के अतिरिक्त मालव-राज्य, वल्लभी राज्य, पूर्वोत्तर भारत तथा उत्तर भारत के अनेक राज्य अस्तित्व में आये।

गुप्त साम्राज्य के अन्त के बाद पूर्वोत्तर भारत में जिस मुख्य राज्य का उदय हुआ वह था गोंड राज्य। इसकी राजधानी कर्णसुवर्ण थी। गौड़ वंशीय राजा शशाङ्क सम्राट हर्षवर्धन का समकालीन था। उत्तर भारत के मुख्य राज्यों में मगध के परवर्ती गुप्तवंश का राज्य था। गुप्तवंश की ही एक शाखा से उत्पन्न एक व्यक्ति कृष्णगुप्त ने मगध में अपना राज्य स्थापित किया। गुप्तवंश की इस शाखा का गौड़ों से बराबर संघर्ष रहता था। गुप्तवंशीय राजाओं ने मौखरियों से मैत्री कर गौड़ों के आतङ्क से अपनी रक्षा की। परन्तु बाद में इनकी मौखरियों से भी चल गई। इस वंश का सब से प्रसिद्ध राजा आदित्यसेन हुआ है। वह हर्ष की मृत्यु के बाद स्वतन्त्र हो गया और अपनी विशाल वाहिनी के बल पर उसने अनेकों आस-पास के राजाओं पर विजय प्राप्त की। उसने प्राचीन हिन्दू परिपाटी के अनुसार अपनी विजयों के स्मारक स्वरूप अश्वमेध यज्ञ भी किया। आदित्यसेन के बाद क्रमशः देवगुप्त, विष्णुगुप्त और जीवित गुप्त सिंहासनासीन हुए। कान्यकुब्ज के मौखरी राजा यशोधर्मन् ने अन्तिम गुप्तवंशीय राजा का बध कर दिया। इसके बाद मगध में पाल वंश का आधिपत्य हो गया।

मौखरी वंश

कान्यकुब्ज (कन्नौज) का मौखरी वंश भी गुप्त साम्राज्य के बाद शक्तिशाली हो गया। इस वंश के प्रारम्भिक राजाओं का मगध के गुप्तवंशीय राजाओं से राजनैतिक और वैवाहिक सम्बन्ध था। इस मैत्री के बल पर इन दोनों ने गौड़वंशीय राजाओं को परास्त किया। परन्तु ईशानवर्मन और सर्ववर्मन मौखरी राजाओं के समय में मौखरियों का गुप्तों से संघर्ष हो गया। फिर मौखरियों ने स्थाण्वीश्वर के पुष्यभूतियों के साथ सम्बन्ध स्थापित कर लिए। एक ओर गुप्तों और गौड़ों का

दल हो गया और दूसरी ओर मौखरियों और पुष्यभूतियों का। स्थाण्वीश्वर (थानेसर) के अधिपति प्रभाकर वर्द्धन ने अपनी पुत्री राज्यश्री का विवाह मौखरीवंशीय गृहवर्मन् के साथ कर दिया। कुछ समय बाद गौड़ाधिपति शशाङ्क और गुप्तवंशीय राजा देवगुप्त ने कान्यकुब्ज (कन्नौज) पर आक्रमण करके गृहवर्मन का बध कर दिया। गृहवर्मन् की राज्यश्री से कोई सन्तान न थी अतः उसके उत्तराधिकारी के अभाव में कान्यकुब्ज का राज्य स्थाण्वीश्वर के राज्य में सम्मिलित हो गया। दो शक्तिशाली राज्यों के सम्मेलन से एक महान् शक्ति का उदय हुआ जिसके द्वारा बिघटनकारी तत्वों का दमन हुआ और उत्तर भारत में एक शक्तिशाली राज्य निर्माण हो सका। इस विशाल राज्य को स्थाण्वीश्वर और कान्यकुब्ज साम्राज्य भी कहा जाता है। इस साम्राज्य का प्रभुत्व समस्त उत्तर-भारत पर था।

पुष्यभूति वंश

पुष्यभूति वंश का संस्थापक वैश्यकुलोत्पन्न था। ऐसा प्रतीत होता है कि पुष्यभूति ने सर्वप्रथम श्रीकन्ठ (पूर्वी पंजाब) में अपना राज्य स्थापित किया। प्राचीन काल में जिस प्रकार अनेकों क्षत्रिय कर्मानुसार ब्राह्मणत्व को प्राप्त हो गए उसी प्रकार वैश्य लोग भी क्षत्रिय धर्म कर्म का अनुसरण करने के कारण क्षत्रियत्व को प्राप्त हो गए। गुप्तवंश के सम्राट इस बात के उदाहरण हैं। वे लोग वैश्यकुलोत्पन्न थे परन्तु राज्यपद प्राप्त करने के उपरान्त क्षत्रियत्व को प्राप्त हो गए। मंजुश्री मूल कल्प नामक बौद्ध ग्रन्थ इस बात की पुष्टि करता है कि पुष्यभूति लोग वैश्य थे। बाण के ग्रन्थ हर्ष चरित के उल्लेखों से भी यही प्रगट होता है।

यद्यपि इस वंश के राज्य की स्थापना तो पहिले से ही हो गई थी परन्तु राजनीतिक महत्व की दृष्टि से इस वंश का भारतीय रंगमंच पर उदय छठवीं शताब्दी के आरम्भ से समझना चाहिए। पुष्यभूति के बाद उसका उत्तराधिकारी नरवर्द्धन हुआ। नरवर्द्धन का राज्यवर्द्धन और राज्यवर्धन का आदित्यवर्द्धन उत्तराधिकारी हुआ। आदित्यवर्द्धन ने गुप्तवंश की राजकुमारी महासेन गुप्ता से विवाह कर अपनी स्थिति को प्रबल बनाया।

आदित्यवर्द्धन के पुत्र प्रभाकरवर्द्धन के राज्य में पुष्यभूति राज्य बिल्कुल स्वतन्त्र हो गया। प्रभाकरवर्द्धन ने अनेकों पड़ोसी राज्यों पर आक्रमण करके अपना आतङ्क स्थापित किया तथा अपने राज्य के विस्तार को बढ़ाया। सैनिक दिग्विजय करने के उपरान्त उसने महाराजाधिराज, परमभट्टारक, प्रतापशील आदि उपाधियाँ धारण कीं। अपनी राजनीतिक स्थिति दृढ़ करने के अभिप्राय से उसने अपनी पुत्री राज्यश्री का विवाह कान्यकुब्ज के राजा गृहवर्मन् के साथ कर दिया। इसके राज्य में हूणों का भी आक्रमण हुआ परन्तु उसके पुत्र युवराज राज्यवर्द्धन ने हूणों को मार कर भगा दिया।

प्रभाकरवर्द्धन के स्वर्गवासी होने के बाद राज्यवर्द्धन राज्यसिंहासन पर आरूढ़ हुआ। राज्यवर्द्धन सरल स्वभाव का मनुष्य था। वह बौद्ध धर्म के प्रभाव में आ गया था। उसकी सरलता

का लाभ उठाकर गौड़ाधिपति शशाङ्क मालवा के राजा देवगुप्त ने मिलकर कान्यकुब्ज पर आक्रमण किया और गृहवर्मन् का बध कर डाला। राज्यश्री जो बन्दी बना ली गई थी किसी प्रकार बन्दीगृह से भाग कर बन में चली गई। राज्यवर्द्धन ने अपने बहनोई के बध का बदला लेने के लिए कान्यकुब्ज पर चढ़ाई की और सुगमता से देवगुप्त को परास्त कर उसे कान्यकुब्ज से भगा दिया। परिणामस्वरूप कान्यकुब्ज पर राज्यवर्द्धन का अधिकार हो गया।

गौड़राज शशाङ्क ने राज्यवर्द्धन को फंसाने का एक षड़यन्त्र रचा। उसने राज्यवर्द्धन के साथ अपनी पुत्री का विवाह कर देने का आश्वासन देकर उसे अकेले अपने स्कन्धावार (कैम्प) में आने का निमन्त्रण भेजा। राज्यवर्द्धन वहाँ गया और विश्वासघात का शिकार हुआ। उसने शत्रु के गृह में अपने प्राण छोड़े।

हर्षवर्द्धन

राज्यवर्द्धन के विश्वासघात से बध किए जाने पर उसका भाई हर्षवर्द्धन श्रीकन्ठ के राज्य सिंहासन पर बैठा। उत्तराधिकार प्राप्त होने पर हर्ष को अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। प्रथम तो उस बड़े राज्य का प्रबन्ध था जो कान्यकुब्ज और श्रीकन्ठ दो बड़े राज्यों का सम्मिलित साम्राज्य था। दूसरे इस साम्राज्य के शत्रु चारों ओर उपद्रव मचा रहे थे। तीसरे हर्ष के घरैलू मामले थे। हर्ष के हृदय में अपने भाई और बहनोई के बध का बदला लेने और राज्यश्री का पता लगाने की महान् उत्कन्ठा थी। हर्ष के मन में आस-पास के उपद्रवकारी राजाओं का अन्त करके एक बड़े साम्राज्य का निर्माण करने की इच्छा बलवती हुई।

अपने प्रजाजनों और अमात्यों के सामने हर्ष ने अपने पिता के चरणों की शपथ खाकर एक महान् प्रतिज्ञा की कि वह शीघ्र समस्त उपद्रवकारी राजाओं को परास्त करके भारत में चक्रवर्ती शासन की स्थापना करेगा। उसकी इस दिग्विजयी प्रतिज्ञा का प्रजा में अपूर्व स्वागत हुआ। हर्ष इसके बाद निरन्तर युद्धरत रहा। वह सन् ६०६ ई० में राजसिंहासन पर बैठा था। सन् ६३४ ई० तक उसका अधिकांश समय युद्धक्षेत्र में ही व्यतीत हुआ। हर्ष चरित्र और शिलालेखों से स्पष्टतया सिद्ध है कि गौड़, उत्कल, मिथिल, सिन्धु, नैपाल, सुराष्ट्र सब उसके वशवर्ती हो गए। काश्मीर से आसाम और नैपाल से नर्वदा तक उसके राज्य का विस्तार हो गया। उसने सुराष्ट्र के राजा ध्रुवसेन द्वितीय को हराकर उसको उसका राज्य वापिस कर दिया और अपनी पुत्री का विवाह उसके साथ करके राजनैतिक मैत्री स्थापित की। हर्ष की विजयों का उल्लेख डा० राजबली पाण्डेय अपनी पुस्तक भारतीय इतिहास की भूमिका में इस प्रकार करते हैं:—

"हुसेनसङ्ग ने अपने यात्रा वर्णन में लिखा है कि हर्ष पूर्व की ओर बढ़ा उसने उन राज्यों पर आक्रमण किया जिन्होंने उसका आधिपत्य अस्वीकार किया था और लगातार युद्ध करता रहा जब तक कि छः वर्ष के भीतर उसने पाँच गौड़ों (पाँच इण्डिया) को अपने अधीन नहीं कर लिया। ये पञ्चगौड़ उत्तर भारत के पाँच मण्डल थे। (१) सारस्वतमन्डल, [काश्मीर-पञ्जाब],

(२) गौड़ [दिल्ली के आस-पास का प्रदेश], (३) कान्यकुब्ज [पूरा संयुक्त प्रान्त, दक्षिण में विन्ध्य-पर्वत तक और बिहार का अधिकांश] (४) पूर्वोत्तर [मिथिला, बिहार बङ्गाल, आसाम] (५) उत्कल [बिहार का दक्षिणी ओर, उड़ीसा, कलिङ्ग], इसमें ६ वर्ष की अवधि तो गलत है किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि हर्ष सारे उत्तर भारत का अधिपति (सकलोत्तरापथनाथ) हो गया।"

हर्ष ने दक्षिणकी ओर भी अपना कदम बढ़ाया परन्तु चालुक्यराज्य पुलकेशिन् द्वितीय की सेनाओं के आगे उसकी सेनाएँ न ठहर सकीं और उसे वापिस आना पड़ा।

शासन प्रबन्ध

गुप्त साम्राज्य की तरह हर्ष का साम्राज्य भी प्रान्तों में विभक्त था। प्रान्तों को भुक्ति कहते थे। भुक्ति विषयों में विभक्त थे। विषय पठकों में और पठक गांवों में विभक्त थे। प्रान्तों के अधिकारी उपरिक, महाराज, गोप्ता, राजस्थानीय, राष्ट्रीय, राष्ट्रपति, भोगपति आदि कहलाते थे। प्रान्तीय अध्यक्षों की नियुक्ति सम्राट स्वयं करता था। ये लोग अपने अधीनस्थ अधिकारियों की नियुक्ति करते थे। विषय पतियों को भी यथेष्ट अधिकार प्राप्त थे। ग्राम का प्रमुख अधिकारी ग्रामिक होता था। विषयपति के नीचे अष्ट कुलाधिकरण, शौल्किक (शुल्क वसूल करने वाला) गौल्मिक (वन उपवनों का निरीक्षक), ध्रुवाधिकरण (भूमि कर विभाग का अध्यक्ष), भाण्डागाराध्यक्ष (भण्डार का स्वामी), तलवाटक (गाँव का लेखा रखने वाला), पुस्तपाल, अक्षपटलिक (सरकारी कागजों का संरक्षक) आदि अधिकारी रहते थे।

उपरोक्त विभागीय अध्यक्षों के रहते हुए हर्ष का शासन केन्द्रीय शासन था। राजातिराज, परमभट्टारक, महाराजाधिराज, चक्रवर्ती, सार्वभौम, परमेश्वर, परमदैवत आदि अनेकों उपाधियों से सम्राट विभूषित था। युद्धक्षेत्र में अथवा शान्ति की दशा में सम्राट ही समस्त सेनाओं का सर्वोच्च सेनापति था।

राजकीय आय व्यय के साधन

राजस्व के चार प्रधान साधन थे, (१) उद्रङ्ग [भूमिकर], (२) उपरिकर [कृषकों पर] (३) धान्य, (४) हिरण्य [खनिज पदार्थों पर], राज्य की आय का प्रधान स्रोत भूमिकर था। कर हल्के लगाए जाते थे। सम्राट की कर सम्बन्धी नीति उदार थी।

हुयेनसङ्ग के अनुसार आय का व्यय चार प्रकार से होता था। (१) धार्मिक कृत्यों पर, (२) सरकारी अधिकारियों पर, (३) विद्वानों को पुरस्कार और वृत्तियाँ, (४) दान धर्म।

राजकीय सेना

हर्ष के शासन में एक विशाल सेना का अस्तित्व था, उसकी संख्या लगभग ६ लाख थी सेना तीन भागों में विभक्त थी। (१) पदाति, (२) अश्वारोही, (३) गज। प्रधान सेनापति को 'महासन्धिविग्रहाधिकृत' कहते थे, उसको युद्ध और सन्धि करने का अधिकार था। उसके नीचे 'महाबलाधिकृत' को सैन्य संचालन का पूर्ण अधिकार था। प्रधान सेनापति के अधीनस्थ बलाधिकृत, सेनापति, वृहदश्ववार, कटुक और महाश्वपति आदि थे।

सामान्य दशा

हर्ष की शासन व्यवस्था गुप्तवंशीय आधारों पर ही स्थित थी। आवश्यकतानुसार हर्ष ने उसमें संशोधन और परिवर्धन कर लिए थे। हुयेनसङ्ग ने राजा और प्रजा के सम्बन्धों का वर्णन करते हुए लिखा है कि सरकारी शासन सत्यसंधता के आधारों पर संचालित है अत: प्रजा के राजा के साथ पारस्परिक सम्बन्ध अच्छे हैं। यही कारण है कि अपराधी थोड़े हैं। हुयेनसङ्ग लिखता है कि राजद्रोह के लिए आजीवन कारावास, सामाजिक अपराधों के लिए अङ्ग-भङ्ग अथवा देशनिर्वासन आदि का दन्ड दिया जाता था। अभियोगों की जाँच में और प्रमाणों के साथ चार प्रकार के दैवी प्रमाणों का भी उपयोग होता था यथा (१) जल, (२) अग्नि, (३) तुला, और (४) विष।

हर्ष अपने व्यक्तिगत सुख की चिन्ता न कर निरन्तर राजकीय और प्रजाहित के कार्यों में ही लगा रहता था। वर्षा ऋतु को छोड़कर वर्ष के अवशिष्ट दिनों में वह बराबर राज्य के प्रदेशों में भ्रमण करता और जनजीवन की कठिनाइयों का स्वयं अनुभव प्राप्त करके उनके निराकरण के उपायों को कार्यान्वित करता था।

हर्ष की दानशीलता भी महान थी। उसने अपने विशाल राज्य में बहुत सी परोपकारी और धमार्थ संस्थाओं का निर्माण कराया। अनेकों मन्दिर, चैत्य, विहार और स्तूप बनवाये। वह दान, पुन्य, धार्मिक कृत्यों और अनुष्ठानों पर अपार धन व्यय करता था। उसने प्राचीन हिन्दू राजाओं की उदार धर्मनीति का अनुसरण किया। उसके राज्य में हर पाँचवे वर्ष प्रयाग में एक महान् धर्मोत्सव होता था। गङ्गा यमुना का सङ्गम उत्कृष्ट दान भूमि समझी जाती थी। इस अवसर पर लाखों का जनसमूह एकत्रित होता था। साधुओं, भिक्षुओं अनाथों और दरिद्रों को हर्ष करोड़ों की सम्पत्ति दान करता था। राज्य की पाँच वर्ष की आय को व्यय करने की यह पंचवर्षीय योजना थी। ऐसी अनुश्रुति है कि इस उत्सव से केवल अपने वस्त्र पहिने हुए सम्राट खाली हाथ राजधानी को लौटता था, समस्त राजकीय कोष इस पञ्चवर्षीय दानोत्सव के फलस्वरूप रिक्त हो जाता था।

यद्यपि हर्ष बौद्धधर्म से प्रभावित था इस समय व्यापक एवं सार्वभौम भारतीय धर्म वैदिक ही था। वैदिक धम बौद्धधर्म और जैनधर्मों को भी आत्मसात् करता जा रहा था। हुयेनसङ्ग ने लिखा है कि भारत ब्राह्मणों का देश है। उस समय विष्णु, शिव, सूर्य, दुर्गा, पार्वती आदि की उपासना एवं पूजा होती थी।

हुयेनसङ्ग ने लिखा है कि भारत में वैदिक धर्म के साथ बौद्ध धर्म भी प्रचलित था परन्तु उसके अनुयायियों की संख्या में निरन्तर ह्रास हो रहा था। हुयेनसङ्ग ने अपनी यात्रा में बौद्ध संघारामों और विहारों को समस्त देश में पाया। हर्ष के समय में वैदिक धर्म में भक्ति मार्ग का जोरोंसे प्रचलन हो रहा था। धर्म के इस स्वरूप से बौद्ध धर्म भी प्रभावित हुआ और उसमें महायान की उन्नति विशेष रूप से हुई। ऐतिहासिक विद्वान बौद्ध धर्म के ह्रास को नीचे लिखे कारणों से सम्बद्ध करते हैं (१) वैदिक धर्म का पुन: अभ्युदय, (२) वैदिक मीमांसकों द्वारा बौद्ध धर्म की धज्जियाँ उड़ाया जाना, (३) बौद्ध संघारामों में भिक्षुओं के उपदेशातमक जीवन के स्थान पर ऐश्वर्य एवं विलासिता पूर्ण जीवन, (४) भिक्षु भिक्षुणियों के सम्पर्क से जनित व्यभिचार तथा (५) वैदिक धर्म की अन्य धर्मों को आत्मासात् करने की क्षमता।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

शिक्षा और साहित्य

शिक्षा गुरुकुल की प्रणाली पर आधारित थी। बौद्ध बिहार और संघाराम भी विद्या के केन्द्र थे। जैसा कि हुयेनसङ्ग ने लिखा है बौद्ध बिहार और संघाराम समस्त उत्तर भारत में फैले हुए थे। नालन्दा महाबिहार शिक्षा का महान् केन्द्र था। इसमें ६ विद्यालयों के विशाल भवन सम्मिलित थे। महाबिहार में एक विशाल पुस्तकालय था जिसको 'धर्मगंज' कहते थे। महाबिहार का व्यय चलाने के लिए राज्य की ओर से २०० गाँवों की आय बांध दी गई थी। इसमें विद्यार्थियों की शिक्षा और भोजन की व्यवस्था निःशुल्क थी। इस महाबिहार में एक सहस्र अध्यापक और दस सहस्र विद्यार्थी थे इस बिहार के विद्यालयों में अध्यात्म, योग, तंत्र, शिल्प, रसायन, चिकित्सा व्याकरण और न्यायशास्त्र आदि विषयों की शिक्षा दी जाती थी। महाविद्यालय के सर्वोच्च अधिकारी को 'धर्मकोष' कहते थें जिसकी कि आधुनिक संज्ञा चाँसलर है। कर्मदान (प्रो चांसलर) स्थविर (वाइस चांसलर) और द्वारपण्डित (रजिस्ट्रार) आदि अन्य शिक्षा-अधिकारी थे।

हर्ष के राज्यकाल में काव्य, नाटक, कथा, उपाख्यान, दर्शन, अध्यात्म, गणित, ज्योतिष आदि विषयों पर अनेक उच्चकोटि के ग्रन्थों की रचना हुई। हर्ष स्वयं एक उत्तम लेखक था। रत्नावली, प्रियदर्शिका, नागानन्द नामक ग्रन्थरत्न हर्ष रचित है। हर्ष का लेख अति सुन्दर था। महाकवि बाण हर्ष के राजकवियों में था। बाण की रचनायें हर्षचरित, कादम्बरी, चंडिशतक, पार्वती परिचय आदि अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। बाण का श्वसुर मयूर भी हर्ष के दरबार में था। इनके अतिरिक्त हरिदत्त, जयसेन, मातङ्गदिवाकर आदि विद्वान् लेखक हर्ष की राजसभा को सुशोभित करते थे। भारवि, कुमारदास, दन्डी, सुबन्धु, रविकीर्ति, भूषण, महेन्द्रवर्मा, कुमारिल, ब्रह्मगुप्त आदि विद्वान् एवं साहित्यकार हर्ष के पार्श्ववर्ती युग में उत्पन्न हुए।

मध्यप्रदेश के रायपुर जिले में सिरपुर का लक्ष्मण मन्दिर और शाहाबाद में भबुआ के पास मुन्डेश्वरी देवी का मन्दिर हर्षकाल की वास्तुकला के उत्कृष्ट नमूने हैं। इस काल में हिन्दू, बौद्ध जैन अनेक मूर्तियों और मन्दिरों का निर्माण हुआ। अजंता की चित्रकला के कुछ भाग का निर्माण इस युग में हुआ था।

हर्ष ने सन् ६०६ ई० से ६४८ ई० तक ४२ वर्ष तक राज्य किया। उसकी अनियन्त्रित दानशीलता से राज्य सत्ता को आर्थिक क्षीणता का सामना करना पड़ा। इसके परिणाम स्वरूप उसके शासन के अन्तिम दिनों में कुछ शिथिलता सी आ गई। हर्ष के बाद उसके मन्त्री अरुणाश्व ने राज्य पर अपना अधिकार जमा लिया कारण उसकी मृत्यु के उपरान्त बिघटनकारी तत्व जोर पकड़ने लगे थे। कान्यकुब्ज राज्य फिर बहुत शीघ्र मौखरियों के अधिकार में चला गया।

——

पत्र व्यवहार--

ब्रज-भाषा और राष्ट्र-भाषा

माननीय श्री बृन्दावनदास जी, सम्पादक 'व्रज-भारती', मथुरा।

आपका कृपा पत्र प्राप्त हुआ। धन्यवाद। भाद्रपद की 'व्रज-भारती' में आपका सम्पादकीय लेख 'हिन्दी सम्बर्द्धिनी योजना' शीर्षक पढ़ा। आपका यह विचार ठीक है कि जनपदीय शब्दों, मुहावरों, लोकोक्तियों आदि से हिन्दी का भण्डार भरा जाए। मैं तो समझता हूँ, राष्ट्र-भाषा हिन्दी में जितना अपनापन आता-समाता रहे उतना ही अच्छा है। इसमें सन्देह नहीं कि 'व्रज-भाषा' वर्त्तमान खड़ी बोली की जननी है। इसी बलवती भाषा के आधार पर खड़ी बोली सैंकड़ों वर्षों से खड़ी है। मुगल शासन में जब हमारी 'गद्य-भाषा' (खड़ी बोली) में अरबी, फारसी और तुर्की के शब्द मिलाये जाने लगे तो उसी का नाम 'उर्दू' हो गया है। उर्दू तुरकी भाषा का शब्द है—अर्थ है फ़ौज या फ़ौज के रहने की जगह। उर्दू भाषा तो नाम रखा गया परन्तु उर्दू का कोई शब्द नहीं है। 'व्रज बोली' में भी अरबी, फारसी, तुर्की आदि भाषाओं के शब्द व्यवहृत होने लगे हैं। यथा—

'तोय खबरै वो कब आवेगो—ख़बर (अरबी), 'मोय का मालुमै' मालूम (अरबी)।

'वो तो बजार कूँ सौदा खरीदवे गयौ ए' 'बाज़ार', (फ़ारसी), 'सौदा' (तुरकी) और ख़रीद (अरबी)। इसी प्रकार 'रस्ता', दुकान, बजाज, हलुआ, हलवाई, जल्दी, देरी, दबात, मजबूर, लाचार, अमीर, गरीब, बेचारा, तकिया, मसनद, लत्ता, स्याही, दवा, ऐनक, किताब, चश्मा, कुर्त्ता, पाजामा, मेज़, कुर्सी, इत्यादि सैकड़ों, अरबी, फ़ारसी तथा तुर्की के शब्द जनपदीय भाषा या व्रज बोली में स्वाभाविक रीति से मिल गये हैं। गद्य में भी उन्होंने अच्छा स्थान पा लिया है। अँग्रेजी भाषा के भी अनेक शब्द स्पष्ट रूप से व्यवहृत होने लगे हैं और होंगे। इसी प्रकार अँग्रेजी भाषा में भी विभिन्न विदेशी भाषाओं के शब्द मिल गये हैं। 'वरंडः', 'पौरक' आदि संस्कृत शब्द हैं जो अँग्रेजी में जाकर Veranda और Park बन गये। अर्थात् बरामदा और नगर-निकटवर्ती उपवन। संस्कृत में भी वरंडः एवं 'पौरक' के ये ही अर्थ हैं।

अभिप्राय यह कि 'बोली' और भाषा में परिवर्तन तथा विविध भाषाओं के शब्दों का हेल-मेल होता ही रहता है। ये भाषाएँ स्वाभाविक रीति से जैसी चलती हैं, चलती रहेंगी। 'व्रज-भाषा' अब गद्य की भाषा नहीं रही। पहले भी बहुत कम थी। हाँ, कविता की भाषा वह अवश्य रहनी चाहिये और अधिक से अधिक कविताएँ उसमें लिखी जानी चाहिएँ। खेद है कि व्रज-भाषा में कविता लिखना प्रायः कम होता जाता है। यह अच्छी बात नहीं है। व्रज-भाषा में बड़ा माधुर्य है, उसमें जितनी अधिक कविताएँ लिखी जा सकें, लिखी जानी चाहिये। कविताओं का विषय केवल भगवत्-भक्ति-भाव प्रदर्शन करना न हो बल्कि लोकोपयोगी सभी विषयों पर व्रज-भाषा में कविताएँ लिखी जाएँ। लोक-कल्याण और राष्ट्रोत्थान, कविताओं का मूलाधार हो। व्रज-भाषा में रची ऐसी कविताएँ बहुत लोक-प्रिय सिद्ध होंगी। इस ओर 'व्रजसाहित्य-मण्डल' को सर्वात्मना सचेष्ट होने की आवश्यकता है।

ग्रामों में तो अब भी व्रज-भाषा ही बोली जाती है। हम चाहते हैं, पुरों और नगरों में भी, व्रज-वासी, व्रज-भाषा ही बोलें। अपने घर-गृहस्थ में और साधारण काम-काजों में व्रज-भाषा ही बोली जाए। इससे 'खड़ी बोली' हिन्दी की माता की प्रतिष्ठा अवश्य बनी रहेगी और उसका सार्वजनिक आदर-सत्कार होता रहेगा।

हिन्दी भाषा के समर्थक अपने नामों को न बिगड़ने दें। अर्थात् उल्फ़त सिंह, इक़बाल-नरायन, बख्तावर सिंह, मुन्शीराम, बाबूलाल, मशालसिंह, खैरातीलाल, मुसद्दीलाल इत्यादि नाम रखने-रखवाने की बेढङ्गी प्रणाली को सर्वथा त्याग दें। एन. के. शर्मा, डी. एल. वर्मा, सी. डी. गुप्त, पी. के. शुक्ल, एच. जी मिश्र इत्यादि नामों का हिन्दी में प्रयोग अति अनुचित है। दुकानों और घरों पर पाटियाओं (साइनबोर्डों) को लगाते हुए भी इन बातों का विचार रखना चाहिये।

आज राष्ट्रभाषा हिन्दी है और उसकी माता व्रज-भाषा है। हमें राष्ट्रभाषा-प्रचार एवं व्रज-भाषा-विस्तार के लिये पूर्ण रूप से प्रयत्नशील होना चाहिये! यही मेरी विनीत विनती है।

शङ्कर-सदन, आगरा। —हरिशंकर शर्मा

स्याम बिना सीत

सीत सहेजै सखि, स्याम-सुधि सी-सी सी,
सीरी-सीरी सांस सौति संग सहरावत है।

हाथ-पाँम ठिठुरे, कटकटी बँधी दाँतन में,
पानी भयौ पारौ, अंगन चेंटी-सी चलावत है॥

अइयौ मत सीत, मीत 'मोहन' बिन, अइयौ मत,
अघानेन् पै बैठे ब्रजवासी अकुलावत है।

स्याम बिना सीत, भयौ मरनौ ब्रजमण्डल माँहि,
स्यामसुधि सी सी सी मरत हू जिवावत है॥

—मोहनलाल शर्मा

प्रागऐतिहासिक काल के कुछ ऐतिहासिक तत्व

लेखक—श्री वृन्दावनदास

पुरातत्ववेत्ताओं का अनुमान है कि आज से लगभग ६ लाख वर्ष पूर्व इस पृथ्वी पर जीवों की उत्पत्ति होना आरम्भ हो गया था । इन जीव धारियों में एक मनुष्य भी था । आरम्भ में मनुष्य भी पशुओं की भाँति जीवन व्यतीत करता था । ऐसा प्रतीत होता है कि मनुष्य ने वन के पशुओं की तरह लाखों वर्ष तक जंगली जीवन व्यतीत किया । उस समय मनुष्य छोटे-छोटे समूहों में रहते थे और भोजन की तलाश में एक स्थल से दूसरे स्थल को चले जाते थे । वे नग्नावस्था में रहते तथा कन्दमूल फल खाकर क्षुधा शान्त करते थे । धीरे-धीरे मनुष्य पत्थर का प्रहार कर पशुओं को मारने और उनका माँस भक्षण करने लगे । विश्व के अनेक भागों में प्रस्तरीय अस्त्र उपलब्ध हुए हैं जो आकार प्रकार में लगभग एकसे हैं । ये आयुध इस बात के द्योतक हैं कि आज से लाखों वर्ष पूर्व मनुष्य भ्रमणशील थे और पत्थरों के अनेक हथियारों से पशुओं का आखेट किया करते थे । फिर वह पशुओं के चर्म से अपने आपको ढक कर शीतावस्था व उष्णता से अपनी रक्षा करने लगे । पत्थर के इस प्रयोग के कारण ही लाखों वर्ष वाली अवधि के इस लम्बे युग को प्रस्तर युग कहते हैं ।

भ्रमण करते-करते जब मनुष्यों को थकान मालूम देने लगी तो उन्हें एक स्थान पर बसने की इच्छा हुई । एक स्थान पर बसने के लिये भोजन की व्यवस्था आवश्यक है । मनुष्य की इस इच्छा का परिणाम ही कृषि और पशुपालन का आविष्कार है । कृषि के लिये धातु के आयुधों का निर्माण हुआ और मनुष्य खेती तथा पशुपालन का कार्य करने लगे । प्रस्तरयुग के बाद जिस युग में अस्त्र-शास्त्रों के निर्माण में धातुओं का प्रयोग होने लगा उसको ताम्र-युग कहते हैं । ऐसा प्रतीत होता है कि ताम्रयुग आज से दस पंद्रह हजार वर्ष पूर्व अस्तित्व में था । यह अनुमान लगाना कठिन है कि इस युग का अस्तित्व दस पंद्रह हजार पूर्व कितने काल तक रहा । ये तो रही मनुष्य के आदि काल की बात । अब हमें यह देखना है कि इतिहास की दृष्टि से विश्व की अनेक सभ्यताओं का जन्म किस प्रकार हुआ और हिन्दू सभ्यता से इन सभ्यताओं का क्या सम्बन्ध था ।

आर्यों का मूल निवास स्थान कौनसा था इस पर मतभेद है । कुछ पुरातत्वज्ञों का मत है कि आर्यों का मूल स्रोत मध्य ऐशिया था, दूसरे इसे कास्पियन सागर का प्रदेश अथवा दक्षिणी रूस, अथवा ईरान और सप्तसैन्धव (आधुनिक पंजाब) बतलाते हैं । लोकमान्य तिलक अपने ग्रन्थ (Arctic home in the vedas) में वेद-सूक्तों के आधार पर आर्यों का घर आर्कटिक (उत्तरी ध्रुव) प्रदेश को बताते हैं जहां दीर्घकालीन ऊषा और एक वर्ष का अहोरात्रि होता है ।

विद्वज्जनों ने विश्व की समस्त भाषाओं की समानता के आधार पर यह मत स्थिर किया है कि इन भाषाओं के बोलने वाले एक ही श्रेणी या वर्ग के लोग थे । डा० सत्यकेतु विद्यालङ्कार ने अपनी पुस्तक 'भारतीय संस्कृति और उसका इतिहास' में लिखा है, 'इटालियन, फ्रेंच, स्पैनिश, ग्रीक,केल्टिक, जर्मन, इंग्लिश, ट्यूटानिक, स्लावोनिक, लिथुएनियन, लैटिन, अल्वेनियन आदि यूरोपीय भाषायें उत्तरी भारत की हिन्दी, पञ्जाबी, मराठी, गुजराती, उड़िया, बङ्गला आदि भाषायें और पश्चिमी एशिया की जेन्द, पर्शियन, पश्तो, बलूची, कुई और आरमीनियन भाषायें एक

ही विशाल भाषा परिवार की अङ्ग हैं।" भारतीय समस्त भाषाओं की जननी संस्कृत है। यह कहना कठिन है कि पाश्चात्य समस्त भाषाओं की माता कौन सी भाषा है परन्तु जब यह स्थिर किया जा चुका कि भाषाओं में समानता है तो यह निष्कर्ष समीचीन होगा कि संस्कृत ही समस्त भाषाओं की आदि जननी है और संस्कृत भाषा आर्य जाति की है। आर्य जाति के लोग एक स्थान से चलकर विश्व के अनेक भागों में फैल गए। भारतमें भी आर्य कई दिशाओं से आए और यहां मूल निवासियों से जिन्हें दस्यु अथवा अनार्य कहा जाता है उनके भयङ्कर युद्ध हुए। अपनी विशेष योग्यता और सामर्थ्य के कारण आर्यों की अनार्यों पर विजय हुई और वे भारत में स्थान-स्थान पर अनेक प्रदेशों में बस गए। अनार्यों पर आर्यों की वैदिक सभ्यता का बड़ा उत्तम प्रभाव पड़ा और उन्होंने आर्यों के बहुत से क्रिया-कलापों को अपना लिया। आर्यों ने बहुत सी अनार्य स्त्रियों से विवाह सम्बन्ध स्थापित कर लिए और शनैः शनैः समस्त अनार्य जाति हिन्दू समाज में घुल मिल गई।

हड़प्पा और मोहन्जोदड़ों की खुदाई से सिंधु घाटी की सभ्यता का अनुमान लगाया जाता है। खुदाई से जो भग्नावशेष मिले हैं उनमें भग्न भवनों की पंक्तियां सड़क के दोनों ओर मिली हैं। दीवालों की ऊँचाई २५ फीट है। स्नानगृहों और नालियों की रचना सुन्दर ढङ्ग से की गई है। अवशेषों से ज्ञात होता है कि किसी समय इनके स्थान पर भव्य भवनों की पंक्तियां होंगी। हड़प्पा और मोहन्जोदड़ों दो पूरे नगरों के अवशेष है जिनसे तत्कालीन विशाल नगरों और उनकी सभ्यता का अनुमान लगाया जा सकता है। शिल्प की बहुत सी वस्तुयें, हाथीदाँत के फूलदान और आभूषण आदि प्रचुर सामग्री उपलब्ध हुई है जिससे तत्कालीन कला और संस्कृति की उच्चता का बोध होता है। कुछ लोग मोहन्जोदड़ो और हड़प्पा की सभ्यता में मैसोपोटामियाँ की सुमेरियन सभ्यता का रूप देखते हैं जिसका काल ४००० वर्ष पुराना ठहराया जाता है। कुछ अन्य लोग इसको दस्यु सभ्यता का नाम देते हैं। उनका मत है कि ये ही लोग आर्यों के आगमन के पूर्व भारत के मूल निवासी थे और इन्हीं को पराजित करके आर्य लोग भारत में बसे। जो भी हो, हिन्दू जाति वही है जो यहां मूलनिवासियों और आर्यों के मिश्रण से बनी। शक, हूण, यवन, कुशाण आदि भी पीछे बड़ी संख्या में हिन्दू जाति में प्रविष्ट हो गए।

हिन्दू सभ्यता बड़ी व्यापक और विस्तृत है। इसमें मनुष्यों को आत्मसात् करने की अपूर्व क्षमता है। ऋग्वेद संसार का सबसे प्राचीन ग्रन्थ है। इससे प्राचीन ग्रन्थ वर्तमान समय में प्राप्त नहीं है। प्रोफेसर मैक्समूलर का मत है कि ऋग्वेद का निर्माण ईसा से २५०० वर्ष पूर्व हुआ। उनका विश्वास है कि जिस सभ्यता का ऋग्वेद में वर्णन है वह तो २५०० वर्ष ई० पू० से भी बहुत पुरानी है। आधुनिक पुरातत्ववेत्ता तो ऋग्वेद को ८००० वर्ष पुराना ग्रन्थ मानते हैं। कुछ भी हो, यह निश्चित है कि ऋग्वेद की रचना ईसा से हजारों वर्ष पूर्व हुई। ऋग्वेद की प्राचीनता ही हिन्दू सभ्यता की प्राचीनता को सिद्ध करने में यथेष्ट है। पाश्चात्य पुरातत्ववेत्ता भी ऋग्वेद को संसार का प्राचीनतम ग्रन्थ मानते हैं।

भारतीय आर्यों के इतिहास का प्राचीनतम युग वैदिक युग है। वेद आर्यों के प्राचीनतम ग्रन्थ हैं। वेदों के अध्ययन से भारतीय सभ्यता, संस्कृति और धर्म की जानकारी प्राप्त की जा सकती है। वैदिक सूक्तों में ऋषियों के विचार और उनकी चिन्तनशैली उन्हीं के शब्दों के अविकल रूप में प्रस्तुत है और इसी कारण हिन्दुओं की सभ्यता, संस्कृति, और धर्म का परिचय प्राप्त करने

के लिए वेदों का आश्रय प्रचुर मात्रा में लिया जाता है । वेद व्यास ने वैदिक सूक्तों का संहिता के रूप में संग्रह किया । वैदिक संहितायें चार हैं । ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद । जिस प्रकार वैदिक संहितायें आर्यों के धर्म और सभ्यता का दर्पण हैं उसी प्रकार पुराणों में आर्यराजवंशों के साथ सम्बन्ध रखने वाली अनुश्रुति संग्रहीत हैं । आर्यों की अत्यन्त प्राचीन ऐर्यतिहासिक अनुश्रुति सूत चारण मागधों में चली आ रही थी । कृष्णद्वैपायन वेद व्यास ने राजवंशों की इस अनुश्रुति का भी संग्रह किया । इसी संग्रह को अठारह पुराण कहते हैं । यद्यपि महर्षि वेदव्यास को पुराणों का कर्त्ता कहा है वे वास्तव में पुराणों के संकलनकर्त्ता थे ।

पुराण ऐतिहासिक सामग्री के अमूल्य भन्डार हैं । पुराणों के वर्णन बड़े मनोरंजक तथा पान्डित्यपूर्ण हैं । उन वर्णनों में भारतीय इतिहास की सामग्री निहित है । यह तो निर्विवाद है कि वे वर्णन अतिरंजित हैं तथा समय-यापन के परिणाम स्वरूप उनमें कुछ असङ्गत एवं काल्पनिक बातों का समावेश हो गया है । यदि हम अपनी बुद्धि के द्वारा पुराणों से प्रक्षिप्त अंश का आवरण हटा सकें तो हमें भारतीय इतिहास का निर्मल चित्र प्रतीत होने लगता है । भारतीय इतिहास के अतिरिक्त पुराणों में सृष्टि की उत्पत्ति का वर्णन तो विस्तारपूर्वक है ही उनमें विश्व के इतिहास की भी किंचित् झलक दिखाई देती है ।

इतिहासकारों ने विश्व के इतिहास-काल को दो भागों में बांट दिया है । (१) प्रागऐतिहासिक, (२) ऐतिहासिक । हमारा आशय तो पुराणों से भारतीय इतिहास के प्राचीनतम काल की उस सामग्री को निकालने का है जिसका कि तारतम्य आधुनिक इतिहास से मिल सके । वास्तव में हमारे पुराण तथा कथित प्रागऐतिहासिक काल पर सीधा प्रकाश डाल रहे हैं और हमें अनुसन्धान के आधार पर इस निष्कर्ष पर पहुँचने को बाध्य कर रहे हैं कि प्रागऐतिहासिक काल रूपी कल्पना निराधार है । पुराण इस ओर संकेत करते हैं कि प्रागऐतिहासिक नाम की कोई वस्तु नहीं, भारतीय इतिहास की शृङ्खला तो आदि काल से ही बनाई जा सकती है ।

'ब्रज का सांस्कृतिक इतिहास' शीर्षक अपने ग्रंथ में ब्रज के मूर्धन्य साहित्यकार श्रीप्रभुदयाल मीतल पृष्ठ २७१ पर इस प्रकार लिखते हैं ।

"वेदों में, रामायण, महाभारत और पुराणों में तथा उनके साथ जैन बौद्धों के आगम-पुराण और जातकादि में इस देश के प्राचीनतम इतिहास की सामग्री मिलती है—इतिहास और पुरातत्व के विद्वान् पहिले उक्त ग्रन्थों की ऐतिहासिक सामग्री को ऐतिहासिक महत्व नहीं देते थे । वे लोग मूर्तियों, शिलालेखों, सिक्कों, तथा प्राचीन इमारतों आदि के अवशेषों को ही प्रामाणिक ऐतिहासिक सामग्री मानते थे । जब से विभिन्न विद्वानों ने भारत के उन प्राचीन ग्रन्थों और विशेषतया पुराणों का गम्भीर अध्ययन कर अपने निष्कर्ष प्रस्तुत किए हैं तब से इतिहास और पुरातत्व के विद्वानों को भी भारत की इस गौरवशाली निधि का ऐतिहासिक महत्व स्वीकृत हो गया है । अब वे रामायण, महाभारत और पुराणों की वंशावलियों सहित उनके इतिवृत्तों को तथा वौद्ध जैन धर्मों की अनुश्रुतियों को भारतीय इतिहास के लिए आवश्यक और उपयोगी साधन समझने लगे हैं । इस विपुल सामग्री की सहायता से अब अनेक विद्वान् प्राचीन काल से ही भारतवर्ष का इतिहास प्रस्तुत करने के लिए सचेष्ट हैं ।"

ब्रज का सांस्कृतिक पर्व गुरु पूर्णिमा

(श्री शर्मनलाल अग्रवाल)

गुरु पूर्णिमा का देश व्यापी महत्व है। इस दिन का ब्रज-प्रदेश और विशेषतः गोवर्धन क्षेत्र के लिए महत्व है। यहाँ गिरिराज पर्वत है जो देश की लाखों करोड़ों जनता की श्रद्धा का पात्र बना हुआ है। पर्वत लगभग ५ मील लम्बा है, एक ओर पूंछरी और राधाकुन्ड के समीपवर्तीय क्षेत्र तक फैला हुआ है। इस पावन पर्वत श्रेणी के साथ भक्त जनों की अनेक भावनायें जुड़ी हुई हैं। वैसे तो पूरे वर्ष भर गिरिराज की परिक्रमा लगती रहती है किन्तु आज पूर्णिमा के दिन इसका बड़ा ही महत्व है। देश के विभिन्न भागों से लाखों ही नर-नारी इस पर्वत-राज की परिक्रमा करने आज गोवर्धन पहुँचते हैं। इनके पावन रज को माथे पर चढ़ाकर एवं मानसी गङ्गा में स्नान करके अपने जीवन को धन्य मानते हैं। आज ब्रज प्रदेश में केवल एक ही स्वर सुनाई देता है—"बोल गिरिराज महाराज की जय", "बोल श्री राधे" देश के विभिन्न प्रदेशों से आए हुए अलग-अलग बोली बोलने वाले, विभिन्न वेशधारी स्त्री. पुरुष एवं बालकों के मुख से केवल एक ही स्वर सुनाई देता है। "बोल गिरिराज महाराज की जै", "बोल श्री राधे" ब्रज लोक गीतों में इसकी महिमा के गीत भरे पड़े हैं। स्त्रियां अपने गांवों से निकल कर इसकी ओर आती हुई एक स्वर में गा उठती हैं—

"नाई मानें मेरो मनुआ मैं तो गोवर्धन कूँ जाऊँ मेरी वीर।
सात कोस की दै परिक्रमा, मानसी गङ्गा नहाऊँ मेरी वीर॥

दूसरी ओर भक्त जनों का समूह परिक्रमा लगाता हुआ प्रेम से गाता चला जाता है—

"भज लै सात कोस वारे को, तेरे पूर्ण होय सब काम।
तेरे पूर्ण होय सब काम, तेरे सिद्ध होय सब काम॥
ब्रज की रज तिय ताप नसावन, काम क्रोधमद मोह भगावन।
सब विधि सौं पवित्र मन भावन सुख शोभा को धाम॥

यह गिरिराज दानघाटी के स्थल पर आकर भक्तों की श्रद्धा का और भी अधिक पात्र बन जाता है। सैकड़ों वर्षों से चली आती हुई श्रद्धा की भावनायें इन भक्तों के मुख से निकल कर एक साथ ही साकार हो उठती है। भक्त-जन झूम-झूम कर गाने लगते हैं——

"जय-जय गोवर्धन महाराज, नाथ तुम भक्तन हितकारी।
नाथ तुम भक्तन हितकारी, नाथ तुम सन्तन हितकारी॥
दान घाटी वारे गिरि राज, रखियो जन अपने की लाज।
पूजा लई छुड़ाई, इन्द्र ने कोप कियो भारी॥

लोक गीतों में ही नहीं, ब्रज के साहित्यमें गोवर्धन की महिमा भरी पड़ी है। प्राचीन और नवीन अनेक कवियों ने इस लोकोपकारी गिरिराज पर्वत पर जो उनके लिए स्वयं भगवान् कृष्ण का ही स्वरूप है अनेक श्रद्धा के फूल चढ़ाए हैं—

श्री गोवर्धन छवि समुदाई, नाहिन वरन काहु पैं जाई।
जाकी पटतर कों नहि आना, बन अद्भुत अद्वैत वखाना।
ऐसी कछु परत है हेरो, है साकार वपुष प्रभु केरी।
नित्त धाम ता ही ते गायौ, ये पटतर मेरे मन भायौ।
सुख निधि, रस निधि, रूप निधि, गोवर्धन भवसार।
सारद, नारद, सेस, सिव बरनत विधि श्रुति सार।।

एक दूसरे कवि ने इसी गिरिराज महिमा को इस प्रकार प्रकट किया है—

वज्र कुवेर सेवें, भूम गिरि मेरु सेवे, रंभा-उमाहेरि सेवे, सुक सुमंदला।
गिरिजा गनेस सेवे, सारदा दिनेस सेवे, नारद महेस सेवे, गावें गीत छंदला।
बुद्ध जन धीर सेवे, ‘‘नराइत’ वीर सेवे, सकल अहीर सेवे ध्यान मत मंदला।
सुर सिरताज सेवे, नंद महाराज सेवे, सेवे ब्रज राज राज गिरिवर की कंदला।।

संस्कृत के कवियों ने भी अधिका विधि से इस गिरिराज की महिमा का वर्णन किया है—

यत्र गोवर्धनो नाम सुनिर्झर दरायुतः
रत्न धातु मयः श्री मान सुपक्षिगण संकुलः

जहाँ कोमल तृण-जल-मधुर कन्द मूल फल से गो-गोप गोपी आदि ब्रज-वासियों की सर्वविधि सुख सम्पदा का सम्पादक, अपने कल-कल करते हुए निर्झर सम्पात और स्वच्छ विशाल सुखद कन्दराओं के द्वारा सुख-सेवा, विचित्र रत्न धातुमय हरिदास वर्य गिरिराज गोवर्धन विलक्षण शोभा से विभूषित होकर शुक पिक मयूर मधुकरों के कलरव द्वारा भगवान की परिचर्या स्तुति करता विराजमान है।

इस गिरिराज की उत्पत्ति के सम्बन्ध में ‘गर्ग संहिता’ में एक कथा आती है।

भूमि का भार उतारने के लिए देवताओं से प्रार्थना करने पर भगवान श्री कृष्ण ने भू-लोक में अवतार ग्रहण की प्रतिज्ञा कर अपनी प्राण-प्रिया श्री राधिका को यह समाचार सुनाया उनने यह समाचार सुनकर कहा कि आपके वियोग में मेरा जीवित रहना सम्भव नहीं तब श्रीकृष्ण ने आज्ञा की कि—आपको साथ में ही लेकर मैं भूमि पर अवतार लूँगा। इस पर श्री राधिका फिर बोली कि—

यत्र वृन्दावन नास्ति, यत्र नो यमुना नदी।
यत्र गोवर्धनों नास्ति, तत्र में न मनः सुखम्ः।।

यह सुनकर भगवान् श्री कृष्ण ने गोलोक से मनुष्य लोक में चौरासी कोस भूमि एवं इस गोवर्धन पर्वत को भेज दिया।

इसकी उत्पत्ति के सम्बन्ध में और दूसरी पुराणों के अनुसार इसकी उत्पत्ति द्रोणाचल पर्वत से है। ब्रज में उन्हें पुलत्स्य ऋषि लेकर आए थे। गिरिराज जी ने उनसे वचन लिया था वे

जहां भी उन्हें रख देंगे वहां से विचलित नहीं होंगे वे उन्हें काशीपुरी ले जाना चाहते थे मार्ग में ही ब्रज भूमि के सौन्दर्य और कृष्णावतार की अपनी सेवाओं का स्मरण कर श्री गिरिराज ने प्रभु का स्मरण किया। प्रभु की प्रेरणा से मुनि ने सहसा गिरिराज को उनके वर्तमान स्थान पर रख दिया जहां वे अभी तक स्थित हैं।

वाराह पुराण के अनुसार हनुमान जी सेतबन्धु के समय उत्तराखन्ड से आ रहे थे। उस समय सेत बंध हो चुका था जो पर्वत जहां के लिए हों वही रख दें ऐसी राम की आज्ञा सुनकर हनुमान ने गिरिराज पर्वत को ब्रज में ही छोड़ दिया।

यह पर्वत बड़े चमत्कारी प्रभाव का माना जाता है। स्वयं भगवान् कृष्ण ने भी इसकी वन्दना की है। इसको ब्रज मन्डल का ध्वज या रसक भी कहा गया है।

"गोवर्धन वनाधीश नाथ वन्दे जगदगुरुम्।
सप्ताव्द रुपिणे कृष्णावत यात्रा शुभम् भवते॥
गोवर्धन गिरिवरे लोकानमय दायक
तस्य दर्शन मात्रेण मुक्ति भागीभवेन्नर।

गोवर्धन ब्रज के समस्त वनों के देव हैं वे श्रीकृष्ण का रूपभी धारणकरने वाले हैं। महात्मा सूरदास जी उनकी स्याम से तुलना करते हैं—

गिरिवर श्याम की अनुहारि।
करत भोजन अति अधिकई सहस्र भुजा पसारि।
नन्द के कर गहै ठाड़ो यहै गिरि को रूप।
सखि ललिता राधिका सौं कहत व्यहै स्वरूप।
यहै कुण्डल यहै माला यहै पीत पीछोर।
शिखर शोभा श्याम की छवि श्याम छवि गिरिमोर।
नारि बदरौला रही बृषभाव धर रस वारि
जहाँ ते वह मौन अखत लियौ भुजा पसारि।
राधिका छवि देख भूली श्याम निरखी ताहि
सूर प्रभु वस गई प्यारी चकोर लोचन चाहि।

आज इस पूर्णिमा के दिन लाखों नर-नारी के स्वर में स्वर मिलाकर मैं भी अपनी वंदना उपस्थित करता हूँ—

भू मंडल पै- भरत खंड अति सरस सुहावन
ताकी शोभा सार विरज मंडल मन भावन।
ब्रज मंडल के मुकुट गिरिराज विराजै।
निरख निरख जाकी छवि नंदन वन हूं लाजै॥
वरनन को कवि करि सकत उसका सकल।
जयति जयति श्री राधिका जय-जय श्री गिरिराज की।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

जहां प्रकृति ने उमगि उमगि निज छवि विपुराई।
पग पग पावन धाम परे कहु कहत न आही।
हरे भरे वन खंड अनेकन सर लहरावन
वंशी की धुनि ग्वाला गैयन टेरि बुलावत ।।
नित नूतन छवि होत है कहा कहों छवि आज की।
जयति जयति श्री राधिका जय जय श्री गिरिराज की।
मुक्ति मुक्ति के जहां अनेकन डारे खम्मा।
कोटि कोटि नर नारी देत जाकी परिकम्मा।
जाकी रज में जुगल चरन के बिखरे मोती।
हिय के धारन हेतु लगावत है डंडौती।
महलन की शोभा लजै राजन की महाराज की।
जयति जयति श्री राधिके जय जय जय गिरिराज की ।।

पुस्तक समीक्षा

१. बुन्देली का फाग साहित्य

लेखक साहित्य महोपाध्याय श्री श्यामसुन्दर बादल, साहित्याचार्य,
प्रकाशक : हिन्दी साहित्य परिषद् राठ (हमीरपुर)
भूमिका : स्व० डा० श्रीवासुदेव शरण अग्रवाल मूल्य आठ रुपया

आचार्य श्यामसुन्दर बादल बुन्देल खण्ड के जाने माने कवि और साहित्यकार हैं। मऊ रानीपुर तथा राठ के साहित्यिक और सांस्कृतिक वातावरण में आप ही के प्रयास निहित हैं। श्री बादलजी के इस ग्रन्थ को देखने पर ज्ञात होता है कि आपकी साहित्य साधना बहुत व्यापक और गम्भीर है। फाग साहित्य पर उनका यह शोध ग्रन्थ इस क्षेत्र में सर्वथा नवीन और मौलिक प्रयास है, इससे श्री बादलजी की प्रतिभा और विद्वत्ता का सहज परिचय मिल जाता है।

यह शोध ग्रन्थ आपने हिन्दी साहित्य सम्मेलन की साहित्य-महोपाध्याय उपाधि के लिये श्री बनारसीदास चतुर्वेदी के निर्देशन में लिखा है। बुन्देलखण्ड का फाग साहित्य हिन्दी वाङ्मय का एक सुन्दर और सम्पन्न अध्याय है, इसके विषय में श्री श्यामसुन्दर जी ने अधिकार पूर्वक लिखकर एक आदर्श कार्य किया है। ग्रन्थ में फाग साहित्य की समीक्षा बड़ी सुरुचि पूर्ण और सावयव है। अध्याय २ में बादल जी ने फाग साहित्य किसे कहते हैं यह बतलाया है। पुनः फाग साहित्य के आविर्भाव तथा विकास पर प्रकाश डाला गया है और फाग साहित्य के शास्त्रीय आधार, लोक प्रियता, साहित्यिक लोक जीवन वर्गीकरण और काकोत्कृष्टता के दृष्टिकोण से उसका वैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत किया है। अध्याय १० और ११ में फाग साहित्य के रचयिताओं और कवियों पर प्रकाश डाला गया है तथा अध्याय १२ में फाग साहित्य का भाषा वैज्ञानिक दृष्टिकोण से विवेचन किया गया है। डॉ० सम्पूर्णानन्द जी का यह कथन यथार्थ है कि बुन्देलखण्डी फाग साहित्य की इस पुस्तक को लिखकर श्री श्यामसुन्दर बादल ने बड़ा उपयोगी कार्य किया है। उन्होंने एक सप्राण जीवित साहित्य को सामने रखा है जिसको हम भूलते जा रहे थे।

रविन्द्र रंजन

ब्रज भाषा में कृषि सम्बंधी शब्द

(ज्यो० राधेश्याम द्विवेदी)

ब्रज भारती के सम्पादक जी ने गताङ्क में हिन्दी सम्बर्द्धिनी योजना हिन्दी जगत के सामने रखकर एक स्तुत्य कार्य किया है। वास्तव में उस योजना पर हिन्दी जगत ध्यान दे तथा विभिन्न प्रादेशिक तथा जनपदीय भाषाओं के विद्वान् लेखक और लोक साहित्य सेवी ध्यान देकर योजना कार्यान्वित करने में सहयोग दें तो निश्चय ही हमारी राष्ट्रभाषा का भण्डार विश्व की समस्त भाषाओं में सबसे बड़ा हो जाए। वैसे तो हमारी राष्ट्र भाषा हिन्दी का तथा अन्य उनकी अनुजा प्रादेशिक भाषाओं का शब्द भन्डार बहुत है किन्तु विभूतिमती ब्रज भाषा जिसका किसी समय उत्तर भारत में द्वारका से कलकत्ता तक साहित्य जगत में साम्राज्य था बादशाह तथा राजा महाराजा तक ब्रजभाषा में कविता करते थे, उस भाषा का शब्द भन्डार कम नहीं हो सकता। वस्तुत: शब्द भन्डार हमको लोक साहित्य और लोक जीवन से मिल सकता है यदि सभी राज्यों के ग्रामीण क्षेत्र से शब्द एकत्रित किए जाएँ तो हमको यह कहने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी कि अंग्रेजी के बिना हमारे साहित्य या बोलचाल की भाषा में शब्द की कमी है। अन्य राज्यों की प्रादेशिक भाषाओं को हम न लें और अपने हिन्दी भाषा-भाषी राज्यों के ग्रामों में जाकर ही या घरों में जाकर शब्दों का संग्रह करें तो हमको अनेक शब्द नये-नये मिलेंगे और जिनसे हमारी राष्ट्र भाषा का भन्डार सहज भर सकेगा। कुछ समय पूर्व मैंने अपने ग्रामीण भाइयों से सम्पर्क साधकर उनसे कृषि सम्बन्धी शब्द एकत्रित किए थे जो इस लेख में दिए गये हैं इन से ज्ञात होगा कि कितने ही नये शब्द हैं जो सहज में ही लोग नहीं जानते फिर साहित्यिक लोग तो कैसे जान सकते हैं।

अतएव हिन्दी सम्बर्द्धिनी योजना को सफल बनाने के लिए हमको इस प्रकार नये-नये शब्द जहां भी मिलें अवश्य एकत्रित करने चाहिए और अपनी राष्ट्रभाषा को समृद्ध और सबल बनाना चाहिए। ब्रज भाषा की तरह अवधी, भोजपुरी, राजस्थानी, बुन्देलखन्डी, गुजराती और पंजाबी भाषाओं से भी हमको इसी प्रकार के शब्द एकत्र करने चाहिए।

जुताई—खेत की जोत।
बरहा—छोटी छोटी नालियाँ।
आस—मूंग उरद आदि खरीफ की फसल की कटाई को कहते हैं। ९ बजे पहले की जाती है।
लामनी—फसल की कटाई को या लाई को कहते हैं।
मैंज या साहिल—काठ का भारी तखता जो खेत के डेलों को फोड़कर खेत को चौरस करता है।
सुहागो—बुवाई के बाद मैंज लगाने को कहते हैं।
काढ़—रस्सी का टुकड़ा करीब ११-१२ हाथ का जिसको साहिल के कुन्दों में बांधकर बैलों से खींचा जाता है।
उपार—भादों में आखिरी मेंह पड़ने के बाद जो पहली जोत दी जाती है उपार कहलाती है।
आंतरा—दूसरी जात आंतरा कहलाती है।

फाड़--असाढ़ में बर्षा होने पर पहलीबार खेत जोत लेने को फाड़ कहते हैं।
उनावट—आंतरे से पिछली जोत को कहते हैं।
उठांजेल--एक दम दोवार खेत को आड़ा तिरछा जोतने को कहते हैं।
आड़--रवी की फसल के बोने पर सरसों या दुआँ के कूँड़ लगाने को कहते हैं।
कूड़--हल चलने के बाद भूमि के फटने पर जो नाली सी बहती है उसे कहते है।
नेर—जो हरैया पर सबसे पहला कूँड़ आता है वह कहा जाता है।
हरैय्या—खेत जोतने के भागों को कहते हैं।
ओड़ेला—जुताई में हरैय्या के बीच के कूँड़ को कहते हैं।
हरयौ—बुवाई में हरैय्या के बीच के कूँड़ को कहते हैं।
माँझा—एक तखते में लकड़ी का एक डंडा लगा रहता है उस तखते की कुन्दियों में रस्सी बंधी रहती हैं उसे सब माँझा कहते हैं वुवाई के बाद खेत में क्यारी व वरहा बनाने के काम आता है। इससे बोया हुआ अनाज नहीं उखड़ता।
होइया—खेत के किनारे पर ५-४ कूँड़ों की जगह को कहते हैं।

कूआँ के सम्बन्धी शब्द

मोगिर—कूए के ऊपर बीचोंबीच लगने वाली लकड़ी।
चूरा--ये मोगिर में लगाये जाते हैं, तकुआ।
म्यार—तकुए में लगने वाली गुड़िया।
गड़ैरा--कुए के चलने वाले पहिये में लगने वाली लकड़ी।
गल्हैत—म्यार में लगने वाली लकड़ी।
जूर—जिसमें बैल जोड़े जाते हैं।
कीली--गिस।
नादनी या नगचौरा—वर्त का टुकड़ा जो वर्त में लगता है।
कूकरा—चर्स की दो चूड़ियों में लगने वाला लकड़ी का टुकड़ा।
यौर या वैरु—रस्सी का टुकड़ा जो कूकरे में लगता है।
चाक—अरा।

हल में

कुस—पनिहारी में लगने वाला लोहा।
पनिहारी—हल में ठुकने वाली लकड़ी।
गोखरू—लकड़ी का टुकड़ा।
हथकड़ी—हल में सिर पर पड़ने वाला भाग।
हर्स—जिसमें बैल जोड़े जाते हैं हल का वह भाग।
जुराहली—हर्स में लगने वाला।
बराहुली—हल के पीछे हर्स लगने वाला काठ का टुकड़ा।
गाजरौ या पातौ—हर्स के ऊपर हर्स को कर्रा करने वाला लकड़ा का टुकड़ा।
अगमासी जूआ—जिसमें बैल जोड़े जाते हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

पचारी—जुए में भीतर की तरफ लगने वाली काठ की कील जिसको बैल अपने गाथे में रहता है।
सौल—वाहर की तरफ की।
नारा—चमड़े का टुकड़ा जो जुआ में लगता है।
पैना—बैल हाकने की चाबुक वास के टुकड़े में चमड़ा लगता है।
करारी—हर्स के नीचे लगाये जाने वाला काट का पत्ता।
सेबरी—हर्स के ऊपर लगने वाला पत्ता।
कंटा—कुस के ऊपर लोहे की कील।

चर्स

कौड़र—चर्स में लगने वाला मुड़ा हुआ लोहा।
क्वौली—कूकरा में लगने वाली लोहे की छड़।
बाही—ये भी चर्स में लगती है लोहे की होती है तथा काठ की भी होती है।
पटली—मोगर के ऊपर काठ की लम्बी लकड़ी लगती है।

खेती सम्बन्धी

सूर—असाढ़ में वर्षा होने पर जो छोटी छोटी झाड़ियों को काटकर फैका जाता है उसे कहते हैं।
भर्रा—परेवट होने के बाद जब खेत जुताई आता है तब उ पर पहला मैज लगाने को भर्रा कहते हैं।
नराव—निकाई को कहते हैं।
कुर्पना या गुर्वना—मक्का, बाजरे या कपास की खड़ी फसल की जोत देने को कहते हैं।
परोहा या भोला—चमड़े का पात्र जिससे पानी फैका जाता है।
कुंडी—जिसमें पानी रहता और परोहे से जिससे पानी निकाला जाता है।
चक्का—रवी की फसल को काटकर खेत में दूखही करने को कहते हैं।
झूआ या पूँज—खरीफ फसल का काटर।
पैरी—दाय चढ़ाने के लिये लांक खलिया में फैलाया जाता है।
दाय—बैलों द्वारा अनाज, फसल को खूदा जाना।
लांक—रवी की फसल के अनाज के पौधों के समूह को लांक कहते हैं।
मेडा या तरपैरी—कुरेदने को मेड़ा कहते हैं।
जेरिया—लोहे की २ फन वाली एक लकड़ी जिससे लांक उल्टा-पल्टा जाता है वह कहलाती है।
बूकना—पैरी महीन होने पर इकट्ठा किया जाने की क्रिया।
गाँठा—बूकना बरसाने पर जो उसमें मोटी गांठे तथा भूसा रह जाता है उसे गांठा कहते हैं।
खारी—चने के सूखे हुए पत्ते।
लकूरा या जेठा—चने के कटने के बाद खेत में थोड़ा थोड़ा इकट्ठा करके रखने की क्रिया।
टाटस—चने में से खारी अलग बरसाकर जो चना रह जाता है उन बूटों को टाटस कहते हैं ये सूखे ही कहलाये जा सकते हैं हरे तो बूट कहलाते हैं।
इकरसी—अनाज को एक बार बरसाने की क्रिया।
रास—दूसरी बार वरसाया हुआ, तैयार अनाज का ढेर।

खुरदाँय—(जौ) एक बार बरसाकर उस पर दुबारा दांय चलाने की क्रिया, सिर्फ जौ के लिए ।
झुर्री—ज्वार का भूसा ।
बूबला—बाजरे का निरथक भूसा ।
भुटिया—ज्वार की बाल ।
कूकरी—मक्का की भुटिया ।
अंगोला—ईख का ऊपर पत्ते वाला भाग ।
गुरगोई—जहां कोल्हू पर गुड़ बनाया जाता है वह स्थान ।

शब्द

झमीरी—पीले रङ्ग का एक प्रकार का कीड़ा जो फूल पर उड़कर रहता है उस पर बैठता नहीं ।
डरवौरी—परदार एक कीड़ा, जो जोर से काटता है ।
घिरोरी—मट्टी का घर बनाने वाला कीड़ा जो किताबों आदि में भी लग जाता है ।
घिल्यौ—एक बेल जिसका पत्ता खट्टा होता है जड़ में जमीकंद बनता है ।
बचकनी—बेल पर फली लगती है अंगुली समान नोक बारीक होती है ।
विवाफल—गुलकाख सुर्ख होने पर झाड़ी का फल, परवल की सी शक्ल ।
भांएगी—अरवी जैसा साग ।
हाथीचक्क—जमीकन्द जैसा साग ।
बिड़ौका—गट्ठा ।
बाकला—फली सैम जैसी ।

* * *

पुस्तक समीक्षा

२. हिन्दी शतक

कविवर श्री उमाशंकर दीक्षित का 'हिन्दी शतक' देखने का मुझे सुअवसर मिला। कवि का प्रयास सर्वथा स्त्युत्य एवं सराहनीय है। आपने अपने भावोद्‌गारों द्वारा माँ भारती की जिन शब्दों में वन्दना की है वह हिन्दी साहित्य की अमूल्य निधि बनकर सदैव स्मरणीय एवं चिरस्थायी रहेगी और उसकी सुरभि जन मानस में मुखरित होती रहेगी।

श्री दीक्षित से अभी बहुत सी आशायें हैं। और सभी की यह कामना है कि वह अपनी अनवरत साधना द्वारा हिन्दी के भंडार को सदैव भरते रहें।

कवि ने अपने शतकों में हिन्दी के गौरवशाली अतीत, उसकी शाश्वत परम्परा और राष्ट्रीय एकता की कड़ियों को पिरोने वाली डोरी को सुबोध, भावपूर्ण और प्रभावोत्पादक शैली में प्रस्तुत किया है।

राजेन्द्रकुमार पाठक

हिन्दी का गीत काव्य और विद्यापति के पद

(श्री जीवन प्रकाश जोशी)

इसमें कोई शक नहीं है कि विद्यापति हिन्दी गीति काव्य के पहले सर्जक हैं और ताज्जुब यह है कि वे पहले गीति काव्य सर्जक होकर भी अपने कृतित्व और व्यक्तित्व में आज तक के समस्त हिन्दी गीतिकारों के अग्रणी दिखलाई पड़ते हैं; अग्रणी, यानी उनके चरण अत्यन्त चपल, चुस्त और चटकीले दीखते हैं; चरण, यानी उनके कोमल कलित पद ! और अगर कुछ शब्दों में कहना चाहें तो यह है कि विद्यापति हिन्दी गीति गङ्गा के भगीरथ हैं, अत: वे चिर स्मरणीय हैं, आदरणीय हैं ।

विद्वान् शिप्ले ने गीति रचना के विषय में कहा है कि—The poem to be sung on lyre.

और डा० चार्ल्स मिल्स की यह धारणा भी ध्यान में रखने वाली है—“In other words pure poetry is that which has the essentially poetic quality.

और हिन्दी के प्रसिद्ध कवि डा० बच्चन का कहना है—

कविता जगति के प्रांगण में जीवन की किलकारी

जीवन की किलकारी यानी जीवन के स्वत: प्रवर्तित वे उद्गार या संवेग जो सहज और सुललित हों, वर्डसवर्थ का भी तो कुछ ऐसा ही आशय है—Poetry is the spontaneoos overflow of the powerful feelings.

तो इन तमाम उद्धहरणों से एक ही बात व्यापकता से सिद्ध होती है कि गीतिकाव्य का एक नैसर्गिक, अनुभूतिसंकुल लयमय एक सूक्ष्म उद्गार है और विद्यापति इस दृष्टि से किस कोटि के कवि हैं ?—

इस महत्वपूर्ण प्रश्न पर सोचने समझने से पहले हम हिन्दी गीतिकाव्य की परम्परा पर थोड़ा प्रकाश डालेंगे । जहां तक गीतिकाव्य के उद्भव की बात है, उसके लिए तो हमें इतना ही जान लेना काफी है कि रोना और गाना मनुष्य की एक आदिम प्रवृत्ति है । किसी मनिषी का कहना है कि बहुत रोना ही गाना है, और बहुत गाना ही रोना है ! तो इस प्रकार गीतिकाव्य का उद्भव मानव वृत्ति के सुख-दुख के गर्भ से हुआ है । लयमान होना, उसका मुखर होना है, बहुत से लोगों में मौन कविता होती है क्योंकि वे मुखर नहीं होते इसलिए वे कवि नहीं कहलाते । कवि वे होते हैं जो अपने रुदन को गान बना देते हैं, और उनका गान औरों का रुदन बन जाता है । कवि में यही पिक्युलियरीटी होती है और जो उसे सबसे अलग करती है । इसीलिए शायद कवि समाज के अन्य लोगों से अलग पहचाना जाता है लेकिन उसे सब प्यार करते हैं ।

कविवर विद्यापति बड़े 'पिक्यूलियर' टाईप के कवि है । वे हिन्दी के पहले गीतिकार कवि हैं और पहले होकर भी हिन्दी कवियों के परिचय की पहली पंक्ति में खड़े हैं । वे बहुत लयमान हैं । उनके गीत उनके व्यक्तित्व को एकदम प्रकाशित करते हैं । उनका गीतिकाव्य उनके अन्त'जगत से अद्भुत है और हम यही तो कहते हैं कि गीतिकाव्य का उद्भव कवि के अर्न्तजगत से उद्भूत होता है उसी तरह जैसे विद्यापति का गीतिकाव्य उद्भूत हुआ है ।

हां, तो हम गीतिकाव्य की परम्परा की बात कर रहे थे । यह बहुत पुरानी हैं । सामवेद की ऋचायें गीतिकाव्य का प्राक्कथन हैं । वेदों में अनेक मन्त्र ऐसे आते हैं जिनमें किसी ऋषि का

संपूर्ण अन्तर्जगत किसी एक विशेष आस्थापूर्ण भाव में व्यक्त हो जाता है। वेदों के वे सूक्त (जैसे उषा सूक्त या नासदीत सूक्त या पुरुष सूक्त) जिसमें हमारा ऋषि सृष्टि या सृष्टा के विषय में किसी भावात्मक, रहस्यात्मक या जिज्ञासात्मक अभिव्यंजन करता है वे स्थल गीतिकाव्य के प्रथम मनोरम और सांत स्थल कहे जा सकते हैं। इसके उपरान्त संस्कृत गीतिकाव्य का वृहस्पति नक्षत्र उदित हुआ जयदेव। जयदेव की वाणी से सचमुच पियूषवर्षण होता है। जब वे कहते हैं—

"रतिसुखसारे गतिमभिसारे मदनमनोहरवेषम्"
"धीमरसमीरे यमुनातीरे वसति वने वनमाली।
गोपीपीनपयो धरमर्दन चञ्चलकरयुग शाली।

और जयदेव के बाद अभिनव जयदेव, कविशेखर, उपाधिमन्डित कवि आते हैं—विद्यापति। कविवर विद्यापति कविवर जयदेव के टक्कर के गीतिकार कहे जाते हैं। इस टक्कर की तुलना में प्रश्नवाचक चिन्ह लग सकता है, क्योंकि विद्यापति जयदेव के उपरान्त हुए और उनसे प्रभावित हैं। लेकिन इसमें दो मत नहीं हो सकते कि हिन्दी गीतिकाव्य के विद्यापति पहले वरदान बनकर अवतरित हुए। जयदेव की कोमल कान्त पदावली की प्रभा विद्यापति के पदों में जगह जगह फूट पड़ती है। इसके लिए अनेक उदाहरण रक्खे जा सकते हैं। इस प्रकार हिन्दी गीतिकाव्य परम्परा का मूल श्रोत विद्यापति की पदावली है। भक्तिकाल में महाकवि सूरदास ने गीतिकाव्य को दिव्य-श्रृङ्गार के अलङ्कार दिए और कोई सन्देह नहीं कि सूरदास के पदों की झंकारें स्थूलता का अतिक्रमण करके दिव्यता का स्पर्श करती है। विद्यापति के पदों में देह ही देह हैं। वहाँ सचमुच गुलाब ही गुलाब हैं। वहाँ नारी के कुच, कटि, कटाक्ष और कोमलांगों तक ही काव्य सौष्टव की चरम उपलब्धि है और ऐसा तो विघटित रूप में वीरगाथाकाल में अपभ्रंश तथा राजस्थानी भाषा के काव्य में भी मिलता है। किन्तु निश्चित ही विद्यापति के पदों में वीरगाथाकालीन प्रेमश्रृङ्गारी पदों की अपेक्षा अधिक कलाकौशल है। किन्तु सूरदास भले ही कहीं कलाकौशल की कसौटी पर विद्यापति की अपेक्षा घटकर प्रतीत हों, किन्तु उनके पदों में जो दिव्य, राग, रस बरबस फूटता है, वह विद्यापति के काव्य में शायद ही कहीं मिले। विद्यापति का गीतोद्यान यदि गुलाबों से परिपूर्ण है तो सूरदास का गीतोद्यान सौरभ और केवल सौरभ से पूरित है।

वस्तुतः भक्तिकाल गीतिकाल की दृष्टि से स्वर्णकाल हैं। कबीर के गीतों को हम कला की कसौटी पर भले ही न परख सकें, किन्तु वे भावचिन्तन के समन्वित स्वरों से पूरित है। विद्यापति के उपरान्त कबीर का गीतिकाव्य अपनी नैसर्गिकता, गम्भीरता, त्वरा और सम्बद्धता में अनुषम है।

और मीरा के पद एकदम समस्त भक्तकवियों से अधिक प्रभावशाली प्रतीत होते हैं। वस्तुतः मीरा हिन्दी गीतिकाव्य के 'लायर' की अत्यन्त उदात्तध्वनि हैं। भक्तिकाल में तुलसी के पद मौलिकता की दृष्टि से अनूठे न होते हुए भी उनमें गीत तत्त्वों का विशिष्ट समन्वय है। गीत में विनय के एकनिष्ठ भाव को तुलसीदास उसकी चरम सीमा तक ले गये हैं। भक्तिकाल में अष्टछाप के कवियों का योगदान भी गीतिकाव्य के योगदान में अत्यन्त महत्वपूर्ण है। कुल मिलाकर भक्तिकाल में विद्यापति द्वारा प्रवर्तित गीतिकाव्य धारा अपने विकास में अपनी चरम सीमा छू चुकी थी। शायद इसलिए रीतिकाल में गीतिकाव्य का सृजन नहीं हो सका। आधुनिक काल में छायावादी

और छायावादोत्तर कवियों ने व्यंजन गीतिकाव्याभिव्यंजन को नए क्षितिज प्रदान किए हैं। आधुनिक गीतिकारों में जयशङ्कर प्रसाद, सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', महादेवी वर्मा, सुमित्रा नन्दन पंत, डा० हरिवंश राय बच्चन आदि गीतकारों की देन अमर है।

गीतिकाव्य की विकास परम्परा संक्षेप में यह थी। इस प्रसङ्ग में विद्यापति के गीतों का वैशिट्य और महत्व और देख लिया जाय।

विद्यापति ने पदों की रचना की है। पद प्राचीन रूपाकार में आधुनिक गीत का पर्याय समझना चाहिए। पदों में राग, लय, तुक और ताल यानी सङ्गीत की समाहारिता होती है। गीतों में भी होती है। विद्यापति के पदों में गीत सृष्टि का समस्त वैभव प्रगट होता है। विषय और शैली की दृष्टि से विद्यापति के पद निसन्देह विशिष्ट हैं। विशेषत: उनका लोच और लालित्य विशिष्ट है। विद्यापति का विषय मुख्यत: शृङ्गारी है। इतस्तत: वे भक्ति भावना का भी गान करते हैं। पदावली में प्रार्थना और नयारी पद स्तुति परक है।

विद्यापति के पदों में शृङ्गारी भावना 'कामशास्त्र' सम्मत है। नारी अर्थात् नायिका के नखशिख सौन्दर्य को विद्यापति अपने पदों में उद्भासित करते हैं। नारी के आङ्गिक सौन्दर्य के चित्रण में विद्यापति प्राचीन यानी घिसीपिटी उपमा उत्प्रेक्षाओं का उपयोग करते हैं। जैसे मुख को, चरण को, कर को, कमल की उपमा देना। इसी प्रकार दाँतों की उपमा दाड़िम से देना। जाँघों की उपमा कदली से देना, और कुचों या स्तनों की उपमा बिम्बाफलों से। निश्चित ही विद्यापति का शृङ्गारी वैभव इन स्थलों में नहीं है। विद्यापति को ऊहा में ठीक नहीं पहचाना जा सकता। उनके कवित्व की शक्ति नई-नई अलङ्कारिक भावनाओं में देखी जा सकती है। एक उदाहरण देखिए। कोई नायिका अपने प्रियतम से मिलने के लिए काली, भयानक, आधी रात को जा रही है। वह बहुत सुन्दर है। उसके शरीर में ज्योति छिटकती है, इसलिए उस काली रात में भी उसे कोई देख सकता है। इसलिए उसे एक युक्ति सूझी कि वह आकाश सी गहरी श्यामल साड़ी पहनकर रास्ते पर चलती है; ताकि श्यामल साड़ी के कारण रात के अंधेरे में वह समा जाय, कोई उसे देख न सके। इतनी लम्बी-चौड़ी कल्पना को कवि विद्यापति कितनी सूझ-बूझ से इन दो लकीरों में बांध देते हैं—

अम्बर-सामर देह झपाई, चलहु तिमिर पथ समाई।

इस प्रकार की अनेक अनूठी अनूठी सरस उक्तियाँ विद्यापति की पदावली में मिलती हैं जो कमाल की सूझबूझ का बोध कराती हैं। विद्यापति पद्मिनीनायिका का चित्रण करते समय अनेक नये उपमानों की सृष्टि ही करते हैं। नायिका की शरीर की कान्ति कैसी है—जैसे 'कनक लता' हो, अथवा विद्युन्माला हो। नायिका की चपलता और उसके नैसर्गिक भावों-अनुभावों का जितना गीतात्मक सफल चित्रण कविवर विद्यापति अपनी वय: सधि के प्रसङ्ग में करते हैं, उनका कोई दूसरा कवि नहीं कर सका। नव-अंकुरित बाला के मन में, तन में जो मरोड़ होती है, जो मस्ती में डूब जाने की हिलोर होती है जो अपने ही रूप को निहार कर सीझने की सनक होती है उस सत्य को विद्यापति कितनी भावुकता और कितनी कुशलता से चित्रित करते हैं, जरा यह पंक्तियाँ तो पढ़िये—

सैसव जौवन दुहु मिलि गेल, स्रवन का पथ दुहु लोचन लेल।
बचन की चातुरि लहु-लहु दास, धरनिये चाँद कएल परगास।
मुकुर लई अब करई सिंगार, सखि पूछइ कइसे सुरत-विहार।

निरजन उरज देइ कत बेरि, हसइ से अपन पयोधर हेरि।
पहिल बरदि-सम पुन नवरंग, दिन-दिन अनँग अगोरल अङ्ग।
माधव पेखल अपुरब बाला, सैसव-जौवन दुहु एक मेला।
विद्यापति कह तुहु अगेआनि, दुहु एक जोग हइ के कह संयानि।

विद्यापति के पदों में वैशिष्टय उनके बिम्बों और संशलिष्ट शब्द चित्रों में है। वहाँ रेखायें अत्यन्त सूक्ष्म रङ्गों से रंजित हैं। वक्रोक्ति और व्यंजना के माध्यम से अनकहनी बात को भी कह दिया जाता है और इस दृष्टि से विद्यापति के पदों में अश्लीलत्व दोष दिखलाई पड़ता है। मेरे एक मित्र साहित्यिक पंडित का कहना है; विद्यापति का काव्य बहनों, बेटियों को नहीं पढ़ना चाहिये। मैंने बेहिचक 'हां' की और फिर मुस्करा कर कहा बहुओं को तो पढ़ना ही चाहिए ? और मैं आप तो पढ़ते ही हैं। यह सुनकर मेरे वे मित्र बगलें झांकने लगे।

'हां' तो विद्यापति के शृङ्गारी पदों में निश्चित ही अश्लीलता है लेकिन वह अश्लीलता कहीं पर नङ्गी नहीं है। वहां अभिसार है किन्तु बलात्कार नहीं है। वह चुम्बन है किन्तु गुलाब की पखुरियों के माध्यम से हैं। वहाँ मान, विलास, बसन्त, विरह, मिलन और नखशिख सभी कुछ का वर्णन है किन्तु उस वर्णन में जीवन और यौवन का छलछलाता हुआ रस है। विद्यापति के पदों में बसन्त बोलता है, और कहीं कभी पतझड़ की पदचाप भी सुनाई देती है।

विद्यापति के पदों में सङ्गीत का वैशिष्ट्य लोकानुमोदित राग-रागनियों पर भी आधारित है। बसन्त वर्णन में, नयारी, स्तुति, और विविध वर्णनों में भी सङ्गीत का सौष्ठव उच्चकोटि का है। पदावली में एकसो चोरासी संख्या का पद इसका एक ज्वलन्त उदाहरण है, कुछ पंक्तियाँ देखिये–

वाजत द्विगि द्विगि धौद्रिम द्विमिया।
नरति कलावति माति श्याम सङ्ग, कर करताल प्रबन्धक ध्वनिया।
डम डम डंफ डिमिका डिम मादल, सनु झुन मंजरि बोल।
किंकिनि रनरनि बलआ कनकनि, निधुबन रास तुमुल उतरोल।
बीन, खाब, मुरज स्वामंडल, सा रि ग म प ध नि सा बहु निधि भाव।

और अन्त में विद्यापति के पदों के वैशिष्ट्य और महत्व के वारे में मेरी स्थापनायें हैं—

१—विद्यापति के पदों में शृङ्गार रस की निष्पत्ति उच्चकोटि के व्यापार द्वारा होती है।

२—विद्यापति के पदों में रागतत्व (लिरिकल एलिमेन्ट्स) किसी भी शृङ्गारी कवि की अपेक्षा अधिक है।

३—विद्यापति के पदों में काव्यरूढ़ियों के अतिरिक्त इतस्ततः नई-नई बासन्ती उद्भावनायें हैं। विद्यापति ने ठीक ही कहा है—

नव-बृन्दावन नव नव तरुगम, नव नव विकसित फूल।
नवल बसंत नवल मलयानिल, मातल नव अतिकूल।

४—विद्यापति के पदों में शृङ्गार की अभिव्यक्ति सीमित होते हुए भी उसमें घुटन नहीं है, ताजगी है। वहां शृङ्गा जैसे इन्द्रियों का सौरभ बन गया है।

५—कुल मिला कर विद्यापति के पद मिश्री के कण हैं, जो मुँह को मिठास देते हैं, और मन को परितृप्ति भी ? इस प्रश्न का उत्तर आप पदावली पढ़ कर स्वयं दीजिए।

—

महाकवि ग्वाल और नवनीत

लेखक—भगवानसहाय पचौरी 'भवेश' एम. ऐ

महाकवि ग्वालजी और नवनीतजी ब्रज काव्य कलिन्दजा के कूलवर्ती दो ऐसे कमनीय कदम्ब हैं, जिनकी किशलय-किंजल्क-सौरभ-समीर से न केवल ब्रज-वसुन्धरा सुरभित हुई बल्कि अखिल भारत की कानन श्री सार्थवती हुई। दोनों ही ब्रज की गौरवशालिनी विभूति थे। यों ग्वाल जी भट्ट थे और नवनीत जी चतुर्वेदी। पर महापुरुष किसी जाति विशेष की सम्पत्ति नहीं, वे तो मानवता की थाती होते हैं। ग्वाल जी और नवनीत जी जैसे कवि पुंगव धरा ने कितने दिए हैं? आकाश में एक सूर्य और एक चन्द्रमा। ब्रज में भी एक सूर्य ग्वाल और एक चन्द नवनीत। प्रचंड मार्तण्ड की मयूखों के समान तमतमाता एक प्रखर व्यक्तित्व ग्वाल और शशि की रश्मियों के समान सुशीतल, स्निग्ध अमृतवर्षी कवि नवनीत। एक प्रभाकर है तो दूसरा सुधाकर। दोनों ही महाकवियों में एक ओर आश्चर्यजनक साम्य है तो दूसरी ओर विस्मयकारी असमानता। विचित्र संयोग है कि दोनों ही विभूतियों का अवतरण ब्रज में हुआ और वह भी कलिंजा कूले भगवान कृष्ण की लीला भूमि मथुरा में। दोनों ने ही उन्नीसवीं शताब्दी को उपकृत अथच अलंकृत किया। यह शताब्दी ऐतिहासिक, राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक और साहित्यिक अभ्युत्थान की दृष्टि से अति महत्वपूर्ण थी। हिन्दू, मुस्लिम और ब्रिटिश संस्कृतियों का यह संगमयुग था। मुगल अवसान की क्षितिज से आधुनिक युग-पुरुष झांकने लगा था। साहित्यिक दृष्टि से काव्य रीति के महलों से धरती पर उतरने लगा था। ग्वाल जी ने रीति के अन्तिम पुरोधा के रूप में आचार्यत्व के मन्त्र पढ़े और नवनीत जी ने कवि के रूप में पूर्णाहुति डाली। जब ग्वाल का काव्योत्कर्ष चरम बिन्दु पर था, नवनीत जी के उषाचरण प्रकर्ष की प्रथम सीढ़ी पर थे। एक अस्तंगत हुआ तो दूसरे ने उदय का शंखनाद किया। दोनों का ध्येय एक था, प्रेम एक था, गेय एक था, ज्ञेय एक था। पाथेय एक था, पथ एक था। एक ने काव्यधेनु से दूध दुहकर ग्वाल-कर्तव्य पूर्ण किया तो दूसरे ने काव्य-पय से यथा नवनीत। एक ही तत्व के दो स्वरूप, एक ही रस की दो विधायें, दोनों ही पुष्टिकर-तुष्टिकर। एक के बिना दूसरे का गौरव नहीं, मान नहीं। ग्वाल और नवनीत दोनों ब्रज बसुन्धरा की अनिवार्यता है, अपरिहार्यता है। एक आचार्य कवि तो दूसरे कवि आचार्य—दोनों जैसे परस्पर दो पूरक साध्य। नियति और प्रकृति एक भी; भिन्न भी। एक बट दैन्य की धरती से निकला तो दूसरा उगा वैभव के आंगन में। एक कुकुरमुत्ता; तो दूसरा गुलाब। एक साधारण से असाधारण बना तो दूसरा असाधारण से अद्वितीय। दोनों की शीतलच्छाय में प्रभूत विरवे उगे, पनपे, पले, फले, और फूले। दोनों के यशः काम अमर हैं। दोनों माँ शारदा के हृदय विलम्बी हार हैं। हिन्दी के दोनों सपूतों को उनके जयन्ती-पर्व पर हमारे पुनः पुनः प्रणाम—ग्वाल जी और नवनीत जी को। जय ब्रजभाषा, जय ब्रजकाव्य।

भारतीय लोक कला मंडल द्वारा प्रकाशित ग्रन्थ

१. **लोक-कला निबन्धावली भाग १ व २** :—राजस्थानी लोक कलाओं तथा मध्य भारतीय आदिवासियों की कला-संस्कृतियों से सम्बन्धित अधिकारी विद्वानों द्वारा खोज पूर्ण सामग्री, (अप्राप्य)

२. **लोक-कला निबन्धावली, भाग ३** :—राजस्थानी लोक-कलाओं, लोक-गीतों, लोकानुकृतियों आदि से सम्बन्धित अधिकारी विद्वानों द्वारा प्रस्तुत खोज और अध्ययन-पूर्ण सामग्री, पृष्ठ ११० मूल्य ३) रुपया,

३. **लोक-कला निबन्धावली, भाग ४** :—लोक नाट्यों के विकासक्रम तथा राजस्थानी ख्यालों पर वैदुष्य पूर्ण निरूपण, पृष्ठ ९०, मूल्य ३) रुपया,

४. **राजस्थान के लोकानुरंजन** :—राजस्थानी लोक-जीवन में प्रचलित नृत्य और अभिनय आदि की खोज और अध्ययन पूर्ण सचित्र विवेचन, लेखक:-श्री देवीलाल सामर, सहायक श्री गींडाराम वर्मा, मूल्य १) ५० पैसे ।

५. **राजस्थान का लोक-संगीत** :—राजस्थानी लोक-संगीत का खोज और अध्ययनपूर्ण विवेचन, लेखक—श्री देवीलाल सामर, सहायक—श्री गींडाराम वर्मा, पृष्ठ १५२, मूल्य ३) रुपया,

६. **राजस्थानी लोक नृत्य**:—राजस्थानी लोक नृत्यों का अध्ययन पूर्ण सचित्र विवेचन, लेखक—श्री देवीलाल सामर, सहायक—श्री गींडाराम वर्मा पृष्ठ ७६, मूल्य २) रुपया,

७. **राजस्थानी लोकनाट्य** :—राजस्थान में प्रचलित लोक नाटकों का अध्ययनपूर्ण विवेचन, लेखक—श्री देवीलाल सामर, सहायक—श्री गींडाराम वर्मा, मूल्य २) रुपया,

८. **राजस्थानी लोकोत्सव** :—राजस्थान में प्रचलित त्यौहारों और उत्सवों का अध्ययन-पूर्ण विवेचन, लेखक—श्री गींडाराम वर्मा मूल्य २) रुपया,

९. **राजस्थान स्वर-लहरी, भाग १** :—राजस्थान में प्रचलित अत्यन्त लोक प्रिय ३२ पारिवारिक लोक गीतों का, उनकी स्वर लिपि एवं भावार्थ सहित, सरस संग्रह, पृष्ठ ११२, मूल्य ३) रुपया,

लोक रंग मंचीय कलाओं की अपने प्रकार की एक मात्र पत्रिका:—'**लोक कला** के ग्राहक बनिये । वार्षिक मूल्य ४) रुपया ।

लोक कला के पुराने अंक भी प्राप्य । प्रति अंक ३)५० पैसे ।

प्रकाशन विभाग

भारतीय लोक-कला मंडल,

उदयपुर, (राजस्थान)

१-हमारे जवानों के शौर्य ने शत्रु के मनसूबे धूल में मिला दिए।

२-हमारे यहाँ बने हथियारों के सामने अमरीकी हथियार कामयाब न हो सके।

३-हमें अपने को अन्नोत्पादन में भी आत्म निर्भर होना है।

४-अमरीका या अन्य देशों का मुँह ताकना धोखा दे सकता है।

देश का हर व्यक्ति राष्ट्र की इस सबसे बड़ी समस्या में अपना योग दे सकता है। जिला सहकारी बैङ्क में अपना धन आप जमा करें जहाँ वह पूर्ण सुरक्षित है, ब्याज दूसरे बैङ्कों से आपको ज्यादा मिलेगा और किसानों के अन्नोत्पादन के कार्य में आपके धन का उपयोग होगा।

जिला निवासियों के लिये हमारी शुभ कामनाओं के साथ हम आशा भी करते हैं कि आप अपने ही सहकारी बैंक को अपनाकर अपना तथा इस बैंक का और अपने राष्ट्र का सदैव हित करेंगे।

ब्याज की दरें

सेविंग खाता पर	४	प्रतिशत वार्षिक
कौल डिपौजिट पर	३।।।	,, ,,
६ माह की अमानत पर	५।।	,, ,,
१ साल की अमानत पर	६।	,, ,,
२ साल की अमानत पर	६।।	,, ,,
३ साल की अमानत पर	६।।।	,, ,,
४ साल की अमानत पर	७	,, ,,
५ साल की अमानत पर	७।	,, ,,
७ साल की अमानत पर	७।।	,, ,,

मथुरा जिला सहकारी बैंक लि०, मथुरा

अपनी सम्पूर्ण बचत आज ही

उत्तर प्रदेश कोअपरेटिव बैंक लिमिटेड

प्रधान कार्यालय लखनऊ में

जमा कर अपनी आर्थिक स्थिति सुदृढ़ कीजिये

उक्त बैंक सहकारी आन्दोलन के अन्तर्गत सरकारी साझेदारी तथा बैंकिंग संस्थान अधिनियम के अन्तर्गत सरकार द्वारा निरीक्षित एक मात्र एवं विश्वसनीय बैंकिंग संस्था है

शाखाएँ— आगरा, अलमोड़ा, बरेली, फैजाबाद, डी० ए० वी० कालेज कानपुर, गोंडा, पीलीभीत, कानपुर, रामपुर, सीतापुर, वाराणसी।

क्षेत्रीय कार्यालय— आगरा, गोरखपुर, कानपुर, बरेली।

हमारी विशेषताएँ

१—राज्य की समस्त कृषि योजनाओं के लिए जिला एवं केन्द्रीय सहकारी बैंकों के माध्यम से आर्थिक सुविधाएँ प्रदान करना।

२—प्रत्येक प्रकार की बैंकिंग सुविधायें प्रदान करना।

३—अल्प सामयिक एवं मियादी अमानतें आकर्षक दरों पर स्वीकार करना।

आप भी राष्ट्र निर्माण योजनाओं की पूर्ति, उसकी समृद्धि के निमित्त अपना धन लगाकर सहयोग प्रदान कर राष्ट्र निर्माण में हाथ बटाएँ।

अन्य जानकारी

क्षेत्रीय अधिकारी, शाखा प्रबन्धक या मुख्य कार्यालय से प्राप्त कीजिये

गत ५ वर्षों में बैंक की प्रगति के कुछ आंकड़े

	३०–६–६०	३०–६–६५
१—पूँजी	२५४·७६ लाख	५३८·७६ लाख
२—अमानतें	७४७·४६ लाख	२०६०·०८ लाख
३—सहकारी संस्थाओं को ऋण दिया गया	१३०५·९५ लाख	३३३६·२५ लाख
४—लाभ	१६·०५ लाख	३७·०२ लाख

गङ्गासिंह चूड़ामणि	**मथुरा सिंह**	**ए० आर० खान**
आई० ए० एस० अध्यक्ष	उपाध्यक्ष	सामान्य प्रबन्धक

किसानों के लिये स्वर्ण अवसर

यानमार पावर टिलर

(पी० के० ए० २० एन० टी० ९५ के०)

(७-१०·५ अश्व शक्ति का)

प्रयोग कर

कृषि उत्पादन में अभूतपूर्व वृद्धि का महत्वपूर्ण साधन

छोटे किसान के लिए ट्रैक्टर जो संसार प्रसिद्ध १०·५ बी० हा० पा० यानमार डीजल इञ्जिन एवं निम्न उपयन्त्रों से युक्त है :-

न्यूमैटिक रब्बर ह्वील्स, राटार टिलर स्टैण्डर्ड टूल किठ माउन्टेड डीजेल इञ्जिन यानमार माडेल एन० टी० ९५ के० आयरन ह्वील्स वाटर फिल्ड राइडिंग लापरेट्स सेडल तथा न्यूमैटिक रीयर ह्वील एक्स्टेंशन ऐटरी तथा कवर, स्वायल हीपिंग बोर्ड लाइट इक्विपमैण्ट डायनेमों के साथ दो साइड राइडर टीम स्पेशल रौटरी ब्लेड्स, ड्रम के साथ, फोर्क राटार टाइन्स तथा दो स्टैग प्लाउ।

किसानों के कृषि सम्बन्धी प्रत्येक कार्य जुताई, हेंगाई, पटेला पानी निकालना व छिड़काब आदि।

विशेष जानकारी के लिये—कृपया सम्पर्क स्थापित करें :-

उत्तर प्रदेश

कोआपरेटिव फैडरेशन लिमिटेड,

६ कैंपर रोड, लखनऊ।

(उत्तर प्रदेश के लिये एकमात्र वितरक)

फोन नं० : २४८५२, २५८६४, २३५६३, २७७६०, २८०३३

मथुरा जिला परिषद्

अपने पूज्य स्वर्गीय प्रधान मंत्री श्री लालबहादुर शास्त्री

को श्रद्धाञ्जलि अर्पित करती है तथा उनके राष्ट्रीय नारे

जय जवान जय किसान

के परिपालनार्थ संकल्प करती है कि :—

देश की खाद्य समस्या के समाधान हेतु

१—लघु सिंचाई योजनाओं द्वारा चप्पा-चप्पा भूमि को सिंचित करके दो फसली व तीन फसली बनायेंगे।

२—गोबर, कूड़े, पत्तो आदि की खाद बनाकर रसायनिक खाद की कमी को दूर कर उन्नतिशील कृषि यन्त्रों को अपनाकर अच्छे बीज प्रयोग कर, कीट नाशक दवाओं से फसलों की रक्षा कर अधिक अन्न उपलब्ध करायेंगे।

३—मत्स्य पालन, कुक्कुट पालन द्वारा सीमा पर लड़ने वाले जवानों को पौष्टिक आहार उपलब्ध करायेंगे।

४—सप्ताह में एक दिन व्रत रक्खेंगे।

सुरक्षा व समृद्धि हेतु

१—परिवार नियोजन के साधनों को अपनायेंगे।

२—राष्ट्रीय सुरक्षा प्रमाण-पत्रों पर धन लगायेंगे तथा राष्ट्रीय सुरक्षा कोष में गल्ला देकर जवानों का मनोबल बढ़ायेंगे।

शिक्षा व जन कल्याण हेतु

१—सभी बाल-बालिकाओं को शिक्षा प्राप्त हेतु पाठशाला भेजेंगे।

२—आवागमन के साधनों के सुधार के हेतु ब्रजयात्रा-मार्गों एवम् अन्य ग्रामीण मार्गों का निर्माण करेंगे।

ए० पी० सिंह
मुख्य अधिकारी
जिला परिषद्, मथुरा।

चकलेश्वर सिंह
अध्यक्ष
जिला परिषद्, मथुरा।

मुद्रक तथा प्रकाशक : श्री किशन प्रसाद जैन, संयुक्त मन्त्री, अखिल भारतीय ब्रज साहित्य मण्डल, मथुरा के लिए राष्ट्रीय प्रेस, डैम्पियर नगर, मथुरा में मुद्रित।

ब्रज भारती

फाल्गुन सं० २०२३ वि०

ब्रज साहित्य मंडल
प्रधान कार्यालय मथुरा

सम्पादक :
वृन्दावन दास
बी० ए०, एल-एल० बी०

प्रकाशक :
किशन प्रसाद जैन
संयुक्त प्रधान मन्त्री

अखिल भारतीय ब्रज साहित्य मंडल, मथुरा

वर्ष २०] [अङ्क ४

* अनुक्रमणिका *

१—ब्रजभारती (कविता) ... श्री किशोरीलाल गोस्वामी १
२—सम्पादकीय ... श्री वृन्दावनदास २
३—रूपसुधा (कविता) ... श्रीमती निर्मला 'साधना' ४
४—महाकवि नाथूराम शर्मा 'शंकर' ... श्री भगवान सहाय पचौरी एम.ए. ५
५—स्वप्न (कविता) ... श्री सुभाषी, आगरा ७
६—साहित्यिक बन्धुओं से निवेदन ... श्री बनारसीदास चतुर्वेदी ८
७—हिन्दी साहित्य का भक्तिकाल ... श्री वृन्दावनदास ९
८—यमुना (कविता) ... श्री रामचरण हयारण 'मित्र' १४
९—लोक साहित्यसेवी डा॰ सत्येन्द्र ... श्री श्रीराम शर्मा एम. ए. साहित्यरत्न १५
१०—हर्षोत्तर भारत के प्रान्तीय राज्य ... श्री वृन्दावन दास १९
११—ब्रज गरिमा गीत (कविता) ... श्री बालमुकुन्द चतुर्वेदी ३१
१२—कविवर श्री लाल बलवीर और उनका काव्य ... श्री राधेश्याम अग्रवाल एम. ए., साहित्यरत्न ३३
१३—ब्रज राष्ट्र गीत (कविता) .... श्री बालमुकुन्द चतुर्वेदी ३७
१४—पत्र-व्यवहार व्रज भारती के प्रति ... श्री केदार दत्त तत्राड़ी एम. ए. ३८
१५—हिन्दी सम्वर्द्धिनी योजना के प्रति दो पत्र... श्री डा॰ अम्बा प्रसाद 'सुमन' ३९
१६—साहित्य सौरभ (समीक्षा) ... श्री वृन्दावन दास ४३

ब्रजभारती

[अखिल भारतीय ब्रज-साहित्य-मण्डल मुख-पत्रिका]

वर्ष २०] मथुरा फाल्गुन सं० २०२३ [अङ्क ४

* ब्रज-भारती *

(श्री किशोरीलाल गोस्वामी)

गहि कृष्ण कथा की जथा सिगरी,
कलि कल्मष-पंक पखारती है।
सुचि सारदा जासु की मोद मढ़े उर,
आरती आपु उतारती है।
नित चार पदारथ देत किसोरि,
कबीजन हेरि पुकारती है।
लहि सूर से स्वामी सतोगुनी सुन्दर,
धन्य भई ब्रजभारती है।

सम्पादकीय

पिछले अङ्क के प्रकाशित होने की तिथि से इस अङ्क के निकलने की मध्यावधि में देश में सामान्य निर्वाचन के रूप में एक महान् घटना घटित हुई है। कोई भी पत्र, पत्रिका चाहे वह साहित्यिक हो अथवा और कुछ देश व्यापी महत्वपूर्ण घटनाओं से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकती। सामान्य निर्वाचनों के परिणामों ने देश की सत्ता में विस्मयकारी परिवर्तन ला दिया है। जनता ने कांग्रेससत्ता के प्रति अपना क्षोभयुक्त क्रोध प्रकट किया है। निर्वाचन के फल स्वरूप कुछ राज्यों में कांग्रेस सत्तारूढ़ होगी और कुछ में विरोधीदल सत्ता ग्रहण करेंगे। सत्तारूढ़ दलों के सम्मुख उनका कर्तव्य स्पष्ट है। उन्हें जनता को उन कष्टों से त्राण देना है जिनसे वह आज पीड़ित है और जिनके कारण कि उसने सत्ता में परिवर्तन करने का प्रयास किया है।

नवनिर्मित सरकारों का सर्वप्रथम कर्तव्य यह है कि वस्तुओं के गगनचुम्बी मूल्यों में एक खासी कमी लाने का यत्न करें। लक्ष्य की सिद्धि के हेतु उन्हें पूर्वापर कुछ भी न सोचना चाहिये, यह कार्य तो करना ही है चाहे इससे कोई खुश हो अथवा नाराज। संचित खाद्यान्न मण्डी में आना चाहिये चाहे वह व्यापारी के पास हो अथवा किसान के।

दूसरा काम प्रशासनिक मशीनरी के कार्यकलाप में क्रान्तिकारी परिवर्तन लाना है। आज सरकारी कार्यालयों और उनके अधिकारियों से जनता बड़ी दुःखी है। सरकारी दफ्तरों में काम के घण्टों में खूब गप्पें लड़ाई जाती हैं, जो अधिकारी देखरेख पर हैं वे अपनी कमजोरियों के कारण या तो चुप रहते हैं या खुद भी आनन्द मनाने वालों में सम्मिलित हो जाते हैं। बिना लिये दिये किसी का काम होता ही नहीं। फाइल के आधार पर कोई आज्ञा नहीं होती, काम तब ही कुछ सम्भव है जब कि प्रार्थी महिनों दफ्तरों की खाक छानता फिरे। कांग्रेस को इन कारणों से बड़ी क्षति उठानी पड़ी है। यदि गैर कांग्रेसी सरकारों ने इस स्थिति को न बदला तो उनकी भी वही दशा होगी जो आज कांग्रेस की हुई है।

छोटे-छोटे करों से जनता को परेशानी अधिक हुई और सरकार को आय कम। बसूलयावी में भ्रष्टाचार भी खूब पनपा है। ऐसे कर अविलम्ब उठा लिये जाने चाहिये। कांग्रेस को अब सत्ता का मोह त्यागकर कुछ आदर्शों पर चलना चाहिए और हमारा तो निश्चित मत है कि उसे केन्द्र में योग्यतम व्यक्तियों की मिली-जुली राष्ट्रीय सरकार बनाना चाहिये।

हमारी योजनायें

बड़े हर्ष का विषय है कि हमारी योजनाओं के प्रति विद्वानों का ध्यान आकर्षित हो रहा है। हमने गताङ्क में हिन्दी भवन निर्माण योजना पर कुछ अपने विचार व्यक्त किये थे। आदरणीय श्री बनारसीदास जी चतुर्वेदी ने उस योजना को उत्तम बताते हुये उसके प्रति कुछ शङ्कायें

'अमर उजाला' में एक लेख द्वारा प्रस्तुत की थी, हमने इन शङ्काओं का समुचित समाधान 'अमर-उजाला' के ही माध्यम से कर दिया था। हमारा अपने धनी मानी बन्धुओं से यही अनुरोध है कि वे देश व विदेश में मन्दिर और धर्मशालाओं के बजाय हिन्दी-भवनों का निर्माण करावें। इससे सुकृत के साथ-साथ हिन्दी की सेवा भी होगी। हिन्दी इतनी सरल और सुबोध है कि यदि हम हिन्दी-भक्त चेष्टा करें तो हिन्दी अंग्रेजी की भांति विश्व की लोकप्रिय भाषा बन सकती है।

हिन्दी सम्वर्द्धिनी योजना के प्रति भी अनेक सहयोगात्मक आश्वासन प्राप्त हो रहे हैं। मित्रवर ज्यो० राधेश्याम जी द्विवेदी के लेख 'ब्रज भाषा में कृषि सम्बन्धी शब्द" का अच्छा स्वागत हुआ है। डाक्टर अम्बाप्रसाद जी 'सुमन' ने हमें इसी योजना के सम्बन्ध में दो पत्र भेजे हैं। वे योजना के प्रसार की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं अतः हम उन्हें इस अङ्क में अन्यत्र अविकल छाप रहे हैं। डाक्टर सुमन तो इस दिशा में पहिले ही सराहनीय प्रयत्न कर चुके हैं, निस्संदेह वे जनपदीय शब्द-विज्ञान के अधिकारी विद्वान् हैं। पद्मश्री डाक्टर हरिशङ्कर जी शर्मा का 'ब्रजभाषा और राष्ट्र भाषा' शीर्षक लेख इसी योजना के अन्तर्गत आशीर्वादात्मक है।

चतुर्वेदी जी के दो पत्र

पं० पद्मसिंह शर्मा ने पं० बनारसीदास जी चतुर्वेदी के सम्बन्ध में एक बार लिखा था कि "चतुर्वेदी जी की दीनबन्धुता और परदुःखकारता प्रसिद्ध है।" हम इसमें एक विशेषण और जोड़ेंगे और वह है उनकी महती सदाशयता। चतुर्वेदी जी ने इसी सदाशयता से प्रेरित होकर 'लेखकों की समस्यायें' और "ब्रज मण्डल साहित्यिक गतिविधि" शीर्षक दो लेख लिखे हैं जो हाल ही में क्रमशः सैनिक और अमरउजाला में प्रकाशित हुए हैं। लेखकों की वर्तमान दुरवस्था का उन्होंने जो चित्रण किया है वह इतना तथ्यपूर्ण है कि उसके विषय में दो मत हो ही नहीं सकते। हमारा तो केवल यही सुझाव है कि पूर्व इसके कि अपनी नैराश्यपूर्ण मनःस्थिति में वह समाज का कुछ अहित कर बैठे हम उसकी दशा सम्हालने की चेष्टा करें। क्षेत्रीय आधार पर यदि लेखकों के संघ बनाये जायें तो ये इकाइयां अपेक्षित धन संग्रह के लिये भी समर्थ होंगी और अपने सदस्यों के हितों के लिए आवाज बुलन्द करने के निमित्त उचित मन्च प्रस्तुत करने की भी भूमिका अदा करेंगी।

ब्रजमण्डल की साहित्यिक और सांस्कृतिक उन्नति के लिये उन्होंने जो विचार प्रस्तुत किये हैं वे अकाट्य हैं। यहनिर्विवाद है कि प्रथक् प्रदेश निर्माण का आन्दोलन तो सत्तात्मक राजनीति पर ही आधारित है। परन्तु यदि उत्तर-प्रदेश के विभाजन और स्वतन्त्र ब्रजप्रदेश के निर्माण से ब्रजसाहित्य और संस्कृति का उन्नयन हो सके तो हम इसके लिए भी तैयार हैं। वैसे तो अलग प्रान्तों के निर्माण की बात आर्थिक, सामाजिक और भावात्मक एकता की दृष्टि के इस देश की जनता के हित में नहीं है। ब्रजप्रान्त अलग बने न बने अथवा देर से बने हमें अपने लक्ष्य के प्रति सचेष्ट होकर निरन्तर काम करते रहना है। जैसा कि चतुर्वेदी जी का आशय है यदि ब्रज के लिये तन-मन-धन न्योछावर करने वाले उचित संख्या में उत्पन्न हो गये तो ब्रज प्रान्त के बनने में देर न लगेगी ऐसा हमारा भी विश्वास है।

नवीन प्रकाशन

पं० सत्यनारायण कविरत्न द्वारा अनुवादित ब्रजभाषा पद्य की पुस्तक देश भक्त हौरेशस छपकर तैयार हो गई है। हम बहुत शीघ्र और भी ख्यातनाम ब्रजभाषा कवियों की कृतियाँ मुद्रित करने की व्यवस्था कर रहे हैं। अप्रकाशित उत्कृष्ट रचनाओं को मुद्रित करना तो बहुत ही आवश्यक है।

'नवीन' विद्यापीठ की स्थापना

हमारे पास अनेकों पत्र इस विषय के आये हैं कि मध्यप्रदेश के छहों विश्वविद्यालयों में 'नवीन' विद्यापीठों की स्थापना किया जाना आवश्यक है। २९ अप्रैल सन् १९६७ को नवीन जी का स्मृति दिवस है। पं० बाल कृष्ण शर्मा नवीन आधुनिक युग के एक महान् कवि थे। उनकी कृतियों के विषय में अनुसन्धान एवं अध्ययन वांछनीय है। यदि मध्यप्रदेश के विश्वविद्यालय नवीन जी के अध्ययन एवं शोध के निमित्त आवश्यक केन्द्र स्थापित कर सकें तो वह अखिल भारतीय ब्रजसाहित्य मण्डल के लिये एक प्रसन्नता का विषय होगा।

—वृन्दावनदास

❀ रूप सुधा ❀

(श्रीमती निर्मला 'साधना')

बरसे घन बारिद के चमके,
दुइ बूँद परे सरसीरुह पाती।
बारि धरे घरनीं देहरी,
दुइ दीप मनावत को सँझवाती।
परिगे दुइ स्वाति के बूँद मनो,
मुख सीपी में मोती बने यहि भाँती,
कहिबे कछु 'साधना' जोग नहीं,
मनमोहन के दँतियान की पाती।

× × × × ×

भार सँभार न पावत है मनौ,
पैजनियाँ पग में बजनी।
कहुँ सैनहि मातु बुलावत है,
छवि कोटि मनोभव की छजनी।
कहुँ पाटी धरे परियंकन की,
पग धीरे ते धारत है अवनी।
धँसि जाय न भू कहुँ भार परे,
हरि डोलत मातु कीं धै छिगुनीं।

महाकवि नाथूराम शर्मा 'शंकर'

(श्री भगवानसहाय पचौरी, एम. ए.)

शब्द अर्थ सम्बन्ध युक्त भाषा विशाल थल,
शक्ति सरोवर गद्य पद्य रचना विशुद्ध जल ।
आशय मूल प्रबन्ध नाल भूषण सुन्दर दल,
'शङ्कर' नवरस फूल ग्रन्थ मकरन्द मोद फल ।
परहित पराग छकि छकि मुदित रसिक भृंग गण गुंजरित,
नित या साहित्य सरोज को उन्नति कवि कुल रवि करत ।

हिन्दी साहित्य की उन्नति की कामना इन शब्दों में कविता-कामिनी-कान्त आशु-कवि 'शंकर' शर्मा के अतिरिक्त और कौन कर सकता था अँग्रेजी के उस वैभवकाल में, जब आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी प्रभृति कुछ साहित्य उन्नायक अपनों के ही हाथों उपेक्षित होते थे । सचमुच जिन कवि लेखकों ने अपने प्राणों की बाती को तिल तिल जलाकर भारती भवन को उपेक्षा के सघन अन्धकारावृत घटाटोप में भी आलोकित रखा, उनमें पं० नाथूराम शर्मा 'शंकर' मूर्धन्य थे । जीं हाँ शान्त सागर में यन्त्रचालित यान को अनायास खे लेने वाले जय जयकारों के मध्य विजय पताका फहराने वाले अनेक माँझी मिल सकते हैं किन्तु विक्षुब्ध, उत्ताल तरंगित, भयंकर झंझोद्वेलित कम्पायमान उदधि की आलोड़ित विषफेन सदृश जलोर्मियों की चुनौती देकर पुराने डाँड़ और पतवार से लघु नाव को खेने का दम भरने वाले सपूतों के नाम कितने हैं ? आज से लगभग ८० वर्ष पूर्व रचित महाकवि 'शंकर' के काव्य के तत्व आज भी उतने ही प्रगतिशील, उत्प्रेरक, उर्वर और उन्नत है जितने उस युग में थे । वास्तव में जो साहित्य धरती से जन्मा, धरती की प्रेरणा से अनुस्यूत हुआ, धरती में पनपा, फूला और फला वही साहित्य अमर और सार्वकालिक और सार्वजनीन होता है । महाकवि शङ्कर का काव्य ऐसा ही काव्य है, जो गंगाजल की भाँति पवित्र, स्वस्थ परम्पराओं का पोषक, सुस्वादुकर और सुस्वास्थ्यकर है । सरस्वती के इस वरद पुत्र की चैत्र शुक्ला पंचमी को जयन्ती तिथि है, अतः हम इस अवसर पर उस अग्रजन्मा के व्यक्तित्व और कृतित्व को अपनी भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं ।

अलीगढ़ का पुराना नाम 'कोल' है, जो 'कोर' का विकृत रूप है जिसका अर्थ है 'कोना' ब्रज की कोर पर अवस्थित होने के कारण ही कोल का नाम पड़ा । इसी कोल (अलीगढ़) से पूर्वोत्तर दिशा में ९ मील की दूरी पर स्थित हरदुआगंज नाम गाँव में पं० रूपराम शर्मा के घर में उनकी पत्नी श्रीमती जानकी देवी के गर्भ से एक दिव्य बालक ने जन्म लिया । उसका नाम रखा गया कृष्ण चन्द्र । बालक कृष्ण चन्द्र को डेढ़ वर्ष की अत्यल्प आयु में ही मातृ सुख से बंचित होना पड़ा । पिता ने बालक के कान छिदवा दिये और धरती ने उसे नाम दे दिया 'नाथूराम' । यही

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

नाथूराम महाकवि 'शंकर' के नाम से विख्यात कविताकामिनी कान्त हुआ । गाँव के स्कूल में ही शिक्षा पाकर नाथूराम जी कानपुर में जब ओवरसियर के पद पर नियुक्त हुए आचार्य द्विवेदी इधर रेलवे की नौकरी को लात मार कर साहित्य सेवारत हुये थे । उसी प्रकार कवि शंकर ने भी नौकरी छोड़कर स्वतन्त्र रूप से साहित्य रचना करना आरम्भ किया और उदयपूर्ति हेतु आयुर्वेद का अभ्यास किया । ओवरसियर से वैद्यराज बने और कविता द्वारा उत्तरी भारत में धूम मचाने लगे । तत्कालीन सम्पादक मार्तंड पं० प्रतापनारायण मिश्र की प्रेरणा से ये बहुत पहले से ही कविरूप में उनके 'ब्राह्मण' पत्र में छपने लगे थे । शंकर जी इस बीच अम्बिकादत्त व्यास, राय देवी प्रसाद पूर्ण बदरीनारायण 'प्रेमघन' जैसे साहित्यकारों के घनिष्ट सम्पर्क में आ चुके थे । सामाजिक क्षेत्र में महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा आन्दोलित समाज सुधार की आँधी ने शंकर जी को नया दिशा बोध प्रदान किया । कवि प्रतिभा की प्रखर आग को सुधारवाद की वायु ने और भी उद्दीप्त कर दिया । शंकर जी आशु कवि थे । माँ शारदा उन्हें सिद्ध थीं । वेद ऋचायें उनकी रसना पर नर्तन करती थीं । वे कबीर की भाँति ज्ञानी, स्पष्टवादी और मौजी स्वभाव के थे । हास्य, व्यंग्य की चुटकियाँ लेने में वे सिद्ध हस्त थे । उस युग में समस्या पूर्तियाँ हुआ करती थी; विशेषकर कानपुर का 'रसिक समाज' समस्या पूर्तियों की विचित्रता के लिये प्रसिद्ध था । शंकर जी कठिन से कठिन, समस्या पूर्ति करने की कला में निष्णात थे । प्रत्युत्पन्नमति वे इतने थे कि कृष्ण बिहारी मिश्र, दुलारे लाल भार्गव प्रभृति विद्वानों को दांतों तले उँगली दबानी पड़ जाती थी । कवि सम्मेलनों में सफलता का सेहरा कबि शंकर से सिर पर ही बाँधा जाता था । कवि सम्मेलनों सम्बन्धी अनेक संस्मरण कवि शंकर की काव्य चातुरी और वाग्वैदग्ध्य के कहे और सुने जाते हैं । तत्कालीन समाज और साहित्य पर शंकर जी के विचारों की गहरी छाप पड़ी । शंकर जी का काव्य धरती से अनुस्यूत और राष्ट्रीयता की भावना से अनुप्राणित था । भाषा इतनी सरस, सरल, मधुर और ओजपूर्ण होती थी कि उनका काव्य जनकाव्य की कोटि में आता है । 'सांची मानि सहेली परसों प्रीतम लेवै आवैगो' प्रभृति प्रभूत गीतों और भजनों में लोक प्रियता धन्य हो उठी है । अलीगढ़ जनपद में ही नहीं पूरे ब्रज मण्डल में उनके गीत और भजन बाँसुरी और अलगौजों के रन्ध्रों से निकलकर वायुमण्डल को रससिक्त करते हैं ।

आर्य समाज के मंच से की गई उनकी सेवाओं का सामाजिक महत्व तो है ही, राजनैतिक क्षेत्र में भी उनकी सेवाएँ अविस्मरणीय हैं । तत्कालीन राजनैतिक उथल-पुथल में उन्होंने सक्रिय भाग लेकर राष्ट्रीयता की ध्वजा को ऊँचा रखा । उनका काव्य ही राष्ट्र हित से ओतप्रोत है । उनकी लेखनी विविध विषयों पर चली । सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक विषयों पर खंडन विखंडन करते हुए लोक रंजनकारी मत का प्रतिपादन करना उन्हें अभीष्ट था । समाज की जड़ों को खोखला करने वाली कुरीतियों पर उनकी लेखनी से गोले गिरते थे । अन्ध परम्पराओं के वे महान् विरोधी थे । दीन दुखियों की दशा का चित्रण वे सजीवता से करते थे । 'शंकरसरोज' में अनेक विषयों पर भजन, गीत, कवित्त, सवैया आदि संग्रहीत हैं जो आज भी नये लगते हैं । 'अनुराग रत्न' गर्भरंग रहस्य' 'शंकर सतसई' उनके दूसरे काव्य ग्रन्थ है । 'शंकर सर्वस्व' नाम से उनकी काव्य कृतियों का एक वृहत संग्रह निकल चुका है । 'बहारे चमन' एवं 'हरिश्चन्द्र' नाटक

भी उन्होंने लिखे। शंकर जी का ब्रजभाषा और खड़ी बोली पर समान अधिकार था। वे दोनों भाषाओं में समान सिद्ध हस्त कौशल से रचनायें करते थे। उनकी खड़ी बोली में ब्रज का पद-लालित्य और ब्रजभाषा में खड़ी बोली की प्रगतिशीलता का गुण पाया जाताहै। वे फारसी, उर्दू के भी अच्छे ज्ञाता थे। उन्होंने उर्दू में शेर तथा रुबाइयाँ भी लिखी हैं। संक्षेप में कहा जा सकता है कि इनका काव्य बिहारी, पद्माकर एवं रत्नाकर की टक्कर का है।

शंकर जी एक महान परम्परा के निर्माता और पोषक थे। हिन्दी के सुविचारशील उपासक के रूप में उनका कहना था—

"हिन्दुओं के धर्म की है घोषणा घमंड भरी
हिन्दी नहीं जाने उसे हिन्दी नहीं जानिये।"

❀ स्वप्न ❀

[श्री सुभाषी, नवप्रभात आगरा]

अमित उपासना बिचार-व्यूह बीथिनि में—
बिबस भईं सी कढ़िबे कौं अभिलाखतीं।
भावना बिसेस लेस हूजे है सकीं न पूरी—
आकुल अधीर तीर मानस के ताकतीं।
कोटि कामना, कुलीन कामिनि सीं, लाज भरीं—
पाये अबसाद, ब्याधि, नेह द्वार नाखतीं।
भासत सुभासी, प्यासी बासना सरूप-साजि—
सपन समूह बनीं, अन्तर में झाकतीं ॥१॥

× × × × ×

धूम के अधार, निराधार प्रतिमा के सार,
बिपुल बिचार रूप धारि बहु आवने।
माया के मबासे खासे, मृग की मरीचिका से,
अजब तमासे घट माँहि दर सावने।
भूत की मिठाई बाजीगर की डिठाई जैसे,
जगत झुठाई की सचाई दरसावने।
आवने न जावने न देने पावने हू कछू.
मन भरमा बने सो सपन सुहावने ॥२॥

साहित्यिक बन्धुओं से निवेदन

[श्री बनारसीदास चतुर्वेदी]

प्राचीन काल से ही सांस्कृतिक तथा साहित्यिक दृष्टि से ब्रजमण्डल का स्थान काफी ऊँचा रहा है और यहाँ अच्छे से अच्छे लेखक तथा कवि उत्पन्न होते रहे है, और ऐसे अवतारी महापुरुष भी, जिनके बारे में सम्पूर्ण देश में पर्याप्त साहित्य रचना होती रही है। वर्तमान काल में भी हमें निराश होने का कोई कारण नहीं। ब्रजभाषा में अब भी प्रभावशाली कविताएँ लिखी जाती हैं। ब्रज के प्राचीन इतिहास की खोज भी जारी है और अभी हाल में श्री प्रभुदयाल जी मीतल का एक महत्वपूर्व ग्रन्थ प्रकाशित हुआ है।

डाक्टर सत्येन्द्र जी के लोकवार्ता सम्बन्धी प्रशंसनीय कार्य से तो हिन्दी जगत परिचित है ही। रेडियो पर 'ब्रज माधुरी' का प्रोग्राम भी एक आनन्द प्रद घटना है, पर एक चीज की कमी हमें दीख पड़ती है, वह यह है कि ब्रज भूमि के नवीन लेखकों तथा कवियों को अपनी रचनाओं के प्रकाशित करने के लिये उपयुक्त अवसर कम ही मिलते हैं और उनको प्रोत्साहन देने वाले या पथ प्रदर्शन करने वालों का भी प्रायः अभाव है। आचार्य वासुदेव शरण अग्रवाल का आकस्मिक निधन हमारे जनपद के लिये महान दुर्घटना है।

ब्रजभूमि में अनेक साहित्यिक तथा सांस्कृतिक संस्थायें हैं पर वे पारस्परिक सहयोग से काम नहीं कर रहीं। साहित्य सेवियों तथा साहित्य प्रेमियों को विचार परिवर्तन करने के मौके भी नहीं मिलते। इस परिस्थिति में पत्रों का आश्रय लेना अनिवार्य हो गया है।

यदि ब्रज के लेखक तथा कवि अपनी बातें हमें लिख भेजें तो हम यथावकाश उनका उपयोग कर सकते हैं।

हिन्दी साहित्य का भक्तिकाल

सन् १४०० ई० से १८०० ई० तक

(श्री वृन्दावनदास)

इविहास की दृष्टि से हिन्दी और उसके विकास को तीन कालों में विभाजित करना उपयुक्त होगा । आदिकाल (सन् १४०० ई० तक) मध्य काल (सन् १४०० ई० से १८०० ई० तक) और आधुनिक काल (सन् १८०० ई० से अद्यावधि) । इस काल विभाजन में मध्यकाल को पुनः दो कालों में विभाजित करना चाहिये । (१) पूर्वमध्यकाल जिसे भक्तिकाल कहते हैं सन् १४०० ई० से १७०० ई० तक और (२) उत्तरमध्यकाल जिसे रीतिकाल कहते हैं सन् १७०० ई० से १८०० ई० तक ।

वास्तव में हिन्दी साहित्य के इतिहास का मध्यकाल ही उसकी समृद्धि और उत्कर्ष का काल है । इसी काल में कुछ ऐसे साहित्य का निर्माण हुआ जो न केवल शाश्वत है वरन् जिसने हिन्दी, हिन्दू और हिन्द को भी अमरता प्रदान कर दी है । इसी काल में हिन्दी न केवल सामर्थ्यवान् हुई वरन् वन्दनीय भी हो गई । इस काल में उसने इतना उत्कर्ष प्राप्त कर लिया कि वह सदा सर्वदा के लिए विश्व की श्रेष्ठतम भाषाओं की श्रेणी में रक्खे जाने योग्य हो गई । इस काल के साहित्य निर्माण ने उसका स्थान बहुत उच्च और सुरक्षित बना दिया है ।

भक्तिकाल का आविर्भाव वीरगाथाकाल के बाद ही हुआ । जब वे वीर हिन्दू राजा ही न रहे अथवा पराजित हो गए तो कवि किन वीरों की प्रशस्ति में कविता की रचना करते ? परिणामस्वरूप कविता ने राज्याश्रय से निकल कर साधुसन्तों की कुटियाओं में प्रवेश किया। उसका उपयोग वीरों के गुणगान के स्थान पर भगवान् की उपासना, कीर्तन, आराधना आदि में होने लगा । पारस्परिक कलह के वशीभूत होकर हिन्दू राजे आपस में लड़ मरे और मुट्ठी भर मुसलमानों ने भारत पर अधिकार कर लिया । यद्यपि दो शताब्दियों तक राजाओं के मुसलमान आक्रान्ताओं से घोर युद्ध हुए तथापि संगठित शक्ति के आधार पर विरोध के अभाव में मुसलमान विजयी हुए और हिन्दुस्तान का राज्य उनके हाथ में आ गया । अफगान सुलतानों के शासन काल में हिन्दुओं पर बड़े अत्याचार हुए । कई बार उनके मन्दिर और देवालयों को ध्वंस किया गया । ब्रजप्रदेश के अन्तर्गत मथुरा और वृन्दावन आदि पवित्र तीर्थस्थानों पर तो उनकी कुदृष्टि सदैव ही रही, कारण वे इन स्थानों को काफिरों का काबा कहते थे । मुसलमान शासकों के अत्याचारों के परिणामस्वरूप हिन्दुओं की आर्थिक स्थिति तो बहुत ही अवनत हो गई, उन पर जजिया आदि कर लगाये गये । अलाउद्दीन खिलजी के राज्य में तो हिन्दू सिर उठा कर भी न चल सकते थे, उनको पूजा, उपासना करने की भी छूट नहीं थी । बलात् धर्म परिवर्तन की घृणित प्रक्रिया भी निरन्तर चालू थी । यदि स्वेच्छा से कोई हिन्दू इस्लाम धर्म ग्रहण कर लेता तो सांसारिक सुख, सुविधा और समृद्धि के सभी मार्ग उसके लिए खुल जाते । परन्तु हिन्दुओं ने न तो भयानक उत्पीड़न से और न प्रलोभन से ही

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अपने धर्म को छोड़ा। स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः वाला सिद्धान्त सदैव उनके मस्तिष्क में रहता था। यद्यपि हिन्दुओं के आन्तरिक, सामाजिक दोषों के कारण तथा मुसलमानों की धर्मान्धता के परिणामस्वरूप बलात् धर्मपरिवर्तन द्वारा मुसलमानों की संख्या बहुत बढ़ गई थी तथापि मुसलमानों को भारत में वह सफलता प्राप्त न हुई जो उन्हें ईरान और मिश्र आदि देशों में हुई थी। उन देशों में तो उन्होंने वहां की संस्कृति को पूर्ण रूप से ध्वस्त कर दिया और इस्लाम का झण्डा फहरा दिया था। भारत में मुसलमानों को ईरान और मिश्र की सी सफलता न मिलने का मुख्य कारण उनकी हिन्दुओं की अपेक्षा बौद्धिक हीनता थी। हिन्दू संस्कृति का उच्च चिन्तन एवं उसकी कल्पना और जीवन शक्ति का उत्कर्ष इस्लाम के प्रचार में मुख्य रूप से बाधक थे।

जिस समय मुस्लिम विजेताओं के धार्मिक एवं कठोर अत्याचारों से हिन्दू समाज पीड़ित था और उसको अतीव मानसिक वेदना हो रही थी भक्ति आन्दोलन ने उसको त्राण दिया और मानसिक शान्ति प्रदान की। कृष्णभक्ति के प्रेम मार्ग ने उनके शुष्क जीवन में सुख, सरसता, मधुरता और उदारता ला दी। सिद्धों, नाथों और निर्गुणी उपासना वाले सन्तों के शुष्क वचनों को सुनते-सुनते जनता को शताब्दियां बीत चुकी थी। इससे पहले बौद्धों के नीरस तर्क भी लोगों ने सुने और समझे थे। परन्तु इन बचनों और तर्कों से जनता के दुःखी मन को सान्त्वना न मिली भक्ति धर्म के आचार्यों एवं कवियों ने भगवान की सगुण लीलाओं के गान द्वारा जनता को प्रेमरस का आस्वादन कराया और राधा कृष्ण की सरस एवं मधुर लीलाओं का वर्णन कर रस की ऐसी मन्दाकिनी बहाई जिसमें उस समय के स्वधर्मी और विधर्मी सभी आप्लावित हो गये।

धार्मिक भावों की प्रेरणा से जिस साहित्य का निर्माण हुआ वह ब्रजभाषा का सर्वोत्कृष्ट साहित्य था। भक्त सूरदास और तुलसीदास आदि ने भगवान् की लीलाओं का वर्णन ब्रजभाषा के माध्यम से लिखा। इससे इस भाषा की अभूतपूर्व उन्नति हुई। इन्हीं भक्त कवियों ने उसको प्रांजलता, मनोहरता, कोमलता और सरसता प्रदान की। इन कवियों द्वारा भक्ति साहित्य ऐसे समय में निर्मित हुआ जब हिन्दू धर्म और संस्कृति खतरे में थी। इस अलौकिक काव्यसाहित्य का आश्रय पाकर हिन्दू धर्म और संस्कृति ने अपनी रक्षा की। विपत्ति के समय में हिन्दुओं ने भगवान की शरण ली इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है। मुसलमानों के अत्याचारों के कारण भक्ति साहित्य का प्रभूत निर्माण हुआ और वह खूब पनपा भी। श्रमद्व ल्लभाचार्य की माधुर्यरस प्रधान भक्ति ने हिन्दुओं को मन्त्रमुग्ध कर दिया, उसने उन्हें मुसलमान होने से बचा लिया। भक्ति मार्ग में ऊँच-नीच का भेद न था, इसलिये इससे सांस्कृतिक एकता भी उत्पन्न हुई।

भक्तिकाल की कविताएँ साधारणतया दो प्रकार की उपासना विषयक थीं—(१) निर्गुण, (२) सगुण। निर्गुण काव्य दो प्रकार का था—(१) ज्ञान प्रधान, (२) प्रेम प्रधान।

भक्तकवि कवीर, दादू, सुन्दरदास, रैदास, पल्टूसाहब, नानक, भीखा आदि ज्ञान प्रधान निर्गुणी शाखा के कवि गण थे। इन कवियों ने सामाजिक रूढ़ियों पर प्रहार किया, और शुद्ध ईश्वर प्रेम का प्रतिपादन किया। ये लोग आडम्बर के विरोधी थे और निर्भय होकर ईश्वरोपासना के पक्षपाती थे। इनका लक्ष्य था निरन्तर सत्य की खोज। ये नाम के महात्म्य का प्रचार करते थे।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

वेदपाठ, तीर्थाटन, छुआछूत, अवतारवाद, कर्मकाण्ड आदि की इन्होंने खिल्ली उड़ाई और इनको बुराइयों के रूप में चित्रित किया। कबीर का राम ब्रह्म है। ये कविगण गुरुमहिमा के कायल थे।

निर्गुणी सन्तों के काव्यों में कुछ दोष भी थे। इनकी भाषा में सामाजिक अशिष्टता और उच्छृङ्खलता की गन्ध आती थी, कारण इन्होंने खण्डनात्मक शैली को अपनाया। इनकी कविताएँ नीरस और शुष्क थीं तथा जनसाधारण के समझ में कम आती थीं। समस्त सन्तकाव्य पद, गीत, शब्द, सबद आदि में ही पाया जाता है, सन्त काव्य में प्रबन्ध पटुता नहीं है। सन्तकाव्य के प्रधान गुण हैं (१) दलित जातियों में स्वाभिमान उत्पन्न करना, (२) अछूतोद्धार की भावना उत्पन्न करना, (३) हिन्दू, मुस्लिम एकता के लिये भूमि प्रशस्त करना, (४) रूढ़ियों पर प्रहार, (५) आडम्बर-प्रियता का पर्दाफाश करना।

निर्गुणी सन्तों में से प्रत्येक के जीवनवृत्त, साहित्य, और विचारों पर इतनी सामग्री है कि एक छोटे से लेख में उसका पूरा उल्लेख असम्भव है। अकेले कबीरदास पर बीसियों ग्रन्थ लिखे गये हैं। कबीर के लिखे ६१ ग्रन्थ बताये जाते हैं परन्तु यह निश्चयात्मक रूप से नहीं कहा जा सकता कि इनमें से वास्तव में कितने ग्रन्थ कबीर के लिखे हुए हैं। कबीर के बाद उनकी रचनाएँ निम्नलिखित ग्रन्थों में लिपिबद्ध है—(१) कबीर ग्रन्थावली, (२) कबीरसाहब का साखी संग्रह, (३) कबीर साहब की शब्दावली, (४) सन्त कबीर की साखी आदि।

प्रेमप्रधान भक्ति जिसको प्रेमाश्रयी भक्ति भी कहते हैं प्रेमगाथा काव्य के रूप में पनपी। इस काव्य के रचयिता प्रधानतया सूफी मुसलमान थे। मलिक मुहम्मद जायसी प्रेमगाथा काव्य के सर्वश्रेष्ठ कवि थे। जायसी का 'पद्मावत' प्रेमगाथा काव्य का सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ समझा जाता है। प्रेमकाथा काव्य का मुख्य उद्देश्य आध्यात्मिक प्रचार था। इसके कवियों ने लौकिक कथाओं के द्वारा अलौकिक की व्यंजना की है, आत्मा के परमात्मा से मिलन का वर्णन किया है। इनकी कथाओं में साधक गुरु की सहायता से शैतान रूपी बाधाओं पर विजय प्राप्त कर ईश्वर को पाता है। यद्यपि कवि मुसलमान थे इनकी लिखी कथाओं का कथानक हिन्दुओं की कथाओं के आधार पर था। जायसी के पद्मावत के अतिरिक्त कुतवन की मृगावती, मनझन की मधुमालती, उस्मान की चित्रावली तथा स्वप्नावती, मुग्धावती आदि उल्लेखनीय प्रेमगाथा काव्य हैं।

सगुण भक्ति के दो प्रकार सामान्यतया अधिक प्रचलित हुए—(१) रामोपासक, (२) कृष्णोपासक। रामानुजाचार्य और रामानन्द ने रामोपासकभक्ति का प्रचार किया। उन्होंने राम के साक्षात् विष्णु का अवतार बतलाया। उन्होंने राम में ब्रह्म की भी कल्पना की। राम भक्ति के महान् प्रवर्तक स्वामी रामानन्द ने समानता के भाव से भक्ति का मार्ग सब के लिए खोल दिया। उन्होंने संस्कृत के बजाय हिन्दी में रामभक्ति का प्रचार किया जिससे जनसाधारण ने इसे खूब अपनाया। मातृभाषा में रामभक्ति का प्रचार चरम सीमा पर जब पहुँचा जब गोस्वामी तुलसीदास का आविर्भाव हुआ। गोस्वामी जी देश की अनेक भाषाओं तथा संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान् थे। उन्होंने अपनी विद्वत्ता का उपयोग राजामहाराजाओं की प्रशस्ति में न कर भगवान के लीलागान में किया जिससे इस भारत भूमि का विशाल जनसमूह लाभान्वित हुआ। तुलसीदास ने अपनी

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

रचनाओं के द्वारा न केवल समाज का महान् उपकार किया है वरन् एक विशाल समन्वय उपस्थित कर दिया है। उनकी महान् रचनाओं में भाषा और संस्कृत, लोक और शास्त्र, गृहस्थी और सन्यासी, भक्ति और ज्ञान तथा निर्गुण और सगुण के बीच अपूर्व समन्वय दृष्टिगोचर होता है। वस्तुतः तुलसीदास ने अपने समन्वयकारी प्रयत्नों के द्वारा समाज के आगे एक शाश्वत लोक धर्म ही प्रस्तुत कर दिया है जो जन मानस को सदैव प्रकाशित और प्रभावित करता रहेगा। शताब्दियों की विषम परिस्थितियों और विभिन्न चिन्तन शैलियों के संघर्षों के उपरान्त तुलसीदास ने जिस लोकधर्म का प्रतिपादन किया उसे समाज ने कृतज्ञतापूर्वक ग्रहण किया। यही कारण है डा० ग्रियर्सन ने इनको गौतम बुद्ध के बाद भारत का सबसे बड़ा लोकनायक बतलाया है। प्रसिद्ध इतिहासकार डा० विंसेएट स्मिथ तुलसीदास जी को मुगल काल का महानतम व्यक्ति मानते हैं।

तुलसीदासजी के कम से कम बारह ग्रन्थ तो प्रामाणिक हैं ही। उनके नाम हैं (१) रामचरितमानस, (२) वैराग्य संदीपनी, (३) पार्वती मङ्गल, (४) जानकीमङ्गल, (५) दोहावली, (६) रामलला नहछू, (७) बरवैरामायण, (८) रामाज्ञा प्रश्न, (९) कवितावली, (१०) गीतावली, (११) कृष्ण गीतावली, (१२) विनय पत्रिका। इनके अतिरिक्त बहुत से ग्रन्थ ऐसे हैं जिनको तुलसीदासजी का कहा जाता है परन्तु विद्वान उनको ऐसा नहीं मानते हैं।

तुलसीदासजी की भाषा और काव्य पर श्री राजनाथ शर्मा के विचार जो उन्होंने अपनी पुस्तक "हिन्दी साहित्य का इतिहास" शीर्षक में प्रगट किये हैं अति सुन्दर है। उन्होंने लिखा है "भाषा और काव्यशास्त्र के क्षेत्र में भी इस युग पुरुष ने समन्वय किया था। वे भाषा और भावों के पूर्ण अधिकारी थे। उन्होंने अपने समय में प्रचलित दोनों साहित्यिक भाषाओं—ब्रज और अवधी को समान रूप से अपनाया। दोनों पर उनका पूर्ण अधिकार था। भाषा के अतिरिक्त पिंगल शास्त्र के सभी नियमों का उन्होंने पूर्ण पालन किया था। साथ ही अपने समय की और अपने से पूर्व की प्रचलित समस्त काव्य शैलियों का सफलतापूर्ण उपयोग किया था। .....उनके साहित्य में सब रसों का चित्रण है। वीर, शृङ्गार, हास्य, शान्त आदि सभी कुछ उच्चकोटि का है। उन्होंने कहीं-कहीं संस्कृत का भी प्रयोग किया है। कहीं-कहीं विदेशी शब्द भी आ गये हैं। उनकी अद्भुत प्रतिभा के कारण समस्त हिन्दी संसार ने उन्हें एक स्वर से 'हिन्दी का सर्वश्रेष्ठ कवि' घोषित किया है।"

भक्ति मार्ग हिन्दू धर्म में ईश्वर प्राप्ति का सुगम योग है। वैसे तो भागवत धर्म ईसा से ५००, ६०० वर्ष पहिले ही से था परन्तु शुङ्गसातवाहनों के काल में उसे प्रोत्साहन मिला। चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य हर्ष आदि के समय में भी भागवतधर्म वृद्धि पर था। दक्षिण में पल्लव राजाओं ने भागवत धर्म का सम्मान किया। नवीं सदी तक आलवार सन्तों द्वारा प्रचारित भक्ति मार्ग वैष्णव धर्म के रूप में था। भगवान के प्रति शरणागत होकर आत्मसमर्पण करना वैष्णव धर्म का मुख्य अङ्ग है।

श्रीमद्बल्लभाचार्य (सन् १४७३ से १५३१ तक) ने शुद्धाद्वैत और पुष्टिमार्ग का प्रचार किया। बल्लभाचार्य का मत है कि जीव की मुक्ति तब होती है जब वह गोपी भाव प्राप्त करके श्रीकृष्ण की पति के रूप में सेवा करता है। जब ब्रह्म के नीरस चिन्तन से लोग ऊब गये थे तब बल्लभ स्वामी ने श्रीकृष्ण भक्ति के रस सुधा से जनता को अलौकिक आनन्द प्राप्त कराया। उन्होंने

भगवान की लीलाओं में अखण्ड श्रद्धा प्रकट की। देश की तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियों और हिन्दुओं की उत्पीड़ित अवस्था में उन्होंने श्रीकृष्ण को ही समाज की एकमात्र गति समझा।

"म्लेच्छाक्रांतेषु देशेषु पोषेषु निलयेषु च।
सत्पीडाव्यग्रलोकेषु कृष्ण एव गतिमम॥"
(वल्लभाचार्यरचित कृष्णाश्रय स्तोत्र)

गोपियों का प्रेम अलौकिक था। उनकी सी तन्मयता, तल्लीनता, अनन्यता कहीं किसी धर्म और साहित्य में दृष्टिगोचर नहीं होती है। श्री मद्वल्लभाचार्य ने इस कारण इसी प्रकार की भक्ति को पूर्ण समझा और इसी आधार पर उसका प्रचार किया। उनका कथन है कि श्रीकृष्ण की प्राप्ति होने पर न तो वासना रहती है और न काम चूँकि श्रीकृष्ण पूर्ण परब्रह्म निष्काम हैं। लोगों ने इसके आध्यात्मिक पक्ष को सही रूप से ग्रहण नहीं किया अतः उसको लौकिक रूप प्रदान कर दिया और श्रीकृष्ण को नायक और राधिका को नायिका के रूप में प्रस्तुत कर दिया, इससे बड़ा अहित हुआ।

श्रीमद्वल्लभाचार्य का ब्रजभाषा काव्य पर प्रभूत प्रभाव पड़ा। उनके पुत्र विट्ठलनाथजी तथा अष्ट छाप के कवियों ने इसकी श्री वृद्धि की। इनका सृजा हुआ साहित्य ब्रजभाषा की अमूल्य निधि है। अष्ट छाप के कवियों में महात्मा सूरदास का स्थान प्रथम है। महाकवि सूरदास बल्लभाचार्य के शिष्य थे और श्रीनाथजी के मन्दिर में कीर्तनमण्डली में बैठकर भगवान की दैनन्दिनी लीलाओं के पद गाया करते थे। कहते हैं इन्होंने सवालाख पदों की रचना की थी। परन्तु अब तक कुल आठ हजार पदों का पता चल पाया है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने सूर की महान रचनाओं के विषय में लिखा है "सूर की रचना शैली इतनी प्रगल्भ और काव्याङ्गपूर्ण है कि आगे होने वाले कवियों की शृङ्गार और वात्सल्य की उक्तियाँ सूर की जूठन जान पड़ती हैं। जिस प्रकार रामचरित का गान करने वाले भक्त कवियों में गोस्वामी तुलसीदासजी का स्थान सर्वश्रेष्ठ है उसी प्रकार कृष्ण-चरित्र गाने वाले कवियों में महात्मा सूरदासजी का है। वास्तव में ये हिन्दी-काव्य गगन के सूर्य और चन्द्र हैं।" वास्तव में सूरदास ने साहित्य को अपनी कृतियों से अलंकृत ही नहीं किया वरन् अमर भी बना दिया है।

सगुण भक्ति की राम भक्तिशाखा के तुलसीदासजी के अतिरिक्त और भी अनेक कवि हुए हैं उनमें भक्तमाल के रचयिता नाभादास, रामायणमहानाटक के प्रणेता प्राणचन्द, हनुमन्नाटक के लेखक हृदयराम उल्लेखनीय हैं। अग्रदास ने रामध्यान मंजरी आदि कई ग्रन्थ लिखे। रामकाव्य की परम्परा तो भक्तिकाल के बाद भी चलती रही और आज भी है परन्तु हिन्दी साहित्य के भक्तिकाल के अन्तर्गत उसका उल्लेख अनावश्यक है।

सूरदास के अतिरिक्त अनेकों कवि भक्तिकाल में हुए हैं जिन्होंने कृष्णभक्ति पर काव्य-साहित्य का सृजन किया। नन्ददास ने जिन्हें गोस्वामी तुलसीदास का भाई बताया जाता है 'भँवरगीत' और सुप्रसिद्ध ग्रन्थ 'रास पंचाध्यायी' की रचना की। अष्ट छाप के अन्य कवियों में इनका स्थान सूरदास से दूसरा है। अष्ट छाप के कवियों में गोस्वामी हितहरिवंश जी का नाम भी उल्लेखनीय है। स्त्री कवयित्रियों में कृष्णभक्त मीरा का नाम सर्वोच्च है। मीराबाई के भजन बड़ी उच्च-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

कोटि के हैं और उन्होंने जनमानस में बड़ा मधुर स्थान पाया है । ये श्रीकृष्ण की पति के रूप में उपासना करती थी । इन्होंने अपने पदों और भजनों में अपने प्रियतम को निराकार, परब्रह्म, गिरधरनागर, अविनाशी आदि कहा है । इनके पदों में माधुर्य का तो असीम श्रोत बह ही रहा है परन्तु उसमें वासना का लेशमात्र भी समावेश नहीं है ।

उपर्युक्त कृष्णभक्त कवियों के अतिरिक्त सुदामा चरित्र के रचयिता नरोत्तमदास तथा ध्रुवदास, स्वामी हरिदास, गदाधर भट्ट, नारायण भट्ट, सूरदास मदनमोहन आदि के नाम भी उनके विशिष्ट काव्य साहित्य के कारण उल्लेखनीय हैं ।

मुसलमान कवियों में रसखान और रहीम ने उत्कृष्ट कविता की रचना की । रसखान मुसलमान होते हुए भी विट्ठलनाथ के शिष्य बनकर बल्लभ सम्प्रदाय को मानने लगे । कृष्णभक्ति पर उन्होंने दोहों, कवित्तों और सवैयों में उत्तम रचना की ।

रहीम का पूरा नाम अब्दुल रहीम खानखाना था । ये अकबर के दरबार में रहते थे । ये अरबी और फारसी के साथ-साथ संस्कृत और हिन्दी के भी विद्वान थे । रहीम दोहावली, बरवै नायिका, मदनाष्टक, रास पंचाध्यायी आदि काव्यग्रन्थों की इन्होंने रचना की ।

यों तो अकबर तथा अन्य मुगल सम्राटों के दरबार में अन्य कई प्रसिद्ध कवि हो गये हैं परन्तु उनकी कृतियाँ रीतिकाल से सम्बन्धित थीं, अतः उनका उल्लेख रीतिकाल के वर्णन में किया जायगा ।

❀ यमुना ❀

बरनैं कबीन्द्र शेष शारदा सुरेन्द्र कहा,
लगन तिहारी जो गुविन्द सौं लगी रहै ।
तटकी अभीत प्रिय प्रीति की पुनीत रीति.
पीत पटवारे की प्रतीति में पगी रहै ।
'मित्र' वारि सरस प्रवाहन को मन्द धनि,
बाँसुरी के सप्त स्वर सुर सौं जगी रहै ।
जमुना तिहारी धार स्याम को सँजोग पाय,
एक रस होय स्याम रंग में रँगी रहै ।

—ले० रामशरण हयारण 'मित्र' साहित्य शिरोमणि

लोकसाहित्य सेवी डॉ० सत्येन्द्र

श्रीयुत श्रीराम शर्मा, एम. ए. साहित्यरत्न (२५-कृष्णापुरी, अलीगढ़)

अभी गत २ सितम्बर १९६६ को डा० सत्येन्द्र जी ५९ वर्ष पूरे कर साठवें वर्ष में प्रविष्ट हुए हैं। लोक साहित्य के मर्मज्ञ विचारक की गत ५९ वर्षों की साधना का स्थूल चित्र आपके समक्ष रखता हूँ। अभी हाल ही में जब लोकसाहित्यिक अध्ययन के व्यास डॉ सत्येन्द्र के ग्रन्थों का अध्ययन कर रहा था और मेरी मेज पर हिन्दी में लोकसाहित्य पर लिखे गये अन्य अद्यावधि ग्रन्थ भी थे, तभी मेरी छोटी पुत्री कुमारी निर्मला शर्मा मेरे कक्ष में आई और कहने लगी—पितादी दि तिताब तौ धाई थेर ती एँ" यह बात एक छोटे शिशु के द्वारा डॉ० सत्येन्द्र कृत "लोक साहित्य विज्ञान" नामक विशाल ग्रन्थ के मूल्यांकन में कही गई थी। मैंने इस घटना को इसलिये दिया है कि अध्येस्तता, आलोचक व लेखक तो विद्वान् डॉ० सत्येन्द्र जी के द्वारा हिन्दी के लोक साहित्य विषयक अध्ययनों की संस्थापना किये जाने का मूल्याङ्कन करेंगे हीं, एक अल्पायु शिशु ने भी हिन्दी के समस्त लोकसाहित्य—संसार में अधिकतम महत्व वाले ग्रन्थ 'लोक साहित्य विज्ञान' के लिए उपर्युद्धृत शब्द कह डाले।

ब्रज-प्रदेश के लोक साहित्य के इस मनीषी ने जो सर्वांगीण अध्ययन प्रस्तुत किया वह ऐसा ताजमहल-निर्माण था कि जिसे ब्रज-लोक साहित्य संसार में आठ आश्चर्यों में एक न कहकर केवल अकेला आश्चर्य ही कहें तो अतिशयोक्ति नहीं होगी।

एक शान्त विचारक जिसने "कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन्' की उक्ति को साकार स्वरूप प्रदान करते हुये लोकसाहित्य की सेवा में (उसका प्रचार किये बिना) उस सुनार की सी छैंनी चलाई जिससे विश्वनाथ की एक मनमोहक स्वर्ण मूर्ति बन गई। अपनी लेख बल पर इस पृथ्वीपुत्र को जीवन में कितनी विषम परिस्थितियों से जूझना पड़ा, यह उस समय ही सामने आएगा जब हम उनके जीवन-परिचय पर सूक्ष्म दृष्टि डालेंगे। सन् १९४२ से १९५३ तक 'ब्रज-भारती', 'ब्रज लोक संस्कृति' व 'पोद्दार अभिनन्दन ग्रन्थ' प्रभृति पत्र व ग्रन्थों का सम्पादन किया। क्या इसके पीछे कोई स्वार्थ था? क्या इसके पीछे कुछ फल प्राप्त करने की कामना थी? कदापि नहीं। ऐसा इस स्वार्थ पूर्ण युग में एक उदाहरण बनकर हमारे सम्मुख उपस्थित होता है। जिस व्यक्ति ने स्वार्थ को अपने मस्तिष्क में किसी भी झरोखे से न घुसने दिया हो, उसके लिए जो कुछ कहा जाय वह थोड़ा ही होगा।

लोकसाहित्य के साथ उनका रागात्मक संबन्ध हो गया और इसीलिये लोकसाहित्य पर लिखने वालों के लिये उनके मन में कितना स्थान होता है, इसके लिए विज्ञान ने यदि कोई मस्तिष्क पटल का चित्र खींचने वाला कैमरा आविष्कृत किया होता तो पता चलता।

डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल जनपदीय जीवन, संस्कृति एवं जनपद कल्याणी योजना के महानृतम पोषकों में से थे। उनके डॉ० सत्येन्द्र के प्रति जो विचार थे उनका उल्लेख करने का लोभ

में निवारण नहीं कर सकता। डॉ० सत्येन्द्र जैसे लोक-साहित्य सेवी के लिये (जो एक निस्वार्थ सिपाही की भाँति लोक-साहित्य-साधनी पथ पर आजीवन आरूढ़ रहा है) डा० अग्रवाल जी की लेखनी से जो भाव निसृत हुए उनका उल्लेख हमें कई स्थानों पर मिलता है।

डा० अग्रवाल की दृष्टि में यदि कोई सच्चा, सुलझा एवं सुविज्ञ पृथ्वीपुत्र ब्रजभाषा लोकसाहित्य को मिला था तो वह थे डा० सत्येन्द्र। 'पोद्दार अभिनन्दन ग्रन्थ' की भूमिका में उन्होंने इसी प्रकार का उल्लेख करते हुये यहाँ तक कह डाला कि यदि डा० सत्येन्द्र जैसा सहायक उन्हें न मिलता तो वह महान् ग्रन्थ हिन्दी जगत के सम्मुख नहीं आता।

'ब्रजसाहित्य मण्डल' मथुरा के अधिवेशनों में व्याख्यान देते समय, श्री बनारसीदास चतुर्वेदी जी और देवेन्द्र सत्यार्थी जी आदि को पत्र लिखते समय जहाँ भी डा० अग्रवाल को अवसर मिलता वे इस पृथ्वीपुत्र के विषय में लिखते अघाते न थे। १७-११-१९४३ को डा० अग्रवाल ने श्री बनारसीदास चतुर्वेदी जी को पत्र लिखा था श्री सत्येन्द्र की का इन शब्दों में उल्लेख किया—

"श्री सत्येन्द्र मेरे अभिन्न मित्र हैं। उनका सौहार्द मेरे लिये गङ्गा के निर्मल जल की तरह शुद्ध है और मेरा प्रेम उनके प्रति कामधेनु के दूध की तरह निर्विकार है। वाक्य संयम और भावशुद्धि ये दो उपदेश प्रियदर्शी अशोक ने विभिन्न सम्प्रदायों की सम्मनस्कता और एकता के लिये कहे हैं, साहित्यिक जगत में भी इनकी आवश्यकता है। मैं सोचता हूँ कि श्री सत्येन्द्रजी का सोचना और लिखना एक शुभ लक्षण है। सत्य का जो पथ हमें दिखाई नहीं देता, उसके प्रति हमें सचेत करने के लिये यह ईश्वरी प्रेरणा उनके हृदय में उत्पन्न हुई है।"[१] यहाँ हिन्दी साहित्य के मर्मज्ञ पुरातत्व पंडित, संस्कृत के गहन अध्येता, भारतीय प्राचीन इतिहास-वेता डा० अग्रवाल ने उपर्युक्त शब्दों में डा० सत्येन्द्र में अभूतपूर्व सत्य का उद्घाटन करने की एक अद्भुत प्रवृत्ति के दर्शन किये हैं। यही नहीं कि डा० अग्रवाल के मन पर श्री सत्येन्द्र जी के विचारों का सम्मान पूर्ण प्रभाव मात्र रहा हो अपितु वे श्री सत्येन्द्र जी के नवलगढ़ (राजस्थान) चले जाने पर कितने भावाकुल हो गये थे? वह इन शब्दों में देखिये—

"सत्येन्द्र जी जनपदों की पृथकता से सशंक हैं। परिस्थिति कितनी निष्ठुर है कि उनको हिन्दी के एक दूरस्थ जनपद के गढ़ में ही ले जाकर बन्द कर दिया—मध्यदेश की उछलती गङ्गा-यमुना की धाराओं से एकदम दूर! सहानुभूति का एक सरस पत्र उनको लिखना न भूलियेगा। मरुस्थल में गये व्यक्ति को मध्यदेश की इस सरसता की कितनी आवश्यकता रहती है।"[२]

इस उद्धरण से यह स्पष्ट हो जाता है, कि डा० सत्येन्द्र के प्रति उनके हृदय में कितनी आत्मीयता थी। श्री सत्येन्द्र के नवलगढ़ चले जाने पर ब्रजलोक साहित्य की सेवा करने के प्रति सभी विद्वान् सशंक हो गये थे किन्तु यह आशंका डा० सत्येन्द्र ने निर्मूल सिद्ध कर दी। द्वितीय

---

[१] पृथ्वीपुत्र (डा० वासुदेव शरण अग्रवाल) पृ० १८५ : सस्तासाहित्य मण्डल, नई दिल्ली (सन् १९४९ ई०)

[२] वही पृ० ५०

महायुद्ध के कारण 'ब्रज-भारती' के ठप्प प्रकाशन को नवलगढ़ जाकर पुनः चालू किया और वर्ष २ अङ्क ४ जयपुर में ही छपवाकर प्रकाशित कराया।

ब्रज-लोक-साहित्य के लेखकों का निर्माण—

डा० सत्येन्द्र जी की स्वयं की ही यह प्रवृत्ति नहीं रही कि ब्रज-लोक-साहित्य का अध्ययन, लेखन एवं प्रकाशन कराया हो अपितु उन्होंने ऐसे अनेक लेखकों को जन्म दिया, प्रोत्साहित किया जो ब्रज-लोक-साहित्य विषयक लेखन की ओर प्रवृत्त हुए। आपकी प्रेरणा के फलस्वरूप सर्व श्रीचंद्रभान 'राधेराधे' रामस्वरूप शर्मा, रामदत्त भारद्वाज, राधेश्याम द्विवेदी, रामनरायण अग्रवाल, गोपालदत्त शर्मा, कन्हैयालाल चंचरीक, श्रीनिवास गोयल और चुन्नीलाल शेष आदि दर्जनों लेखक ब्रज-लोक साहित्य पर लिखने की ओर प्रवृत्त हुए।

लोक साहित्य के शोध पंडितों का निर्माण--

लेखकों के अतिरिक्त डा०सत्येन्द्र को अपने निर्देशन में एक कोड़ी[1] से भी अधिक डाक्टर बनाने का श्रेय प्राप्त है।

शोध कार्य-क्षेत्र में नयी दिशा—

आगरा विश्वविद्यालय के शोधकार्य करने वाले विद्वानों में वैसे ही वे चौथे व्यक्ति थे। इस पर भी आपके शोध का विषय-क्षेत्र इतना था कि आगरा विश्वविद्यालय में ही वे अग्रणी नहीं रहे अपितु समस्त हिन्दी जगत् में शोध पंडितों के मार्गदर्शक के रूप में प्रतिष्ठित हुए। इस सरस्वतीपुत्र ने जो दिशा शोध के क्षेत्र में दी उस पर चलकर सर्व श्री गणेशदत्त, बद्रीप्रसाद परमार, गोविन्दसिंह बंधारी, कृष्णचन्द्र शर्मा, वी० पी० शुक्ल, त्रिलोचन पांडेय आदि विद्वानों ने तो लोक साहित्य के विविध पक्षों पर आगरा विश्वविद्यालय से पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त की। साथ ही साथ अन्य विश्वविद्यालयों से भी लोकसाहित्य पर दर्जनों डाक्टरेटकी उपाधियाँ मिली हैं। डा० सत्येन्द्र जी का शोध प्रबन्ध "ब्रज-लोकसाहित्य का अध्ययन" लोकसाहित्य के शोध कर्त्ताओं के लिये पथकृति के रूप में रहा है।

ब्रज-लोक-साहित्य व लोक संस्कृति के प्रतिपादक—

उन्होंने जहाँ भी गोता लगाया एक अनूठा रत्न वे खोजकर लाये। ब्रज भाषा काव्य तो उनसे पूर्व ही इतना समृद्ध था कि उससे भारतवर्ष का प्रत्येक विद्वान् प्रभावित था। किन्तु ब्रज-प्रदेश के जनपदों में विकीर्ण लोक-साहित्य का संकलन व संग्रह करके उसके महत्व का प्रतिपादन जिस गरिमा के साथ किया उसके लिये जो कुछ भी कहा जाय, वही थोड़ा है। डा० धीरेन्द्र वर्मा के शब्दोंमें "इस ग्रन्थ के पढ़ने से ब्रज लोकसाहित्य का पूर्ण आलोचनात्मक परिचय पाठक को प्राप्त हो जाता है × × × श्री सत्येन्द्र जी का प्रस्तुत अध्ययन भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के इस भावी विशाल मन्दिर की नींव की एक सुदृढ़ ईंट है। इन ईंटों के सहारे ही इस संस्कृति

---

[1] ब्रज भाषा में 'बीस' संख्या के लिये प्रयुक्त शब्द।

मंदिर का निर्माण संभव है।''[1] डा० सत्येन्द्र ने लोक-साहित्य एवं लोक-संस्कृति के महत्व प्रतिपादन में अनेक स्थानों पर बड़ा ही तार्किक एवं भावयुक्त परिचय दिया है—

''जन की आज तक प्राय: उपेक्षा रही है। उसका यथार्थ परिचय वार्ता में ही है। जन जीवन को सुधारने के लिये आज तक कितने ही आन्दोलन हुए हैं, उनमें जन जीवन की उपेक्षा तो मिलती ही रही है, अत्याचार भी विशेष रहा है।''[2]

लोक साहित्यानुरागी, अध्येता एवं साधक डा० सत्येन्द्र ने जब कहीं समाज में लोक संस्कृति या लोक साहित्य के प्रति अरुचिकारी तत्वों का दर्शन किया तो हार्दिक खेद व्यक्त किये बिना नहीं रहे। सन् १९४७ (सितम्बर) में ब्रज साहित्य मण्डल द्वारा आयोजित शिक्षण शिविर में लोक साहित्य-संकलन कर्त्ताओं के समक्ष डा० सत्येन्द्र के उद्गार कितने मार्मिक रूप में अभिव्यक्त हुए हैं—

''साहित्यकार ने साहित्य में 'ग्राम्यत्व' नाम का दोष स्पष्ट स्वीकार किया है। इस प्रकार उद्योग पूर्वक साहित्य को वृहद् और यथार्थ जीवन से अलग रखा गया। किन्तु मनुष्य की अभिव्यक्ति तो प्रत्येक क्षेत्र में होती है। ग्राम्यत्व भी अभिव्यक्ति है। भले ही वह किसी की दृष्टि में किसी कारण दोष हो। गाँव में भी साहित्य रचा गया, वह तथाकथित साहित्य में सम्मिलित नहीं किया गया, साहित्यकार की अभिजात्य दृष्टि ने उसे घृणा की दृष्टि से देखा, उसका तिरस्कार किया × × × आज के साहित्यकार ऐसे ग्राम साहित्य की यह कह कर उपेक्षा करते हैं कि इसमें कोई सुरुचि नहीं, गूढ़ कला नहीं, हम कला में इन्हें ऊँचा स्थान नहीं दे सकते।''[3]

ब्रज लोक संस्कृति व ब्रज लोक साहित्य के मर्म को किस प्रकार उन्होंने हिन्दी जगत के समक्ष खोलकर रखा? इसके ऊपर स्थानाभाव के कारण प्रकाश नहीं डाला जा सका है। उन्होंने लोक साहित्य के अध्ययनों को वैज्ञानिक बनाने के लिए एक निर्देशन ग्रन्थ ''लोक साहित्य विज्ञान'' हिन्दी जगत को देकर कितना उपकार किया, इसका उल्लेख नहीं किया जा सकता। इन पंक्तियों के लेखक ने परोक्ष रूप में ही एक दम दूर रहकर जो उनके ग्रन्थों के अध्ययन से निर्देशन प्राप्त किया है वह प्रत्यक्ष निर्देशन से भी कहीं अधिक है। लोक साहित्य के अध्ययन में पुनीत आत्मिक प्रेरणाएँ डा० सत्येन्द्र जी से उसे मिली हैं और यह भी एक स्वर से हिन्दी जगत मानता है कि उनका हिन्दी के लिये दिया योगदान महान है।

---

[1] ''ब्रजलोक साहित्य का भूमिका भाग'' साहित्यरत्न भंडार, आगरा सन् १९४९ ई० संस्करण।

[2] वही पृ० ३८।

[3] ''ब्रजलोक संस्कृति'' पृ० ४८ ब्रजसाहित्य मंडल मथुरा : २००५ वि०।

✤

हर्षोत्तर भारत के प्रान्तीय राज्य

(श्री वृन्दावनदास)

हर्ष की मृत्यु के बाद उत्तर भारत की राजनीतिक एकता भंग हो गई। मौर्य, गुप्त सम्राटों के समय में तथा इनके बाद हर्ष के समय में भी विदेशों और खास तौर से एशियाई देशों से दौत्य सम्बन्ध अविकल रूप से स्थापित थे। हर्ष की मृत्यु के बाद एक विचित्र दुर्घटना हुई। उसके ही एक अमात्य अर्जुन (जिसको इतिहास में अरुणाश्व भी लिखा है) ने कान्यकुब्ज के राज्य को हड़प लिया। हर्ष के उत्तराधिकारी की अनुपस्थिति में अर्जुन द्वारा राज्य पर अधिकार किया जाना तो कोई असाधारण घटना न थी परन्तु उसी काल में आये हुए चीन के दूतमण्डल से साथ उसका व्यवहार एकदम निन्द्य था। वांग-हुसेन-सी के नेतृत्व में आये चीनी मण्डल के कुछ सदस्यों का तो अर्जुन ने बध करा दिया और कुछ को बन्दी बना लिया। वांग-हुयेन-सी और उनके कुछ साथी रात्रि के अंधकार में नैपाल की ओर भाग निकले। अर्जुन ने मण्डल की समस्त सामग्री जिसमें भारतीय राजाओं द्वारा प्रदत्त अनेक उपहार भी थे लूट ली।

उस समय के नैपाल के राजा की लड़की तिब्बत के राजकुमार को व्याही गई थी। वांग-हुयेन-सी के प्रति इस दुर्व्यवहार से क्रोधित होकर नैपाल नरेश ने ७००० अश्वारोही और तिब्बत के शासक ने १२०० छटे हुये प्रशिक्षित सैनिक वांग-हुयेन-सी को कान्यकुब्ज से बदला लेने के लिये दिये। कामरूप के राजा भास्कर वर्मन ने भी सैन्य बल देकर उसकी सहायता की। इस सम्मिलित सैन्यबल से चीनी दूत ने अर्जुन की सेनाओं को तिरहुत में परास्त कर दिया। तीन हजार भारतीय सिपाहियों का क़त्लेआम हुआ, दस हजार के करीब नदी में डूब गये, अर्जुन परास्त हुआ और बन्दी बना लिया गया। वांग-हुयेन-सी ने बड़ी लूट मार की, अनेक लोगों का बध किया, लगभग १२ हजार सैनिक बन्दी बनाये और अर्जुन को चीन ले गया जहाँ पर कि उसका बध कर दिया गया।

ऐसी डाँवाडोल परिस्थिति में उत्तरी भारत में एकतन्त्र शासन न रहा और इसके परिणाम स्वरूप अनेक राज्यों का उदय हुआ। कोई आश्चर्य नहीं कि इन राज्यों में आधिपत्य के लिये परस्पर संघर्ष रहने लगा। चार राज्यों में मुख्य संघर्ष हुआ और वे थे कन्नौज, काश्मीर, मगध और राष्ट्रकूट। कुछ समय तक प्रतीहार लोग शक्ति सम्पन्न रहे। पीछे उनका स्थान पाल राजाओं ने ले लिया। पालों के अन्त के बाद उत्तरी भारत अन्हिलवाड़ा के चालुक्य, जेजाकमुक्ति के चन्देल ग्वालियर के कच्छपघट, दहल के चेदि, मालवा के परमार दक्षिणी राजपूताना के गुहिल और शाकम्बरी के चाहमान राज्यों की शक्तियों में विभाजित था।

कान्यकुब्ज (कन्नौज)

हर्ष की मृत्यु उपरांत ६५० ई० से सन् ७२५ ई०तक कान्यकुब्ज के राज्य का इतिहास अन्धकार के गर्त में है। सन् ७२५ ई० में यशोवर्मन् कान्यकुब्ज का राजा हुआ। इसके नाम के पीछे वर्मन लगा होने से ऐसा प्रतीत होता है कि यह मौखरी वंश का राजा था। वाक्पति रचित प्राकृत ग्रन्थ

गौड़वहो में यशोवर्मन के दिग्विजय का पता चलता है। उस ग्रन्थ के अनुसार यशोवर्मन ने मगध, बंग, मलय, महाराष्ट्र, सुराष्ट्र, मरु, पंजाब (श्रीकण्ठ) और हिमाचल प्रदेश पर विजय प्राप्त की। उत्तर रामचरित, मालतीमाधव और महावीर चरित्र के प्रणेता भवभूति और गौड़वहो प्राकृतग्रन्थ के रचयिता वाक्पति को यशोवर्मन की सभा में आश्रय प्राप्त था। एक बार यशोवर्मन को काश्मीर के राजा ललितादित्य मुक्तापीड़ से पराजित होना पड़ा।

यशोवर्मन की मृत्यु के बाद उसके तीन वंशजों ने राज्यपद प्राप्त किया परन्तु उनके राज्य के विषय में कोई ऐतिहासिक घटना ज्ञात नहीं है।

मौखरी वंश के बाद आयुधवंशीय तीन राजा हुए। उनके नाम हैं वज्रायुध, इन्द्रायुध और चक्रायुध। इन्होंने सन् ७७० ई० से ८१६ ई० तक राज्य किया। वज्रायुध को काश्मीर के राजा जयापीड़ ने युद्ध में परास्त किया। वज्रायुध की मृत्यु के उपरान्त एक बार राष्ट्रकूट राजा ध्रुव ने इन्द्रायुध को हराया। कुछ समय बाद बंगाल के राजा धर्मपाल ने 'इन्द्रायुध को राज्यच्युत करके चक्रायुध को कान्यकुब्ज का राज्य सौंप दिया। चक्रायुध के समय में कान्यकुब्ज पर विजय प्राप्त करने के लिये पाल, राष्ट्रकूट और प्रतीहार राजागण ने त्रिकोण संघर्ष आरम्भ कर दिया जिसमें अन्ततोगत्वा प्रतीहार वंशीय राजाओं को सफलता प्राप्त हुई। सन् ८१६ ई० में प्रतीहार राजा नागभट्ट द्वितीय ने चक्रायुध को गद्दी से उतार कर कान्यकुब्ज पर अपना राज्य स्थापित कर दिया।

प्रतीहार वंश

प्रतीहार वंशीय राजा गुर्जर थे। ये श्री राम के भाई लक्ष्मण को अपना पूर्वज मानते थे। कान्यकुब्ज पर अधिकार जमाने के पहिले प्रतीहार अवन्ति के स्वामी थे। नागभट्ट द्वितीय का पिता वत्सराज अवन्ति पर शासन करता था। वत्सराज के पूर्वज नागभट्ट प्रथम ने अरबों को भारत में घुसने नहीं दिया और उनके आक्रमण को सिन्ध तक ही सीमित करने का श्रेय नागभट्ट प्रथम को है। एक दान लेख से पता चलता है कि उसने शक्तिमान् म्लेच्छराज की सेनाओं को भयङ्कर रण में परास्त किया। यह म्लेच्छराज और कोई नहीं अरब लुटेरे थे। नागभट्ट प्रथम को ध्रुवराज राष्ट्रकूट से पराजय का मुँह देखना पड़ा।

वत्सराज के बाद उसका पुत्र नागभट्ट द्वितीय गद्दी पर बैठा। उसने अपनी राजधानी अवन्ति से हटा कर कान्यकुब्ज (कन्नौज) में करली। नागभट्ट द्वितीय ने पहिले तो चक्रायुध को हटा कर कान्यकुब्ज पर अपना अधिकार कर लिया फिर चक्रायुध के संरक्षक बङ्गाल के राजा धर्मपाल को मुंगेर के पास घोर युद्ध के बाद परास्त किया। इससे उसकी शक्ति बहुत बढ़ गई और आस-पास के राजाओं ने उसके पास उसकी अधीनता स्वीकार करने के सन्देश भेजे। भोज की ग्वालियर प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि उसने आनर्त (काठियाबाढ़), मालवा, मत्स्य (पूर्वीराजपूताना) किरात (हिमाचल प्रदेश) तुरुष्क (सिन्ध के अरब) और वत्स (कौशाम्बी) पर विजय प्राप्त की।

नागभट्ट द्वितीय के बाद रामभद्र राज्य का उत्तराधिकारी हुआ। उसका शासन निर्बल था। उसके शासन काल में सामन्तों ने सिर उठाया और वे अपने आपको स्वतन्त्र समझने लगे। रामभद्र के उत्तराधिकारी मिहिर भोज (सन् ८३६ ई० से ८८५ ई० तक) ने बहुत शीघ्र अपना

स्वत्वाधिकार स्थापित कर लिया। उसने अपने राज्य का विस्तार करना चाहा। बङ्गाल में राजा देवपाल का दृढ़ शासन था इसलिए वह बङ्गाल की ओर कुछ प्रगति न कर सका। परन्तु दक्षिण पश्चिम में नर्मदा और सुराष्ट्र तक उसका राज्य फैल गया। पूर्वी पंजाब भी उसके राज्य में सम्मिलित था। उसने अपने वंश के पुराने शत्रु राष्ट्रकूट शासक ध्रुवधारा वर्ष और कृष्ण द्वितीय से भी संघर्ष जारी रक्खा। अरब यात्री सुलेमान ने सन् ८९१ ई० में भोज के शक्ति व प्रबन्ध की बड़ी प्रशंसा की है। वह लिखता है कि भोज मुसलमानों का शत्रु था और उसके पास अपार अश्वारोही सैनिक बल था। उसके राज्य में जनता सुखी तथा समृद्ध थी।

महेन्द्रपाल प्रथम (सन् ८८५ ई० से ९१० ई०) के समय में प्रतीहारों की शक्ति स्थिर रही। उसने पाल राजाओं को परास्त कर पूर्व में मगध, उत्तर विहार और उत्तर बङ्गाल को उनसे छीन कर अपने राज्य में सम्मिलित कर लिया। काश्मीर के राजा शङ्करवर्मन् से उसे हार माननी पड़ी और उसके राज्य का कुछ भाग निकल गया। महेन्द्रपाल के दरबार में कवियों और साहित्यकारों को प्रश्रय प्राप्त था। राजशेखर इनकी सभा के जाज्वल्यमान नक्षत्र थे जिन्होंने काव्यमीमांसा, कर्पूरमंजरी, बालरामायण और बालभारत की रचना की थी।

महीपाल (९१० से ९४४ ई० तक)—महेन्द्रपाल का उत्तराधिकारी महीपाल हुआ। राजशेखर ने महीपाल को सम्पूर्ण उत्तरभारत का महाराजाधिराज कहा हैं। "प्रचण्ड पाण्डव" के एक श्लोक से विदित होता है कि महीपाल मुरल (नर्मदा प्रदेश के निवासी) मेखल (अमरकण्टक के निवासी) कलिङ्ग, केरल, कुलूत, कुंतल तथा रमठ का विजेता था। परन्तु राष्ट्रकूट जो कि प्रतीहारों के पुराने शत्रु थे महीपाल के समय मैं प्रबल वेग से आक्रमण करने लगे और प्रतीहार शक्ति का महीपाल के राज्य के अन्तिम दिनों में ह्रास होने लगा।

महीपाल का पुत्र महेन्द्रपाल द्वितीय हुआ। उसने किसी प्रकार राज्य को सुरक्षित रक्खा। उसके उत्तराधिकारी देवपाल के समय में जेजाकभुक्ति का चन्देल राजा यशोवर्मन् स्वतंत्र हो गया। उसने विष्णु की एक बहुमूल्य मूर्ति देवपाल से बलपूर्वक ग्रहण कर खजुराहो के एक मन्दिर में स्थापित की। देवपाल के बाद साम्राज्य का विघटन आरम्भ हो गया। प्रतीहारों के सामन्तों ने अपने आपको स्वतन्त्र घोषित कर दिया। उनमें प्रमुख ग्वालियर के कच्छपघाट, दहल के चेदि, मालवा के परमार, मेवाड़ के गुहिल और शाकम्बरी के चाहमान थे। दशवीं शताब्दी के अन्त में राज्यपाल प्रतीहारों के राज्यसिंहासन पर बैठा। उसके राज्यकाल में महमूद गजनवी के आक्रमण शुरू हो गये। काबुल और पंजाब के शाही राजा जयपाल और उसके पुत्र आनन्दपाल ने तुर्कों का सामना करने के लिये एक संघ बनाया था उसमें राज्यपाल ने भी अपनी सेना भेजी। परन्तु संघ की सेनाएँ पराजित हुईं और सन् १०१८ में पंजाब पर आक्रमण करते हुए महमूद ने कान्यकुब्ज पर चढ़ाई की। राज्यपाल निर्बल और आत्मविश्वास से रहित था। वह गङ्गापार भाग गया और पीछे उसने महमूद की अधीनता स्वीकार कर ली। चन्देल राजा गण्ड कान्यकुब्ज के अधिपति द्वारा इस कायरतापूर्ण आत्मसमर्पण से बड़ा अप्रसन्न हुआ और उसने अपने पुत्र युवराज विद्याधर के सेनापतित्व में एक सेना भेजी जिसने राज्यपाल को युद्ध में परास्त किया। राज्यपाल युद्धक्षेत्र में मारा गया और युवराज विद्याधर ने उसके पुत्र त्रिलोचन पाल को कान्यकुब्ज के राज्य

सिंहासन पर बैठा दिया। महमूद ने यह सुनकर पुनः कान्यकुब्ज पर आक्रमण किया। त्रिलोचनपाल भाग गया। सन् १०३६ ई० में अन्तिम राजा यशपाल के बाद प्रतीहार वंश का मूलोच्छेद हो गया।

गहड़वाल वंश

प्रतीहारों के पतन के बाद मध्यदेश में अराजकता फैल गई। चेदि के कलचुरि, राष्ट्रकूट और मालवा के परमारों ने कन्नौज पर आक्रमण करने शुरू कर दिए। नियाल्तिगिन अहमद पंजाब के तुर्क शासक ने भी कन्नौज पर धावा बोला। उसका धावा गांगेयदेव चेदि के राज्य काशी तक पहुँचा। इसी अराजक परिस्थिति में गहड़वाल वंश का उदय हुआ। इतिहासकारों का मत है कि ये राष्ट्रकूटों अथवा राठौरों की शाखा के थे। कुछ ऐतिहासिक इनको चन्द्रवंशीय कहते हैं। चन्द्रदेव इनके कुल का संस्थापक था। उसने कान्यकुब्ज के गोपाल नामक राजा को परास्त कर कान्यकुब्ज में गहड़वाल कुल की स्थापना की। उसके अभिलेखों से ज्ञात होता है कि उसने परम भट्टारक, महाराजाधिराज परमेश्वर आदि सम्राट परक उपाधियाँ धारण कीं। अभिलेखों में उसको काशी, उत्तर-कोशल (फैजाबाद) कुशिक (कन्नौज) और इन्द्रस्थान (दिल्ली) आदि तीर्थस्थानों का त्राता लिखा है। इस प्रकार उसका राज्य आधुनिक समस्त उत्तरप्रदेश पर था। उसने बङ्गाल के विजयसेन के आक्रमणों को भी रोका। लगभग ११०० ई० में उसकी मृत्यु हो गई।

गोविन्दचन्द्रः—चन्द्रदेव के पुत्र मदनपाल के विषय में कुछ ज्ञातव्य नहीं। उसके बाद उसका पुत्र गोविन्दचन्द्र सन् १११४ ई० में सिंहासनारूढ़ हुआ। उसने पिता के जीवनकाल में ही तुर्कों का वीरतापूर्वक सामना किया था। पालों की क्षीणशक्ति का लाभ उठा कर उसने मगध का पश्चिमी भाग अपने अधिकार में ले लिया। काश्मीर, गुजरात और चोल राज्य उसके मित्र थे। गोविन्दचन्द्र कलाओं का आश्रयदाता और दानवीर था। उसकी रानी कुमारदेवी की आस्था बौद्ध धर्म में थी। उसने सारनाथ में एक विहार बनवाया।

विजयचन्द्रः—गोविन्दचन्द्र का पुत्र विजयचन्द्र सन् ११५४ में कान्यकुब्ज की गद्दी पर बैठा। उसने भी तुर्कों को पीछे ढकेलने और राज्य का विस्तार करने में अपूर्व साहस का परिचय दिया। उसके राज्यकाल में चाहमानों के आक्रमण के परिणाम स्वरूप दिल्ली उसके हाथ से निकल गई।

जयचन्द्रः—विजयचन्द के बाद जयचन्द्र कान्यकुब्ज का राजा हुआ। उसने अनेकों युद्ध किये और उसकी विशाल सेनाओं ने देवगिरि के यादवों, गुजरात के सोलंकियों और तुर्कों की बुरी तरह परास्त किया। उसने अपनी विजयों की कीर्ति के स्मारक स्वरूप राजसूय यज्ञ किया और अपनी पुत्री संयोगिता का स्वयंम्वर रचा। स्वयंम्वर में चाहमान सम्राट पृथ्वीराज ने संयोगिता का अपहरण कर लिया। इससे गहड़वालों और चाहमानों की शत्रुता और भी कटुतापूर्ण हो गई। सन् ११९३ ई० में जब शहाबुद्दीन गोरी ने भारत पर आक्रमण किया तो जयचन्द्र ने पृथ्वीराज का साथ नहीं दिया वरन् आक्रान्ता की सहायता की। उसकी इस चाल ने भारत को दासता के पाश में बांध दिया और जयचन्द्र ने अपना नाम भारतीय इतिहास में सदा के लिए कलंकित कर लिया। सन् ११९३ में शहाबुद्दीन गोरी से युद्ध में पृथ्वीराज की पराजय हुई और वह मारा गया। सन्

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

११९४ में शहाबुद्दीन गोरी कान्यकुब्ज पर भी धावा बोल दिया। जयचन्द्र मारा गया तथा गोरी ने कान्यकुब्ज राज्य को भंग कर वहाँ भीषण लूटमार की। इतिहासकारों का मत है कि कन्नौज और बनारस की लूट में वह १४०० ऊँटों पर सोने, चाँदी और अनेक रत्न आभूषण ले गया।

नैषधचरित और खण्डनखण्ड आदि काव्यों का रचयिता श्रीहर्ष जयचन्द्र के दरबार में रहता था।

जयचन्द्र की मृत्यु के बाद उसका पुत्र राज्य का अधिकारी बना। सन् १२२५ ई० में अल्तमश ने कन्नौज को अपने अधिकार में कर लिया और उसी समय से गाहड़वाल वंश का लोप हो गया।

चाहमान वंश

हर्षोत्तर भारत के इतिहास में चाहमान वंश के राज्य का उदय महत्वपूर्ण है। इस वंश की स्थापना सूर्यवंशीय चाहमान नामक व्यक्ति ने की। कुछ राजपूत कुलों ने तुर्कों और अरबों को देश में न घुसने देने की प्रतिज्ञा अग्नि के सम्मुख की थी। चाहमान वंशीय राजागण भी उस प्रतिज्ञा में सम्मिलित थे। इस कारण चाहमान वंश के अजयराज नाम के राजा ने बारहवी शताब्दी के प्रथम चरणों में अजयमेरु (अजमेर) नगर बसाया। उसने उसमें बहुत से मन्दिर और राजमहल बनवाये। बारहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध की समाप्ति पर चाहमान वंश में विग्रहराज वीसलदेव (सन् ११५३-६४) का आविर्भाव हुआ। वीसलदेव ने गहड़वालों से दिल्ली जीत ली और उस पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया। यह महान् कवि, नाटककार एवं विद्याव्यसनी था। उसके लिखे नाटक के कुछ अंश अजमेर में 'अढ़ाई दिन का झोंपड़ा' नामक मस्जिद के पत्थर पर लिखे मिले हैं। वीसलदेव ने एक भव्य भवन का निर्माण किया था जिसमें उसने संस्कृत महाविद्यालय की स्थापना की थी। उसी महाविद्यालय को मुसलमानों ने मस्जिद में परिवर्तित कर दिया जिसको अढ़ाई दिन का झोंपड़ा कहते हैं। विग्रहराज वीसलदेव ने हरकेलि नाटक और ललितविग्रहराज नामक दो नाटक लिखे थे।

चाहमान वंश का सबसे प्रसिद्ध और अन्तिम राजा पृथ्वीराज था जो अनुश्रुति में पृथ्वीराज चौहान के नाम से प्रसिद्ध है। इस सम्राट की वीरता, सुन्दरता और प्रेम सम्बन्ध में विशाल काव्य की रचना हुई है। पृथ्वीराज अपने समय का सर्वोच्च वीर पुङ्गव था। उसने राज्य सिंहासन पर बैठते ही दिग्विजय करना आरम्भ कर दिया और कान्यकुब्ज के राठौरों, जैजाक मुक्ति के चन्देलों और गुजरात के सोलङ्कियों के साथ युद्ध किए। जयचन्द्र द्वारा आयोजित स्वयंम्वर से उसने बलपूर्वक संयोगिता का हरण किया। इस काण्ड के बाद पृथ्वीराज और जयचन्द्र की शत्रुता अत्यन्त कटुतापूर्ण हो गई। यह इस देश का दुर्भाग्य था कि जिस समय राजपूत राजागण गृहयुद्ध में संलग्न थे उसी समय तुर्क लोग भारत में प्रवेश करने की योजना बना रहे थे। शहाबुद्दीन गोरी ने भारत पर अनेक बार आक्रमण किया और पृथ्वीराज के हाथों कई बार उसकी पराजय हुई। हमीरहठ के वर्णनों से पता चलता है कि पृथ्वीराज ने एक महान् वीर की भाँति पराजित और शरण में आये हुए शत्रु को बार बार छोड़ दिया। यदि पृथ्वीराज इस प्रकार की उदारता न दिखाता और शत्रु को उसके

असली रूपमें समझकर उसका बध कर देता और शायद भारतवर्ष का इतिहास कुछ और ही होता। सन् ११९१ में शहाबुद्दीन गौरी को तलावड़ी के मैदान में पृथ्वीराज और अन्य राजपूत राजाओं की सम्मिलित सेनाओं ने करारी मात दी । शहाबुद्दीन परास्त हुआ और शरणागत होकर दया की प्रार्थना करने लगा । पृथ्वीराज ने उसे क्षमादान की और उसका यह कार्य भारत के लिए घोर हानिकर सिद्ध हुआ । कुछ इतिहासकार हमीर हठ में वर्णित इस तथ्य को मिथ्या मानते हैं । उनका कहना है कि शहाबुद्दीन गौरी रणक्षेत्र में घायल होकर अचेत हो गया था और उसको इस दशा में उसका सेवक युद्धक्षेत्र से भगा ले गया था । जो भी हो यदि क्षमादान की बात सत्य है तो यही कहा जायगा कि वह महान् राजनीतिक भूल थी ।

इतिहासकारों ने यह भी कहा है कि शहाबुद्दीन गोरी इस पराजय से बड़ा क्षुब्ध हुआ और बदला लेने की भयङ्कर अग्नि उसके चित्त में धधकने लगी । सन् ११९३ में उसने बड़ी तैयारी के साथ एक विशाल सेना से सुसज्जित होकर चढ़ाई कर दी । कहते हैं उसकी सेना में एक लाख बीस हजार चुने हुये अश्वारोही सैनिक थे । पृथ्वीराज की सेना पहिले की अपेक्षा अब की बार कम थी । शहाबुद्दीन के विरुद्ध राजपूत राजाओं का जो संघ पृथ्वीराज के नेतृत्व में पहिले बन गया था वह अब की वार न बन सका । अब की बार थोड़े ही राजाओं ने पृथ्वीराज का साथ दिया । गहड़वाल राजा जयचन्द्र जो कि एक प्रधान राज्य शक्ति थी युद्ध से अलग रहा । कुछ इतिहासकार तो यह भी कहते हैं कि उसने गोरी को पृथ्वीराज से युद्ध करने को निमन्त्रण भेजा था परन्तु इस तथ्य की प्रामाणिकता संदिग्ध है । सर जदुनाथ सरकार ने अपनी पुस्तक मिलीटरी हिस्ट्री आफ इण्डिया में इस युद्ध का बड़ा लोमहर्षक वर्णन दिया है ! उन्होंने लिखा है कि जब शहाबुद्दीन हिन्दू सेना के लगभग दस मील दूरी पर आ पहुँचा तब पृथ्वीराज ने उसके पास समाचार भेजा, "हिन्दुओं की वीर सेना का अनुभव आपको पहिले हो चुका है, व्यर्थ अपने सैनिकों को कटवाने से क्या लाभ है, यदि तुम सन्धि करना चाहो तो मैं तुम्हारी सेना को बिना किसी बाधा से निकल जाने दूँगा ।" शहाबुद्दीनने अपने सेनापतियों से गुप्त मन्त्रणा की, उसने उन्हें सम्बोधित कर कहा कि युद्ध में धोखा देना धर्म है । अतः उसने पृथ्वीराज के पास समाचार भेज दिया कि वह सन्धि की शर्तें गोर के बादशाह के पास स्वीकृति के लिए भेज रहा है तब तक युद्ध स्थगित रक्खा जाय । राजपूत पूरी तरह से धोखे में आ गायें । वे युद्ध स्थगित समझकर निश्चित हो गये । उधर शहाबुद्दीन ने उसी रात्रि को युद्ध की तैयारी पूर्ण कर प्रात: आक्रमण कर दिया। जिस समय उसका आक्रमण शुरू हुआ राजपूत सोकर उठे थे, कुछ शौच होने के लिए मैदान में जा रहे थे और कुछ स्नान की तैयारी कर रहे थे जल्दी में बिना नैमित्तिक कार्य किये निराहार लड़ने को बाध्य होना पड़ा । इसके अतिरिक्त गोरी उन्हें धोखे से नचाता रहा । जब वे भूखे-प्यासे बिल्कुल थक गये तब उसने १२००० तैयार अश्वारोहियों से भीषण आक्रमण करा दिया । परिणाम यह हुआ कि हिन्दू सेना अस्तव्यस्त होकर भाग खड़ी हुई । सेनापति गोविन्दराम तथा अनेक हिन्दू राजाओं का बध हो गया । पृथ्वीराज भी लड़ते-लड़ते सरस्वती के किनारे पर मारे गये । सर जदुनाथ सरकार ने लिखा है कि इस युद्ध में सेना का भीषण नर संहार हुआ और कम से कम १५० हिन्दू राजा पृथ्वीराज सहित खेत रहे । वे राजपूत जो युद्ध में शत्रु के साथ भी विश्वाघसात न करते थे विश्वासघात के ही शिकार हुए ।

गोरी ने पृथ्वीराज के पुत्र को अनुवर्षीय कर देने की प्रतिज्ञा करने पर अजमेर का राज्य सोंप दिया। कुछ ही दिनों बाद पृथ्वीराज का भाई हरिराज ने अपने भतीजे को राज्य च्युत कर दिया और स्वयं राजा बन बैठा। गोरी के सेनापति ने कुछ काल बाद हरिराज को परास्त कर चाहमान वंश का अन्त कर दिया।

कुछ इतिहास कार पृथ्वीराज को पृथ्वीराज तृतीय भी कहते हैं। इसके राज्य में पृथ्वीराज रासो का रचयिता चन्दवरदाई भी हुआ है। चन्दवरद्राई को आधुनिक हिन्दी का जनक कहते हैं।

चन्देल राज्य

बुन्देलखण्ड प्रदेश में चन्देल वन्श के राजा राज्य करते थे। पहिले ये प्रतीहारों के करद सामन्त थे। प्रतीहारों की शक्ति क्षीण होने पर इन्होंने अपने आप को स्वतन्त्र घोषित कर दिया। इस वंश का प्रथम राजा मन्नुक हुआ। इसकी शक्ति हर्षदेव चन्देल के समय से बढ़ी। मन्नुक के पुत्र जयसिंह उपनाम जेजा के नाम पर इस प्रदेश को जेजाक भुक्ति भी कहते हैं। इस वंश की राजधानी खजुराहो थी। यशोवमन इस वंश में बड़ा प्रतापी राजा हुआ है। उसने प्रतीहार राजा देवपाल से विष्णु की मूर्ति बलात् उपहारस्वरूप लेकर खजुराहो के मन्दिर में प्रतिष्ठापित की। उसने चेदि, मालवा और महाकोशल पर आक्रमण किया और अपने राज्य का विस्तार किया। प्रतीहारों के दुर्ग कलिंजर पर भी इसने अधिकार कर लिया।

यशोवर्मन का पुत्र धंग (९५०-१००२ ई०) बड़ा प्रतापी हुआ। उसने प्रतीहारों से अपने आपको पूर्ण रूप से स्वतन्त्र ही घोषित नहीं किया वरन् उनके दुर्ग गोपाद्रि जिसको आजकल ग्वालियर कहते हैं पर आक्रमण कर उसे अपने अधिकार में ले लिया। सन् ९९८ ई० के दान पत्र से ज्ञात होता है कि धंग का राज्य पश्चिम में ग्वालियर, पूर्व में बनारस और उत्तर में यमुनातट से चेदि मालवा तक फैला हुआ था। धंग भी तुर्कों का भारत आना अच्छा न समझता था और शाही राजा जयपाल ने तुर्कों के प्रतिरोध में संघ बनाया था उसमें इसने सक्रिय भाग लिया था। इसका पुत्र गंड भी सन् १००८ में महमूद गजनी के विरुद्ध बने संघ के सम्मिलित हुआ। अब की बार संघ जयपाल के पुत्र आनन्दपाल ने बनाया था। जब जयपाल प्रतीहार ने महमूद का आधिपत्य स्वीकार करने की कायरता दिखाई तो गंड ने अपने पुत्र युवराज विद्याधर को सेना सहित भेजा। उसने जयपाल को सिंहासन से हटा कर उसके पुत्र त्रिलोचनपाल को सिंहासनारूढ़ कर दिया। इससे महमूद गजनी बहुत क्रुद्ध हुआ और उसने दो बार चन्देलों पर आक्रमण किया। दोनों बार लम्बे घेरे डालने के बाद भी उसे मुँह की खानी पड़ी और वह वापिस लौट गया। यदि हिन्दू राजे सम्मिलित होकर उसका सामना करते तो भारत का इतिहास ही भिन्न होता।

गण्ड का उत्तराधिकारी कीर्तिवर्मा हुआ। कीर्तिवर्मा ने कलचुरियों को हराया। कलचुरि तुर्कों के आक्रमणों का अनुचित लाभ उठा रहे थे और चन्देलों पर आक्रमण करते थे। इसके राज्य में प्रबन्ध चन्द्रोदय का रचयिता कृष्ण मिश्र हुआ था।

इस वंश का अन्तिम राजा परमाल हुआ इसको परमर्द्रि भी कहते हैं। ये राजा स्वयं

तो इतना वीर न था परन्तु इसके कई सामन्त बड़े वीर थे। इनमें से दो का नाम आल्हा और ऊदल था। ऊदल का एक मौसेरा भाई मलखान भी था जो राजा परमाल की तरफ से सिरसा का शासक था। ये तीनों भाई बड़े वीर थे। इनकी वीरता की कहानियाँ अनुश्रुति में बहुत प्रचलित हैं। राजा परमाल के चौहान सम्राट पृथ्वीराज के कई युद्ध हुये जिनमें उसके सामन्त आल्हा और ऊदल ने सदैव बड़ी वीरता दिखलाई। इन सामन्तों से लड़ते-लड़ते पृथ्वीराज की शक्ति क्षीण हो गई और वह सहज ही मुसलमानों की आक्रामक शक्ति का ग्रास बन गया। सन् १२०३ ई० में कुतुबुद्दीन ऐबक ने कालिंजर पर आक्रमण किया, यद्यपि परमाल ने भीषण विरोध किया तथापि वह कुतुबुद्दीन की सेनाओं को हरा न सका। कालिंजर और महोबा दोनों चन्देलों के हाथों से निकल गये। चन्देलों का एक छोटा सा राज्य दक्षिण बुन्देलखण्ड में चलता रहा जब कि सन् १५६४ ई० में अन्तिम रानी दुर्गावती मुगल सम्राट अकबर की सेनाओं से लड़ती हुई वीरगति को प्राप्त हुई। खजुराहो, महोबा और कालिंजर के सुन्दर नगरों की स्थापना चन्देलों की सुरुचि का परिणाम थी। इन नगरों में अनेक भव्य मन्दिरों और सरोवरों का निर्माण कराया गया। खजुराहो का ऐतिहासिक मन्दिर विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

त्रिपुरौरी का कलचुरि वंश

कलचुरि लोग में हैहय जातीय क्षत्रियवंश के थे। वे अपने को कार्तवीर्य अर्जुन का वंशज कहते थे। नवीं शताब्दी के अन्त में कोकल्ल देव ने इस वंश की स्थापना की। कलचुरियों ने चन्देलों, राष्ट्रकूटों, परमारों और प्रतीहारों से वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित किये। इस वंश में राजा गांगेयदेव (गंग) सबसे प्रसिद्ध हुआ। वह सन् १०१९ ई० में सिंहासन पर बैठा। उसने राज्य विस्तार के लिये दिग्विजय किया। उसने प्रयाग, बनारस, और कांगड़ा को अपने राज्य में मिलाया। बहुत शीघ्र उसने तीरभुक्ति (तिरहुत) पर भी अपना अधिकार कर लिया। गंगदेव ने उत्कल (उड़ीसा) और कुंतल (कर्णाटक) के राजाओं को युद्ध में हराया। उसने विक्रमादित्य की उपाधि धारण की जो कि उसकी महान् विजयों की पृष्ठभूमि में उचित थी। उसके बाद उसका पुत्र लक्ष्मी कर्ण भी बड़ा प्रतापी हुआ। उसने बनारस में कर्ण मेरु नाम का मन्दिर बनवाया। बंगाल के पाल और परमारों के राजाओं को उसने युद्ध में परास्त किया। ग्यारहवीं शताब्दी के मध्य में चारों दिशाओं में परमारों, चालुक्यों और चन्देलों से राजा कर्ण को युद्ध करना पड़ा। एक प्रकार से इन सबने मिल कर उस पर चढ़ाई कर दी। परिणाम स्वरूप कलचुरियों की शक्ति क्षीण हो गई। इनकी एक छोटी सी शाखा महाकोशल में बारहवीं शताब्दी के अन्त तक चलती रही।

परमार वंश

राजस्थान और उसके आस-पास के चार क्षत्रिय राजाओं ने मुसलमान आक्रान्ताओं से अपने देश की रक्षा करने के लिये अग्नि के आगे शपथ खाई थी। इसी कारण ये सभी राजे अग्निकुलीय कहलाये। परमार भी इन्हीं क्षत्रिय राजाओं में थे, अतः ये भी अग्निकुलीय कहलाते थे। प्राप्त अभिलेखों के अनुसार परमार राष्ट्रकूट जाति के थे। सम्भव है किसी काल में परमार राजा राष्ट्रकूटों के सामन्त रहे हों। यद्यपि इस कुल का संस्थापक उपेन्द्र अथवा कृष्णराज था परमारों

का महत्व सन् ९४९ ई० में सीयक-हर्ष के सिंहासनारूढ़ होने के काल से आरम्भ होता है। सीयक-हर्ष ने कई युद्धों में विजय प्राप्त की और हूणों के एक राजा को भी परास्त किया।

वास्तव में मालवा के परमारों की शक्ति का आरम्भ वाक्पतिमुंज के समय में हुआ। उसने अपनी अनेक विजयों के स्वरूप श्रीवल्लभ और अमोघवर्ष की उपाधियाँ धारण कीं। उसने गुजरात, कर्णाटक, चोल और केरल के राजाओं को परास्त किया। कल्याणी के राजा तैलप द्वितीय को युद्ध में ६ बार हराया। वह स्वयं बड़ा विद्वान् और लेखकों तथा कवियों का आश्रयदाता था। उसके दरबार में अनेकों रत्न जैसे परिमल गुप्त, धनंजय धनिकभट्ट, हलायुध, अमितगति आदि रहते थे। उसने अनेकों मन्दिर और सरोवर बनवाये। मन्त्रियों के मना करने पर भी उसने चालुक्यों से सातवीं बार युद्ध ठाना। तैलप द्वितीय के लड़ने के लिये सन् ९९३ ई० में उसने गोदावरी पार कर उसके प्रदेश पर धावा बोल दिया। इस युद्ध में वह बन्दी बना लिया गया। छः बार के पराजित शत्रु ने उसका अन्त भी कर दिया।

वाक्पतिमुंज के बाद नवसाहसांक नामक उसका भाई उसका उत्तराधिकारी हुआ। परिमलगुप्त ने 'नवसाहसांक चरित' नामक ग्रन्थ लिखा है। इसका दूसरा नाम सिन्धुराज भी था। इसने राजस्थान के हूणों, लाठ के चालुक्यों तथा अन्य पड़ौसी राजाओं को युद्ध में परास्त किया

राजा भोज:—सिन्धुराज के बाद उसका पुत्र भोज सन् १००८ ई० में सिंहासन पर बैठा। इस राजा का अनुश्रुतियों में असीम यशवर्णन है। अपने चचा वाक्पतिमुंज के बध का बदला लेने के लिये इसने कल्याणी के चालुक्य राजा विक्रमादित्य चतुर्थ बार आक्रमण कर दिया। कलचुरि के राजा गांगेयदेव को युद्ध में परास्त किया। उसने उत्तर में प्रतीहारों के कान्यकुब्ज राज्य पर भी कुछ दिनों तक अधिकार रक्खा। बिहार प्रदेश के अन्तर्गत आराप्रान्त का परमारों के अधिपत्य के कारण ही 'आरा' नाम पड़ा और उसके आस-पास का प्रदेश भोजपुर कहलाया। जब गुजरात और सौराष्ट्र पर तुर्कों का आक्रमण हुआ तो भोज ने उन्हें भगाया। गुजरात के सोलंकियों से भी उसका युद्ध हुआ। चन्देल राजा विद्याधर से युद्ध में उसकी पराजय भी हुई।

राजाभोज की राजनीतिक उपलब्धियों से अधिक उसकी ख्याति एक आदर्श न्यायकारी महान् शासक के रूप में थी। वह स्वयं महान् पण्डित और लेखक था। साहित्य, कला और विद्या का वह आश्रयदाता था। उसकी आदर्श शासन व्यवस्था, न्यायप्रियता आदि की अनेक कथाऐं अनुश्रुतियों में आज भी प्रचलित हैं। उसने साहित्य, व्याकरण, कोष, धर्म, दर्शन, गणित, वैद्यक, वस्तुकला आदि अनेक विषयों पर ग्रन्थ रचे। एक ऐसे योद्धा द्वारा जो आजीवन युद्धों में व्यस्त रहा हो अनेक विषयों पर इतने ग्रन्थ लिखा जाना कुछ आश्चर्यजनक प्रतीत होता है। सम्भव है इनमें कुछ ग्रन्थ उसके आश्रित विद्वानों ने लिखे हों। सरस्वती कण्ठाभरण, शब्दानु शासन, युक्तिकल्पद्रुम, समरांगण सूत्रधार, आयुर्वेद सर्वस्व आदि भोज के लिखे हुए प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं। उसने सरस्वतीकण्ठाभरण नामक एक विद्यालय की भी स्थापना की जो आज तक भोजशाला कहलाता है। धर्मान्ध मुसलमानों ने उसको मसजिद में बदल दिया। उसके राज्यकाल में उज्जयिनी और धारा दो नगरियों की बड़ी प्रतिष्ठा हुई। उसने भोज सागर नामक एक बहुत बड़ी झील बनवाई जिससे

बहुत बड़े भू-भाग पर सिंचाई होती थी। बहुत समय बाद मेडू के सुलतानशाह हुसेन ने उसके बाँध तुड़वाकर ताल को सुखवा दिया और इस प्रकार अपनी मूर्खतापूर्ण धर्मान्धता का परिचय दिया।

भोज की राजनीतिक गतिविधियों से उसका कोष बिल्कुल रिक्त हो गया और उसके जीवन के उत्तरार्द्ध में उसकी शक्ति शिथिल हो गई। इसका लाभ उठाकर उसके पुराने शत्रु गुजरात से सोलंकियों और त्रिपुरि के कलचुरियों ने उस पर धावा बोल दिया। इस युद्ध में भोज का निधन हो गया और शत्रुओं ने धारा और मालवा की डटकर लूट की। भोज की मृत्यु को लेकर एक अनुश्रुति इस प्रकार चली आती है।

"अद्य धारा निराधारा निरालम्बा सरस्वती,
पण्डिताः खण्डिताः सर्वे भोजराज दिवंगते।

अर्थात् भोज के स्वर्गवासी होने पर धारा निराधार, सरस्वती आश्रयहीन और पण्डित सब खण्डित हो गये।' भोज ने ५५ वर्ष राज्य किया।

भोज के उत्तराधिकारी निर्बल हुए। राज्य का सूक्ष्मांश सन् १३०५ तक चलता रहा जब अलाउद्दीन खिलजी के वज़ीर ऐनुलमुल्क ने मालवा पर आक्रमण कर उसको मुसलमानी शासन में मिला दिया।

चालुक्य अथवा सोलंकी राज्य

गुजरात का बलभीराजा ध्रुवसेन पहिले चालुक्य सम्राट पुलकेशिन् के प्रभाव में था, फिर हर्ष के प्रभावक्षेत्र में आ गया। इसके बाद इस प्रदेश पर प्रतीहारों का प्रभुत्व स्थापित हुआ। दसवीं शताब्दी में प्रतीहारों का अन्त होने पर यहाँ चालुक्यों की एक शाखा का राज्य हुआ। राजधानी अन्हिलवाड़ा थी।

इस वंश का पहिला राजा मूलराज था जो लगभग ९४१ ई० में गद्दी पर बैठा। इसने सारस्वत (गुजराज का एक भाग) पर अधिकार कर लिया। कच्छ के राजा को परास्त किया। इसका शाकम्भरी के चाहमान राजा से भी युद्ध हुआ। यह शैव था। इसने बहुत से मन्दिर बनवाये। इसका ९९५ ई० में देहान्त हो गया।

दूसरा प्रसिद्ध राजा इस वंश में भीम (१०२१-१०६३ ई०) हुआ। इसी के शासनकाल में महमूद गजनी ने सोमनाथ पर चढ़ाई की। भीम ने महमूद का सामना नहीं किया। सोमनाथ मन्दिर के रक्षकों ने महमूद का प्रतिरोध किया परन्तु वे नियमित सेनाओं के आगे अधिक नहीं डट सकते थे। बहुत से हिन्दू मारे गए। महमूद ने अपार धन सम्पति लूट में प्राप्त की। मूर्ति को तोड़ा और उसके भग्नावशेषों को जामा मस्जिद की सीढ़ी में लगाने के लिये गजनी ले गया। महमूद के लौट जाने पर भीम ने युद्ध में अनेकों विजय प्राप्त कीं। जब वह सिन्ध पर आक्रमण कर रहा था तो उसकी अनुपस्थिति में परमार राजा भोज के सेनापति कुलचन्द्र ने कलचुरियों से मैत्री कर भोज से युद्ध छेड़ दिया। भीषण युद्ध में भोज मारा गया फिर भीम और कलचुरि राजा लक्ष्मी कर्ण का भी युद्ध हुआ जिसमें कलचुरि राजा परास्त हुआ। कर्ण का उत्तराधिकारी जयसिंह सिन्धुराज (१०९३-११४३ ई०) बड़ा वीर और विजयी हुआ। उसने मालवा के राजा नरवर्मन कोहरा

कर अवन्तिनाथ की पदवी धारण की। इसका चन्देल राजा मदनवर्मा से भी युद्ध हुआ। कलचुरि और गहड़वाल राजाओं से इसका मैत्री सम्बन्ध था। यह शैव था और विद्या तथा कलाओं का आश्रयदाता था। जैनाचार्य हेमचन्द्र सूरि इसके राज्यकाल में हुआ।

कुमारपालः—सिन्धुराज का उत्तराधिकारी कुमारपाल (११४४-११७१ ई०) हुआ। यह बड़ा यशस्वी था। इसने सोमनाथ के मन्दिर का जीर्णोद्धार कराया। इसको उत्कीर्ण लेखों में शैव तथा जैन ग्रन्थों में जैन लिखा है। इसने अनेक युद्धों में विजय प्राप्त की। यद्यपि इसकी सेनाओं ने शाकम्भरी के चाहमानों, आबू के परमारों तथा अन्य राजाओं को युद्ध में नीचा दिखाया इसकी ख्याति कोंकण की विजय से बहुत बढ़ गई। कोंकण का राजा मल्लिकार्जुन युद्ध में बुरी तरह परास्त हुआ था। कुमारपाल विद्या और कला को प्रश्रय देने के लिये भी बहुत प्रसिद्ध था।

कुमारपाल के बाद भी अन्हिलवाड़ा में चालुक्यों का राज्य तेरहवीं सदी तक चलता रहा जब कि अलाउद्दीन खिलजी के सेनापति उलुग खाँ ने उसे अन्तिम युद्ध में समाप्त करके मुसलमानी राज्य में मिला लिया।

बंगाल के पाल वंशीय राजागण

हर्ष के समय बंगाल का राजा शशांक था। इसका राज्य उत्कल और कलिंग तक फैला हुआ था। यह बड़ा शक्तिशाली था। शशांक की मृत्यु के उपरान्त उनका राज्य हर्ष के साम्राज्य में विलीन हो गया। हर्ष के उपरान्त ६४८ ई० में यह राज्य आसाम के राजा भास्कर वर्मन के आधिपत्य में चला गया। कुछ समय बाद काश्मीर, आसाम और कान्यकुब्ज तीनों राज्य बंगाल के स्वामित्व के लिय प्रतिद्वन्दिता करने लगे। निरन्तर आक्रमणों के परिणामस्वरूप बंगाल में अराजकता फैल गई और विवश होकर वहाँ की जनता ने गोपाल नामक एक साहसी व्यक्ति को अपना राजा चुना। नाम के अन्त में पाल होने के कारण उसके वंश का नाम पाल वंश पड़ा।

गोपाल ने बहुत शीघ्र प्रायः पूरे बंगाल और मगध में अपना अधिकार स्थापित कर लिया। उसको जनता का सहयोग प्राप्त था। उसका शासन ७२५ से ७७० ई० तक रहा। वह बौद्धधर्मावलम्बी था। उसने उदन्तपुर नामक स्थान पर एक विशाल महाविहार का निर्माण कराया। उसने ४५ वर्ष तक बड़ी योग्यता से राज्य किया।

धर्मपालः—गोपाल का पुत्र धर्मपाल भी बड़ा शक्तिशाली था। कान्यकुब्ज का राजा चक्रायुध उसके आश्रित था। उत्तर भारत के स्वामित्व के लिए उसके प्रतीहारों और राष्ट्रकूटों से अनेकों युद्ध हुए। उसकी प्रवृत्ति धार्मिक थी। उसके राज्य में विद्या और कला को प्रचुर आश्रय प्राप्त हुआ। ४५ वर्ष राज्य करने के बाद ८१५ ई० में इसकी मृत्यु हो गई।

देवपालः—यह धर्मपाल का उत्तराधिकारी हुआ। पालवंश में देवपाल सब से शक्तिशाली था। इसने उत्कल को तो शीघ्र अपने राज्य में मिला लिया और आसाम के राजा को अपनी प्रभुसत्ता स्वीकार करने को बाध्य किया। इसका प्रतीहार वंशीय प्रसिद्ध राजा मिहिरभोज से बड़ा तुमुल युद्ध हुआ। उत्कीर्ण लेखों से विदित होता है कि इसका बहुत बड़े प्रदेश पर अधिकार था। देवपाल का बर्मा, सुमात्रा, जावा आदि पूर्वी देशों से राजनैतिक सम्बन्ध था। इसने अनेकों

चैत्यों, महाविहारों और संघारामों का निर्माण कराया तथा नालन्दा महाविहार और विक्रमशिला दोनों को प्रचुर मात्रा में दान दिया। इसकी ८८५ ई० के लगभग मृत्यु हो गई।

नारायणपालः—देवपाल का उत्तराधिकारी उसका पुत्र नारायणपाल हुआ। वह शैव था और उसने हजारों शैव मन्दिर बनवाये। प्रतीहारों से हुए संघर्ष में उसने अपने राज्य का कुछ भाग खोया परन्तु शीघ्र ही उस भाग को पुनः प्राप्त कर लिया। प्रतीहार राजा महेन्द्रपाल प्रथम ने उसके समय में उत्तर बङ्गाल और मगध पर आक्रमण किया था। नारायणपाल का ९१२ ई० में देहान्त हो गया।

महीपालः—नारायणपाल के बाद उसका पुत्र महीपाल राज्य सिंहासन पर बैठा। इसके समय में चोलराजा राजेन्द्र ने बंगाल और बिहार पर चढ़ाई की। महीपाल ने उससे युद्ध में खोये हुए भूभाग पुनः प्राप्त कर लिये। बौद्ध धर्मावलम्बी होने के कारण महीपाल ने सारनाथ में कई चैत्य बनवाये। उसने मूलगंधकुटी, धर्म राजिका स्तूप और धर्मचक्र का जीर्णोद्धार किया।

नयपालः—महीपाल का उत्तराधिकारी नयपाल हुआ। उसका चेदिराजा लक्ष्मीकर्ण से घोर युद्ध हुआ। महाबोधि बिहार के अधिष्ठाता दीपङ्कर श्रीज्ञान ने उस दोनों में सन्धि करादी और चेदिराज लक्ष्मीकर्ण ने अपनी पुत्री यौवनश्री का विवाह नयपाल के पुत्र विग्रहपाल के साथ कर दिया। विग्रहपाल के पुत्रों में उत्तराधिकार के लिये संघर्ष हुआ। उसका पुत्र रामपाल शक्तिशाली और प्रसिद्ध हुआ। उसने अनेक उपद्रवों को दबाया और कैवर्त राजा दिव्वोक के पुत्र भीम से उत्तरी बङ्गाल पुनः वापिस लिया।

पालवंश भारतीय इतिहास में एक ऐसा प्रसिद्ध राजवंश है जिसने चार शताब्दी तक बड़ी प्रतिष्ठा के साथ राज्य किया। पालों के समय में बङ्गाल का एक समृद्ध और शक्ति सम्पन्न राज्य था। पालवंशीय अधिकांश राजे बौद्ध-धर्मावलम्बी थे। उन्होंने अनेकों चैत्य, विहार और संघाराम बनवाये। शिक्षा और विद्या की उनके समय में बड़ी उन्नति हुई। स्थापत्य और मूर्तिकला का भी खूब विकास हुआ। प्रजा सुखी और समृद्ध थी। शासन सुव्यवस्थित था। राज्य की ओर से विद्वानों और कलाकारों को प्रश्रय प्राप्त था।

सेन वंश

सामन्तदेव सेन वंश का संस्थापक था। उसने ग्यारहवीं शताब्दी के मध्य में उड़ीसा में काशीपुरी नामक नगरी में एक राज्य की स्थापना की। सामन्त सेन के बाद उसका पुत्र हेमन्तसेन सिंहासन पर बैठा। हेमन्तसेन के राज्य में कोई उल्लेखनीय घटना न हुई। उसके बाद उसका पुत्र विजयसेन बड़ा प्रतापी राजा हुआ है। उसने पूर्व की ओर बढ़ कर बङ्गाल पर आक्रमण किया और पालों से दक्षिण और दक्षिणपूर्व बङ्गाल छीन कर पूर्वी बङ्गाल में विक्रमपुर को अपनी राजधानी बनाया। बारहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में उसने पालों से उत्तरी बङ्गाल भी ले लिया। कलिंगराज चोलगंग उसका मित्र था। इसी सुदृढ़ स्थिति के कारण उसने ४० वर्ष तक निर्विघ्न शासन किया। उसके बाद उसका पुत्र बल्लालसेन गद्दी पर बैठा। उसने पिता के राज्य को सुरक्षित रक्खा परन्तु कोई नई विजय प्राप्त नहीं की। वह परम विद्वान् था उसने दानसागर और अद्भुतसागर नामक

ग्रन्थों की रचना की। इसके समय में बौद्ध धर्म का ह्रास हुआ और वैदिक धर्म का पुनरुत्थान हुआ। बल्लालसेन वृद्धावस्था में प्रयाग गया और वहाँ जीते जी गङ्गा में प्रविष्ट होकर उसने प्राणविसर्जन कर दिया।

लक्ष्मणसेन:—बल्लाल सेन के बाद उसका लड़का लक्ष्मणसेन अन्तिम शक्तिशाली राजा हुआ। उसने कामरूप (आसाम) और कलिंग पर आक्रमण कर दिया। इन युद्धों में उसकी जीत हुई और उसने विजय के फलस्वरूप प्रयाग में जयस्तम्भ नामक एक विशाल स्मारक बनवाया। गीतगोविन्द के रचयिता जयदेव को इसी के दरबार में आश्रय प्राप्त था। उसके अन्तिम समय में सेन वंश की शक्ति में ह्रास शुरू हो गया था। लक्ष्मणसेन का पुत्र माधवसेन सेनवंश का अन्तिम राजा था। ११९९ ई० में मुहम्मद बिन बख्तियार ने बङ्गाल पर आक्रमण किया और थोड़े ही काल में सेनवंश का अन्त हो गया।

गंग वंश

गंगवंश की स्थापना कलिंग में आठवीं शताब्दी के आरम्भ में हुई। ग्यारहवीं शताब्दी में अवन्तिवर्मन नाम का एक राजा गंगवंश में अत्यन्त प्रसिद्ध एवं प्रतापी हुआ। वह तत्कालीन सेनवंशीय राजा विजयसेन का मित्र था। उसने पुरी का विख्यात विष्णु मन्दिर बनवाया। उसने गोदावरी और गङ्गा के बीच के प्रदेशों पर राज्य किया। उसने वेंगी के चालुक्य राजा पर भी चढ़ाई की। तेरहवीं शताब्दी के आरम्भ में मुसलमानों के आक्रमण से इस वंश का पतन हो गया।

केशरी वंश के राजा

केशरी वंश के राजाओं की राजधानी भुवनेश्वर थी। इन पर बङ्गाल और आसाम के राजाओं के निरन्तर आक्रमण होते रहे। धर्म और कला के क्षेत्रों में इन राजाओं ने महान् योगदान किया। भुवनेश्वर के मन्दिर इनके समय की स्थापत्य और मूर्तिकला के अद्‌भुत नमूने हैं। ग्यारहवीं शताब्दी में इस वंश के प्रसिद्ध राजा लिंगराज ने एक विशाल मन्दिर बनवाया जो आज तक विद्यमान है और अपनी मूर्तिकला के लिए अनुपम है तेरहवीं शताब्दी में ओड्र प्रदेश मुसलमानी सत्ता में विलीन हो गया।

कामरूप (आसाम)

आसाम के राजा अपने आपको महाभारत में वर्णित राजा भगदत्त की सन्तान बतलाते हैं। आसाम का राजा भास्करवर्मन बङ्गाल के गौड़राजा शशांक से आतंकित रहता था। इस कारण उसने सम्राट हर्ष का आधिपत्य स्वीकार कर अपनी सुरक्षा की व्यवस्था कर ली थी। इस वंश के राजाओं का बंगाल के पाल राजाओं से संघर्ष रहा। बंगाल पर मुसलमानों का शासन हो जाने पर भी आसाम में हिन्दू शासन स्थिर रहा। सन् १२०५ ई० में जब मुहम्मद बिन बख्तियार ने तिब्बत पर आक्रमण किया तब आसामियों ने उस महत्वपूर्ण पुल को नष्ट कर दिया जो उसके पीछे पड़ता था। इसके परिणाम स्वरूप एक विशाल मुसलमानी सेना नष्ट हो गई। सन् १२२८ ई० में आहोम नामक एक शानवंशी जाति का आसाम में आधिपत्य हो गया जो १८२५ ई० तक बना रहा। कदाचित् इस जाति के नाम पर ही इस प्रदेश का नाम आसाम पड़ा।

आसाम राज्य वैदिक धर्म का केन्द्र था। यद्यपि बौद्ध धर्म बंगाल तक आ गया था परन्तु वह आसाम में कभी प्रवेश न कर सका। आसाम में शैव या शाक्त सम्प्रदाय का जोर था। 'भारतीय इतिहास की भूमिका नामक' अपने इतिहास ग्रन्थ में डा० राजबली पाण्डे लिखते हैं, "आसाम के भारतीय इतिहास की यह विशेषता है कि यहाँ वैदिक धर्म का प्राधान्य रहा, इस काल में बौद्ध धर्म यहाँ न घुस सका। हुयेन संग ने आसाम में एक भी विहार या संघाराम न देखा। यहाँ पर शैव अथवा शाक्त सम्प्रदाय का जोर था और गौहाटी के पास कामाख्या का मन्दिर आज भी शाक्तधर्म का एक बड़ा तीर्थ है। शाक्तधर्म के तान्त्रिक स्वरूप का यहाँ बहुत प्रचार हुआ जिससे यहाँ की जनता के धार्मिक जीवन में तन्त्र, मन्त्र, जादू, टोना और गुह्य प्रथाओं का प्राबल्य था। आसाम में आने वाली सभी किरात या मंगोल जातियों ने भारतीय धर्म और संस्कृति अपनाई। उनके ऊपर पहिले शाक्त और पीछे वैष्णव धर्म का प्रभाव पड़ा।"

* * *

ब्रज गरिमा गीत

(श्री बाल मुकुन्द चतुर्वेदी-मथुरा)

शाश्वत ज्योतिर्मय ब्रज सुधा, जय जगवंद्य भुवन शृंगार।
जय रस रास रंग क्रीड़ा पट, जय कालिंदी कूल विहार।।
पुन्य पताका कीर्ति कलश पै फहरिफहरिभुज उच्च उठाय।
आवाहन करि मानवता कौ रही अमरता सुधा पिवाय।
गोपालन की मधुर संस्कृती जहाँ सहसदल भयी विस्तार।शा०।

लोटत ब्रह्मादिक जाकी रज सुर बाला गावत गुन गान।
मीरांभयी बावरी डोलै, रस चाखत डोलै रसखान।।
प्रानन कौ उन्मेष रुकतनाँ, कन कन जहाँ आनन्द अपार।शा०।

बेद व्यास सुक नारद सारद गुनि गावत पावत नहीं पार।
रज लिपटे सिद्धांत वेद के, लोटत बीथिन कर जैकार।।
आगम निगम राह सब भूले, माँगत ब्रज कुंजन अभिसार।शा०।

काव्य चित्र सङ्गीत नृत्य, सब अंग समृद्ध भरी रस रंग।
जीवन सदाँ सजीव सँजोयो, रोम रोम उनमादि उमंग।।
जय 'मुकुन्द' मानव चिर तृप्ती अमर साधना मधु संचार।शा०।

* * *

कविवर श्री लाल बलवीर और उनका काव्य

[श्री राधेश्याम अग्रवाल, एम. ए., साहित्यरत्न]

कविवर स्व० बद्रीदासजी उपनाम लाल बलवीर १९वीं शती के ब्रज के प्रसिद्ध कवि थे। रीति युग के रीतिमुक्त कवियों में उनका विशिष्ट स्थान है। उनका जन्म वृन्दावन में लाला रामलाल जी अग्रवाल के यहाँ संवत् १८९६ विक्रमी में हुआ था। श्री रामलालजी इन पंक्तियों के लेखक के पूज्य प्रपितामह और श्री लाल बलवीरजी पितामह थे। आप चार भाई थे १- स्वयं श्री बद्रीदास 'लाल बलवीर', २- द्वारिकादास ३- गोकुलदास, ४- प्रियासरन दास। श्री बद्रीदासजी के पांच पुत्र हुए १- श्री सन्तलाल, २- श्री लड़ैतीलाल, ३- श्री बाँकेलाल, ४- श्री रामस्वरूप (जो अब सादाबादिया के नाम से ब्रज के प्रसिद्ध ख्यालबाज के रूप में विख्यात हैं) और ५- श्री पूरनलाल। श्री द्वारिकादास से दो पुत्र और एक कन्या हुईं १- श्री मनोहरलाल, (इस निबन्ध के लेखक के पिता) और २- श्री प्यारेलाल और कन्या भगवानदेई जो मथुरा के रईस श्री हीरालालजी को ब्याहीं और जिनके सुपुत्र प्रसिद्ध साहित्य सेवी श्री वृन्दावनदास, भू० पू० अध्यक्ष नगरपालिका मथुरा व संप्रति अ० भा० ब्रज साहित्य मण्डल के अध्यक्ष और प्रस्तुत पत्रिका के सम्पादक हैं। श्री गोकुलदास से छीतमल नामक पुत्र और श्री प्रियासरनदास से एक कन्या हुई। श्री प्रियासरनदास स्वयं 'प्रेमदासी' नाम से कविता करते थे। 'मान-पचीसी' में कवि ने अपना परिचय इस प्रकार दिया है—

दियौ किशोरी लाड़ली श्री वृन्दावन वास।
जैसे ही ब्रज जन सबै, कृपा करौ सुखरास॥
विदित वैस हैं चार जुग विधि निज रचे सरीर।
रामलाल कौं सुवन हौं नाम लाल बलवीर॥

लाल बलवीर ब्रज-संस्कृति और साहित्य के परम अनुरागी व्यक्ति थे। श्यामाश्याम के चरणों की उपासना गोपीभाव से करते थे। ब्रजवाणी का व्यवहार, वृन्दावन-वास और यमुना-स्नान उन्हें इष्ट था। वृन्दावन में गौड़िया सम्प्रदाय के राधारमणजी के मन्दिर के वे भक्त थे। 'वृन्दावन-सतक' में कवि का कथन है—

श्री राधे-राधे रटौं राधे कौ उर ध्यान।
मम कुल देवी देवता राधारमन सुजान॥
काशी औ प्रयाग द्वारावती कौं निहार आए।
ब्रज माँहि आयौ जब आयबौ कहा रह्यौ।
गङ्गा सिन्धु सरस्वती सरजू में न्हाय आयौ
जमुना में न्हायौ जब न्हायबौ कहा रह्यौ।
लाल बलवीर ब्रजराज की रंगीली छवि
हिये माँहि लायौ जब लायबौ कहा रह्यौ।
प्रभु प्रसाद पायौ सीस संतनु कौं नायौ
श्री वृन्दावन पायौ जब पायबौ कहा रह्यौ।

'प्रिया जी कौ सिख नख वर्णन' में कवि ने लिखा है—

सुधा हीन और करमठी ज्ञानिन तें जिन बोल।
सभी भाव वासी विपुन तिनहीं सौं यह खोल॥

जो उनकी गोपी भाव की भक्ति का प्रतीक है।

लाल बलवीरजी की मल्लकला में भी विशेष रुचि थी। टीकमगढ़, चरखारी, दतिया, समथर, बिजावर, ओरछा, अलवर और भरतपुर नरेश उनका सम्मान करते थे और उनके काव्य की सराहना।

लाल बलवीर का रचनाकाल सं. १९२४ विक्रमी से प्रारम्भ होता है। आपने वृन्दावन शतक, पावस बत्तीसी, गिरिराज अष्टक, षट्ऋतु शतक, राधा शतक, प्रिया कौ सिख नख वर्णन, प्रेम पचासिका, लीला साहित्य (यथा दानलीला, कालीदह लीला, अघासुर लीला, ब्रह्मचारी लीला, मनिहारी लीला, जोगलीला, चीर लीला पर कवित्त) और मान पचीसी आदि ग्रन्थ रचे हैं। इसके अतिरिक्त उनका 'गोपीचन्द भर्तृहरि' खण्ड काव्य भी हैं, जो अप्राप्य है। इस काव्य की विशेषता है कि इसमें अमात्रिक छन्दों का प्रयोग है।

लाल बलवीर सूर, घनानंद, रसखान, रसलीन और भारतेन्दु जैसे रसिक भक्त कवियों की श्रेणी में आते हैं जो श्यामाश्याम के प्रिया-प्रियतम स्वरूप की अलौकिक प्रेम गङ्गा में स्नान कर लौकिक-बन्धनों को छिन्न-भिन्न कर प्रेम-रंग में रंग गए हैं।

'वृन्दावन-शतक' में कवि के 'श्री राधे जू की रजधानी' वृन्दावन धाम का आध्यात्मिक महत्व, प्राकृतिक सौन्दर्य, श्यामाश्याम की रस केलि, मन्दिर-वर्णन श्री राधे जू से सखी भाव की सेवा और वृन्दावनवास प्राप्ति सम्बन्धी कवित्त हैं।

ग्वालन के संग श्री गुपाल जू चरावैं गाय
गावैं राग रागनी उमंग भरे मन में।
बाँसुरी बजावैं हाव भावन जनावैं
मित्र मंडली रिझावै हैं भरे हैं प्रेम पन में।
लाल बलवीर जू की अङ्ग-अङ्ग माधुरी
निहारत बनै हैं न बनैं है वरनन में।
विविध विलास कौ प्रकास जहाँ राजत है
याते मन मेरौ सदा बसै वृन्दावन में।

'पावस बत्तीसी' में कवि ने मनोरम दृश्य प्रस्तुत किये हैं। घन-गर्जन, कैकी-चातक रटन, अँधियारी देकर बादलों का घिर आना, बिजली चमकना, वर्षा का छोटी-छोटी बूँदों और झड़ी के रूप में गिरने का वर्णन है जिससे वर्षा का संश्लिष्ट रूप प्रस्तुत हो जाता है—

कारी कारी कारी आई दै दै दीह अँधियारी
छरर छरर जल धारन झराती हैं।
सीरी सीरी सीरी आली सारंग सरस धाई
अति ही सजीली चंचला जे तड़तड़ाती हैं।

लाल बलवीर कैकी कीर चात्रिक चटकदार
रसना रसीली तान नीकी तान गाती है।
नेंसिख निहार देखि लाड़ली छटा तें आय
कनक अटा तें घटा घिस घिस जाती हैं।

गिरिराज अष्टक में व्रज पर इन्द्र का प्रकोप और गिरिराज पूजन का वर्णन है—

इन्द्र जज्ञ ही कौ मांचौ घर घर जोर शोर
मोद भरी डोलें गोपी सर्ब सुख साज की।
पापर पकौरी दधि दूध पकवान बहु
करैंगी सकल भेंट भूमि सिरताज की।
लाल बलवीर हँसि कह्यौ नंदजू सौं जाय
जनम भगोरा याकी सेवा कौन काज की।
राखें जन लाज पूजें सदा शुभ काज
एसो है न जग दूजौ पूजा कीजै गिरिराज की।

षट्ऋतु शतक में शरद, हिम, शिशिर, वसन्त, होली, ग्रीष्म, पावस, श्रावण (हिंडोला) का वर्णन है। होली का वर्णन देखिए—

इतै ठाड़े नंदलाल लीने गोप ग्वाल बाल
उतै लै सखीन वृषभानु की किशोरी है।
मंद मुसिक्यावैं राग नए नए गावैं
बहु बाजन बजावैं लै उड़ावै रंग झोरी हैं।
लाल बलवीर बाढ़ी मदन उमंग अंग
धाई कहि होरी लोक हू की लाज तोरी है।
करैं वरजोरी मुख मींजत हैं रोरी
धूम मांची चहुँ ओरी आज बरसाने होरी है।

राधा शतक में कवि ने राधे जू के सौन्दर्य, वैभव-विलास और विभिन्न लीलाओं का वर्णन किया है एवं महारानी राधे जू से सदैव दासी भाव से चरण कमल सेवा प्रदान करने की प्रार्थना की है।

कैकी जौ बनावै तो बनैयौ वनराज जू कौ
कूकि कूकि नाच नाच सुजस सुनाऊँ में।
लता द्रुम वेली रंगरेली जो करौ तो करौ
रावरे ही अंगन पै पुष्प झर लाऊँ मैं।
जो पै रज रेनुका बनावौ मन भावौ ये ही
तौ पै पद पंकजन सीस पै धराऊँ मैं।
ये ही वर पाऊँ ललचाऊँ सुख साधे राधे
वास दै निकुञ्जन कौं तेरौ ही कहाऊँ मैं।

रसखान की सी भाव-विह्वलता, प्रेम-तरङ्गिणी और भक्ति द्रष्टव्य हैं। प्रिया कौ सिख नख में राधाजी के शिख से नख तक का वर्णन और नख सिख में नख से प्रारम्भ कर शिख तक का वर्णन है—

चामी कर चौकी में प्रगट जोति हीरन की
कैधौं मन बैठक अनूप लाल जी की है।
कैधौं छीर नंदन प्रघट अष्टमी कौ नीकौ
सीतल करन हेर द्रष्ट सबही की है।
लाल बलवीर उर करत विचार चारु
सुखमा अपार उपमा की दुति फीकी है।
रंभा हू रती की है न रमा रमनी की
ऐसी राजत विशाल भाल कीरति लली की है।

प्रेम पचासिका में गोपियों का भगवान कृष्ण के दाम्पत्य प्रेम का सरस वर्णन है। लाल बलवीर को गोपियों का स्वरूप श्रीमद्भागवत और सूर की गोपियों से अनुप्राणित हैं। वे सभी कुल, लोक, की मर्यादा तोड़ कृष्ण-मिलन के लिए व्याकुल हैं—

मुसिक्याय कै मो मन मोह लियौ
तब तैं ग्रह काज सुहावैं नहीं।
बलवीर दोऊ कर जोरि कहैं
विनती हमरी चित लागें नहीं।
यह माधुरी मूरति एहो सुजान
कैभी हसि-हरि दिखावैं नहीं।
अंखियां यह साँवरे रंग रंगीं
रंग दूसरो और चढ़ावैं नहीं।

यह भाव-स्थिति कवि को घनानन्द, रसखान, रसलीन आदि रीति मुक्त कवियों की कोटि में सम्मिलित कर देती है।

मान पचीसी में गोपियों का भगवान कृष्ण से मान, कृष्ण का गोपियों को मनाना ही मुख्य कथा वस्तु है।

श्री मद्भागवत के दशम स्कन्ध के आधार पर कवि ने भगवान कृष्ण की विभिन्न लीलाओं का वर्णन किया है। स्फुट काव्य में बालकृष्ण का रूप वर्णन, गोपी उद्धव संवाद, विभिन्न ऋतुओं का वर्णन, प्रिया प्रीतम का रूप वर्णन वन-विहार, होरी, साँझी, स्वप्न-दर्शन, नायिका-वर्णन, देवी देवताओं की स्तुति, मन-शिक्षा आदि समाविष्ट हैं। समग्र बलवीर ग्रन्थावली में एक हजार से भी अधिक छन्द हैं।

स्फुट काव्य से उदाहरण

माता जू सौं हँसि कर कहत कन्हैया लाल
माखन और मिसरी री मोहि अति भावै है।

और देत मेवा पकवान पूजा पापरी कौं
सेंवरी लठोर गूँझा नाहीं रुचि आवै है
लाल बलवीर जू के तोतरे वचन सुनि
दौर हँसि लाड़ले कौं कंठसौं लगावै है।
हिये सुख पावै मुसिक्यावै छवि हेरि हेरि
बेर बेर लै लै मुख माँहि सौं खवावै है।

लाल बलवीर के काव्य की भाषा ब्रज है। कहीं-कहीं ब्रज-भाषा के मध्य उर्दू शब्दावलि भी सुशोभित है। सङ्गीतात्मकता और ध्वन्यात्मकता उनकी भाषा के प्रमुख गुण हैं। बादल, बिजली, मयूर आदि की ध्वनियों का अनुसरण प्रस्तुत किया गया है।

केकि कूकि कूकि कैं करेजा करें टूक टूक
टूक टूक दादुर दुखारे प्रान खावैं री।
सूक सूक पिय बिन पिंजर भये शरीर
पीय पीय बैन पापी पपिया सुनावैं री।
लाल बलवीर विन ढरें नैन नीर वीर
विरहा मरोरन तें कौन लै बचावैं री।
कछु न सुहावै मोहि मदन जरावैं आली,
देखि घन श्याम घनश्याम याद आवै री।

अलङ्कारों के अनुचित प्रयोगों से भाषा बोझिल नहीं है। उपमा, अनुप्रास, यमक, श्लेष आदि स्वाभाविक अलंकारों का प्रयोग है। शृङ्गार और शान्त प्रमुख रस हैं। कवि कई भाषाओं के ज्ञाता थे। पंजाबी, मारवाड़ी, बंगला आदि भाषा के छन्द भी लिखे हैं। इस प्रकार लाल बलवीर ब्रज-साहित्य की वह अमूल्य निधि हैं जो संवत १९७६ विक्रमी में विलुप्त हो गई।

* * *

❀ ब्रज राष्ट्र गीत ❀

(श्री बालमुकुन्द चतुर्वेदी मथुरा)

त्रिभुवन भाल मुकुट मनि हीरा, बन्दौं भूमि कन्हैया की।
ब्रजबानी अमृत रस सानी बेनु सुधा बरसैया की।
लता पता रज गिरि गोवर्धन, श्री यमुना की धारा।
गोपी गोप ग्वारिया गोधन, उच्छव मोद अपारा।
दूध दही रस गोरस टैंटी, माखन खीर खवैया की–बन्दौ०
कुहकत मोर श्याम घन बरसत, लहरत ताल तमाल।
कुंज कुंज में राधा झाँके, कदम कदम गोपाल।
देत 'मुकुन्द' अमर वानी, युग युग संस्कृती जगैया की–बन्दौ०

●

पत्र व्यवहार--

ब्रज भारती के प्रति

नानक नगर, मथुरा।
२-३-६७

स्वनाम धन्य बाबू जी,

'ब्रज भारती' के अंक २ और ३ प्राप्त हुए। आपके इस स्नेह का ऋण धन्यवाद शब्द द्वारा चुकाने का प्रयत्न करना मैं धृष्टता समझता हूँ। इसे तो यावज्जीवन अनुभव मात्र किया जा सकता है। यह हिन्दी जगत् का सौभाग्यही कहा जायेगा कि 'ब्रज-भारती' को आपका कुशल सम्पादकत्व प्राप्त हो सका है। वस्तुतः 'ब्रज-भारती' तो बहुत पहले से ही अपने संरक्षण हेतु आपका श्रय ढूँढ़ रही थी। इस दिशा में आपके योगदान का अभाव भी खटक रहा था। अस्तु, मुझे आशा है कि अब ब्रज साहित्य मण्डल आपकी अविस्मरणीय एवं सुखद छत्र-छाया में नवीन उल्लाससे सक्रिय हो उठेगा। हमारे गौरव गर्भित उज्जवल अतीत का अमरत्व यदि आज कहीं सुरक्षित है तो वह केवल ब्रज साहित्य में ही। यह बात दूसरी है कि दुर्भाग्य से यह सम्पूर्ण साहित्य प्रकाश में नहीं आ सका।

मुझे विश्वास है कि स्वसंस्कृति के प्रति आपकी अटूट आस्था के फलस्वरूप ब्रज-साहित्य-प्रेमियों को नव चेतना प्राप्त हो सकेगी। ब्रज-मण्डल, ब्रज-लोक, ब्रज-भूमि एवं ब्रज-जन-जीवन के मनस्तत्वों का गौरव सर्व साधारण को सुलभ हो सकेगा। आज युग की प्रवल माँग है कि अपनी इस बिखरी हुई निधि को एकत्र करके उसके अपादानों को वर्तमान के तराजू से तौला जाय। ब्रज-भाषा के बहुमूल्य हस्तलिखित ग्रन्थ तो दिन प्रति दिन लुप्त होते जा रहे हैं किन्तु उसके प्राचीन प्रकाशित ग्रन्थ भी यत्र-तत्र विक्षत रूप में देखने को मिलते हैं। वस्तों में बँधे हुये अमूल्य ग्रन्थों में विभिन्न जातीय कीड़े-मकोड़ों का परिवार ही पोषित हो रहा है। अस्तु, ऐसे गौरव ग्रन्थों के भी लुप्त होने की शंका बनी हुई है। कहना न होगा कि ब्रज की विभूतियों का अधिकांश प्राचीन पत्र-पत्रिकाओं की संचिकाओं में बिखरा हुआ है। अस्तु, उसका संकलन एवं सम्पादन भाषा प्रेमियों की पुकार है।

मैंने आपकी पत्रिका के कथित दोनों अङ्कों को आद्योपान्त पढ़ा है। प्रत्येक लेख में नवीन आनन्दानुभूति प्राप्त हुई। सम्पादकीय स्तम्भ तो सर्वाधिक रोचक है। वह यदि एक ओर पाठकों के समक्ष व्यापक भाव-भूमि प्रस्तुत करता है तो दूसरी ओर सम्पादक महोदय के गम्भीर अध्ययन एवं सूक्ष्म पर्यवेक्षण का परिचय भी। ऐसा ज्ञात होने लगता है कि सम्पादक के नेत्र सब कुछ देखते हैं, हृदय उन्हें ग्रहण करता चलता है और उनका मस्तिष्क चिन्तन हेतु आतुर है।

सामग्री संचयन तथा वितरण दोनों पक्षों का सुन्दर निर्वाह इस पत्रिका की अपनी विशेषता है। सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, ऐतिहासिक, साहित्यिक आदि विभिन्न विषयक खोज पूर्ण सामग्री का चयन जहाँ जिज्ञासु पाठकों की भूख को शान्त करने में समर्थ है वहाँ इतिहास के

ढांचों का नव निर्माण करने में भी । पत्रिका में प्राय: गम्भीर विषयों का विवेचन अधिक होने के कारण चंचल पाठकों के मस्तिष्क का बोझिल हो जाना भी स्वाभाविक है। अस्तु, इस शिथिलता को दूर करने के लिए एक व्यंग्य-परिहास स्तम्भ इसमें जोड़ने का प्रयास निरर्थक नहीं होगा। ब्रज साहित्य का व्यंग्य व परिहास चिरकाल से ही जर्जरित जन जीवन में नव चेतना का संचार करता रहा है। इस दृष्टि से भी व्यंग्य-परिहास स्तम्भ आवश्यक प्रतीत होता है।

मुझे पूर्ण आशा है कि आपके कुशल नेतृत्व में ब्रज मण्डल एवं यह पत्रिका ब्रज के गौरव गर्भित अतीत के अमरत्व का संरक्षण करने में सफल हो सकेगी।

मेरी हार्दिक मंगल कामनाएँ आपकी पत्रिका एवं मण्डल के साथ हैं।

भवदीय—

केदार दत्त तत्राड़ी

हिन्दी सम्वर्द्धिनी योजना के प्रति दो पत्र

(१)

मान्यवर श्री वृन्दावनदास जी,

जय ब्रजेश्वर !

'ब्रज-भारती' (वर्ष २०, अंक ३) का वर्तमान अंक-स्वरूप देखकर परम प्रसन्नता हुई। सम्पादक तथा लेखक के रूप में आपने उसमें पर्याप्त निष्ठा और परिश्रम से कार्य किया है। एतदर्थ मेरी हार्दिक बधाई स्वीकर करें।

ब्रजभाषी क्षेत्र की सांस्कृतिक, व्यवसायिक एवं कृषि विषयक शब्दावली तथा लोकोक्तियों के संग्रह के लिए आपने जो हिन्दी-संवर्द्धिनी योजना चलायी है, उससे निस्सन्देह हमारी राष्ट्र भाषा का भण्डार समृद्ध होगा। इस योजना के सम्बन्ध में मैं आपसे यहाँ निवेदन करता हूँ कि 'ब्रज-शब्दावली' पर मेरा एक वृहत् शोध-प्रबन्ध 'कृषक जीवन सम्बन्धी ब्रजभाषा-शब्दावली' भाग १ व २, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद से प्रकाशित हो चुका है। इसका मूल्य ३२ रु. ५० पै. है। उत्तर प्रदेश सरकार, लखनऊ की हिन्दी समिति से उस पर ग्यारह सौ रुपयों का पुरुस्कार भी प्रदान किया गया था। क्या 'ब्रज-साहित्य-मण्डल के पुस्तकालय में उसकी प्रतियाँ हैं ? यदि न हों तो कृपया मँगाकर अनुगृहीत करें।

मैं उक्त पुस्तक की प्रतियों को मँगाने के लिये इसलिये आग्रह कर रहा हूँ कि आप उस ग्रन्थ के अवलोकन के उपरान्त यह निर्णय सुगमता से कर सकेंगे कि 'ब्रज-भारती' के लिए जो ब्रजभाषा-शब्दावली प्रकाशनार्थ प्राप्त होती है, उसमें कितनी मौलिक एवं नवीन है ? हमारा कार्य साहित्य (परिनिष्ठित साहित्य या लोकसाहित्य) को आगे बढ़ाने का है, न कि पिष्टपेषण का।

ब्रजभाषा-शब्दावली के समानान्तर गुजराती और राजस्थानी की शब्दावली भी संगृहीत करायी जाये तो राष्ट्रीय स्तर पर बहुत महत्वपूर्ण कार्य होगा। कुछ कर्मठ युवकों को आप प्रोत्साहित भी कर सकते हैं। आप में सारस्वत प्रेरणा जगाने की शक्ति और क्षमता है। जिस दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास में हिन्दी-निबन्ध-प्रतियोगिता के लिये आपने दो पुरस्कार दिये हैं, उसमें मैं भी गत दो वर्ष सेवा कार्य कर चुका हूँ। वहाँ हिन्दी-स्नातकोत्तर अध्ययन एवं अनुसंधान विभाग खुला था। स्व० श्री लालबहादुर शास्त्री ने मुझे उसका अध्यक्ष बनाकर भेजा था। दैव के दुर्विपाक से वे स्वर्गगत हुए। मद्रास की आर्द्र जलवायु से मेरे शरीर में भी पीड़ा रोग हो गया। अतः वहाँ से वापस आना पड़ा।

प्रारम्भ में ब्रज साहित्य मण्डल से मेरा बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध था। मेरे श्रद्धेय गुरुवर स्व० वासुदेव शरण जी अग्रवाल भी उसके कार्य-कलापों में बड़ी रुचि लेते थे। उनकी ही प्रेरणा से मैंने पी० एच० डी० उपाधि के लिये ब्रज-शब्दावली पर शोध-कार्य किया था। उस ग्रन्थ की प्रशंसा भारत, यूरोप, अमेरीका आदि के मूर्धन्य विद्वानों ने मुक्तकण्ठ से की है। डा० आर० एल० टर्नर तथा स्व० डा० वासुदेव शरण अग्रवाल ने तो उसे ग्रियर्सन के ग्रन्थ से भी इक्कीस बताया है। यदि इसमें उनकी भावुकता भी मान लूँ तो इतना फिर भी निवेदन कर सकता हूँ कि 'कृषक जीवन-सम्बन्धी ब्रजभाषा-शब्दावली' ग्रन्थ मेरे सात वर्ष के परिश्रम का मधुर परिणाम है। आप कृपया एक बार उसका अवलोकन अवश्य करें ताकि मेरे कथन की वास्तविकता या अतिरंजना का कुछ पता लग सके और यह भी मालूम हो कि एक भारतीय छात्र झोली-डंडा लेकर जनजीवन के द्वार-द्वार कैसा अलख जगा सकता है?

पुनश्च—मेरी दो पुस्तकें:—

(१) हिन्दी भाषा : अतीत और वर्तमान (प्रकाशक-विनोद पुस्तक मन्दिर, अस्पताल-मार्ग आगरा), (२) हिन्दी और उसकी उपभाषाओं का स्वरूप (प्रकाशक-हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन प्रयाग)

आशा है परमेश की दया से आप सपरिवार आनन्दपूर्वक हैं। नव वर्ष की बधाई एवं मंगलकामनाओं सहित,

आपका
अम्बाप्रसाद 'सुमन'

---

(२)

प्रिय श्री वृन्दावनदास जी,

सादर सप्रेम नमस्कार !

दिनाङ्क १८-१-६७ का कृपा पत्र पढ़कर परम प्रसन्नता हुई। आपकी सारस्वत विचार-धारा से मैं पूर्णतया सहमत हूँ। निःसन्देह हिन्दी हमारे सम्पूर्ण भारत की भाषा है। भारत की

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सभी क्षेत्रीय भाषाएँ समुन्नत बनें और अपनी आदान-प्रदान भावना से हिन्दी को समृद्ध बनाती चलें; यही तो हम सबका पावन कर्तव्य है।

आप ब्रज साहित्य मण्डल, मथुरा के पुस्तकालय के लिए मेरे पी० एच० डी० के शोध प्रबन्ध-कृषकजीवन सम्बन्धी ब्रजभाषा-शब्दावली भाग १ व २ (हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद) को मँगाना चाहते हैं इस समाचार से प्रसन्नता हुई। जहाँ तक मैं समझता हूँ, उक्त ग्रन्थ लखनऊ के किसी बड़े पुस्तक विक्रेता के यहाँ अवश्य मिल जायेगा, अन्यथा एकेडेमी वाले तो भेज ही देंगे।

आपने १०१) रु. का निबन्ध प्रतियोगिता-पुरस्कार मद्रास राज्य में हिन्दी-सेवा की दृष्टि से जो प्रदान किया है। उसका मैं हार्दिक अभिनन्दन करते हुये आपको बधाई देता हूँ। जिस समय मद्रास में हिन्दी के सम्बन्ध में आन्दोलन हुआथा, उस समय मैं मद्रास की दक्षिण भारत हिन्दी-प्रचार सभा के हिन्दी स्नातकोत्तर अध्ययन एवं अनुसंधान विभाग के अध्यक्षके रूपमें वहीं हिन्दी-सेवा-कार्य कर रहाथा, कुछ राजनीतिज्ञों ने भोली जनता को बहकाया था और यह प्रचार कियाथा कि हिन्दी तमिल के ऊपर आसन जमाना चाहती है, जबकि हिन्दी का तमिल से हार्दिक स्नेह है और बहुत-सी शब्द-सम्पत्ति तमिल से लेकर हिन्दी और उसकी उपभाषाएँ समृद्ध बन रही हैं। नीर, धमिल्ल, खौंया, पिल्ला आदि हिन्दी में ऐसे शब्द हैं जो द्रविड़ परिवार की भाषाओं से संस्कृत और हिन्दी ने ग्रहण किये हैं। हिन्दी के भक्ति-साहित्य को तो मूल प्रेरणा दक्षिण से ही मिली थी।

जिस प्रकार गंगा की सहायक नदियाँ बंगाल प्रदेश-प्रवाहिनी गंगानदी को विशालता प्रदान करती हैं, ठीक उसी प्रकार भारत की सभी भाषाएँ राष्ट्र हिन्द की हिन्दी को विशाल बनायेंगी। ब्रज भाषा की शब्दसंवर्द्धिनी योजना भी हिन्दी के भण्डार को निश्चित रूपेण समृद्ध बनाएगी। आपका अनुष्ठान निश्चित रूप से राष्ट्र भाषा हिन्दी के लिये कल्याणकारी सिद्ध होगा। किन्तु योजना को सच्चे तथा मौलिक रूप में आगे बढ़ाना चाहिए। डा० धीरेन्द्र जी वर्मा ने जितना क्षेत्र ब्रजभाषा का माना है, उस सम्पूर्ण क्षेत्र से शब्द-सम्पत्ति का संग्रह योजनावद्ध रूप में होना चाहिये। शब्दों के साथ-साथ लोककहानियाँ, लोकगीत, लोकोक्ति और मुहावरों का भी संग्रह होना चाहिये। जिला अलीगढ़, मथुरा के आस-पास के क्षेत्र का तो मैंने सर्वेक्षण कर लिया है। कृषि, संस्कृति, समाज आदि से सम्बद्ध शब्दावली पूरे ब्रजभाषा-भाषी क्षेत्र से संकलित करायी जानी चाहिये। यही सच्ची जनपदीय कल्याणी योजना होगी।

मेरे प्रकाशित ग्रन्थ (ब्रज भाषा······) में कृषि, व्यवसाय और संस्कृति से सम्बद्ध शब्दावली, लोकोक्तियाँ, पहेलियाँ आदि संगृहीत हैं, उनके अर्थ भी दिए गए हैं। साथ-साथ चित्रों और रेखाचित्रों द्वारा शब्द सूचित वस्तु को स्पष्ट भी किया गया है। शब्द का अर्थ व्यक्त करने में चित्र बड़ा सहायक है। दोनों भागों में लगभग १५००० ब्रज भाषा शब्दों का अर्थपरक आख्यान किया गया है। ग्रन्थके संबंध में मैं स्वयं क्या लिखूँ? आप भाषा के मूर्द्धन्य एवं पारखी विद्वानों से पूँछें और राय मालूम करें। मैं तो अपनी पुस्तक को बढ़िया बताऊँगा ही, "निज कबित्त केहि लाग न नीका।"—(तुलसी)

डा० सुनीति कुमार चैटर्जी, डा० टर्नर, डा० धीरेन्द्रवर्मा, महापंडित राहुलसांकृत्यायन, डा० वासुदेवशरण अग्रवाल आदि ने तो ग्रन्थ के सम्बन्ध में अपनी शुरू सम्मितियाँ दी ही हैं। फिर

भी आपकी आज्ञा का पालन करने के लिये मैं यहाँ कुछ पंक्तियाँ उस आलोचना से उद्धत कर रहा हूँ जो "हिन्दीवार्षिकी" दिल्ली (सम्पा० डा० नगेन्द्र) सन् ६१ में प्रकाशित हुई थी। ग्रन्थ के सम्बन्ध में यह प्रकाशित हुआ था—

"डा० अम्बाप्रसाद 'सुमन' का ग्रन्थ 'कृषकजीवन सम्बन्धी ब्रजभाषा शब्दावली' ब्रज-जीवन की अनोखी झाँकी उपस्थित करता है। यह एक प्रकार से ब्रज के जनपदीय जीवन का विश्वकोश है। क्या सांस्कृतिक, क्या समाजिक, क्या औद्योगिक; जीवन के सभी क्षेत्रों में प्रयुक्त शब्द-समूह का हिन्दी में इससे सुन्दर एवं सर्वांगपूर्ण संकलन एवं सम्पादन नहीं हुआ है। ब्रजप्रदेश भारतीय साहित्य एवं संस्कृति दोनों का ही मुख्य केन्द्र रहा है। इसीलिए वहाँ का जनजीवन भी बड़ा सम्पन्न रहा है। ब्रजभाषा की जो जनपदीय शब्दावली 'सुमन' जी के ग्रन्थों के माध्यम से सुरक्षित हो सकी है, उसके लिये भारतीय साहित्य उनका सदा ऋणी रहेगा। भारतीय भाषाओं के तुलनात्मक अध्ययन, विभिन्न जनपदों के सांस्कृतिक अध्ययन एवं कृषकजीवन के सर्वांगपूर्ण अध्ययन का 'सुमन' जी ने द्वार खोल दिया है। वैदिक काल से जो हमारी भाषा संस्कृति की अटूट धारा प्रवाहित हो रही है, उसकी झाँकी ब्रजजीवन के माध्यम से—ब्रज शब्दावली के माध्यम से डा० सुमन ने हमें करायी है। क्या ध्वनि-विकास, क्या पदविकास, क्या अर्थ विकास, भाषाविज्ञान के सभी अङ्गों.उपांगों के वैज्ञानिक अध्ययन के लिये – विशेषत: ब्रजभाषा के लिये—यह शोध कार्य अद्वितीय कोश है और रहेगा।"

("हिन्दीवार्षिकी, सन् १९६१, संपादक डा० नगेन्द्र, भारतीय साहित्य मन्दिर, दिल्ली, पृष्ठ २६५)

मैं समझता हूँ आपको ग्रन्थ की विषयप्रतिपादन–शैली और विषय–क्षेत्र का पता कुछ लग गया होगा। अधिक क्या निवेदन करूँ? आप तो स्वयं ब्रजवासी हैं और मर्मज्ञ भी। ग्रन्थ-लेखन में मेरा कुछ नहीं, वस्तुत: सब कुछ स्व० श्रद्धेय डा० वासुदेवशरण जी अग्रवाल (मेरे पूज्य गुरुवर) के आशीर्वाद का ही फल है। कभी मथुरा आने पर विस्तार से वार्तालाप करूँगा।

आप मेरे इस पत्र को तथा पूर्व प्रेषित पत्र को 'ब्रजभारती' में प्रकाशित कर सकते हैं। हर्ष है आप सनन्द हैं। एक राह के राही मिलने पर परमानन्द की अनुभूति किया करते हैं। पत्रोत्तर के लिये हार्दिक धन्यवाद! सादर, सप्रेम,

आपका—
अम्बाप्रसाद 'सुमन'

साहित्य-सौरभ [समीक्षा]

(श्री वृन्दावनदास)

साहित्य सौरभ में स्वर्गीय व्रजमोहन जी वर्मा के ३७ उत्तम निबन्धों का संग्रह है। इस पुस्तक के सम्पादक हैं हिन्दी जगत के जाने पूछे महारथी श्री बनारसीदासजी चतुर्वेदी। पुस्तक की सामग्री को चतुर्वेदी जी ने इतना सजाया और सँवारा है कि पुस्तक की पठनीयता और रोचकता को चार चाँद लग गये हैं। चतुर्वेदी जी के कुशल हस्त का स्पर्श पुस्तक के प्रत्येक अङ्ग पर स्पष्ट रूप से परिलक्षित है। विस्मृत अथवा उपेक्षित कवियों, साहित्यिकों और कलाकारों की कीतिरक्षा के लिये प्रयत्नशील रहना पं० बनारसीदास जी के स्वभाव का एक अङ्ग बन गया है। निर्धन के वन गिरधारी की भाँति वे उपेक्षित साहित्यिकों के कृतित्व और व्यक्तित्व को प्रकाश में लाने के लिए सदैव तत्पर रहते हैं। न जाने कितनों के ऊपर उन्होंने निबन्ध लिखे, कितनों के अनाश्रित परिवारों को सहायता दिलवाई और कितनोंके साहित्यिक श्राद्ध किये। प्रस्तुत पुस्तक भी चतुर्वेदी जी की उसी लगन और परोपकारी प्रवृत्ति का मधुर परिणाम है।

प्रस्तुत पुस्तक की अधिकांश सामग्री पं० बनारसीदास जी के संग्रहालय से ही इकट्ठी की गई है। कुछ मित्रों ने भी सामग्री को एकत्रित करने में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है। कुछ लेख माधुरी की पुरानी फाइलों से संग्रहीत हैं। एक लेख द्विवेदी अभिनन्दन ग्रन्थ से भी लिया गया है।

स्वर्गीय वर्मा जी का जीवन-वृत्त किसी उपन्यास से कम रोमांचकारी नहीं है। छात्रावस्था में ही उन्हें रोगों ने आ घेरा जिनसे कि वे आमरण आक्रान्त रहे। दशवीं कक्षा में उत्तीर्ण होने के बाद उनके कूल्हों में दर्द होने लगा और थोड़े दिनों में वह रोग एक असह्य वेदना के रूप में परिणत हो गया। डाक्टरों ने यक्ष्मा का निदान किया जिसके फलस्वरूप उनका निम्नांग अठारह महीने तक बाँध कर रक्खा गया। इस चिकित्सा से यक्ष्मा के कीटाणुओं का तो प्रसार अवरुद्ध हो गया परन्तु उनके पांव कुछ मुड़ से गये। परिणामतः उन्हें बैसाखियों के सहारे चलना पड़ा। जिन दिनों पं० बनारसीदास जी चतुर्वेदी 'विशाल भारत' के संपादक थे, स्वर्गीय श्री कृष्ण बलदेव वर्मा जो उस समय के एक प्रकाण्ड पण्डित और काव्य-मर्मज्ञ थे व्रजमोहन वर्मा को उनके पास लाये। उस डेढ़ टाँग के आदमी को देखकर पहिले तो चतुर्वेदी जी के मन में शङ्का हुई कि यह निर्बलाङ्ग मनुष्य किस प्रकार साहित्यिक श्रम के कार्य को कर सकेगा परन्तु बहुत शीघ्र उनकी वह भ्रान्ति दूर हो गई और वर्मा जी की प्रतिभा ने उन्हें अत्यन्त प्रभावित कर दिया। फिर क्या था विशाल भारत का ७५ प्रतिशत भार उनके ऊपर आ गया।

पं० बनारसीदास जी से साक्षात्कार होने के पूर्व से ही वर्मा जी अनेक पत्रों में डा० चतुष्पाद के नाम से हास्यव्यङ्ग पूर्ण लेख और कविता आदि लिखा करते थे। उनकी जोरदार भाषा ने डा० चतुष्पाद के नाम को लेखक-जगत में विख्यात बनाना आरम्भ कर दिया था 'विशाल भारत' में काम करते-करते उनकी प्रतिभा का और निखार हुआ। बीमारी की हालत में जो उन्होंने पड़े-

पड़े हजारों पुस्तकें पढ़ डाली थीं उनके द्वारा अर्जित ज्ञान को 'विशालभारत' के कार्य ने विकसित होने का अवसर प्रदान किया। उनमें ईश्वर प्रदत्त प्रतिभा और गजब की स्मरण शक्ति थी। जो एक दफा पढ़ लेते हृदयङ्गम हो जाता था। वर्मा जी के साहित्यिक कार्य करने की शैली बाबू श्याम सुन्दर जी खत्री के शब्दों में बड़ी सुन्दरता से चित्रित है। श्री खत्री ने लिखा है, "किसी विषय-विशेष पर लिखने से पूर्व वर्मा जी उसका अच्छी तरह अध्ययन कर लेते थे। लेख लिखकर रख देते थे और समय मिलने पर उसमें काफी संशोधन करने के पश्चात् ही उसे प्रकाशित करवाते थे। रात-रात भर जाग कर लिखना उनके लिए कठिन न था। यही कारण है कि उनके निबन्ध ठोस और वजनदार हैं। भाषा सजीव और शैली निराली। उनका चरित्र रेखाङ्कन इतना अनूठा और जोरदार है कि उसे देखकर ए० जी० गार्डिनर की शैली का स्मरण हो आता है।" उनके व्यक्तित्व पर भी श्री खत्री की निम्न लिखित पंक्तियाँ बड़ी महत्वपूर्ण हैं, "अनेकों कवि, साहित्यिक, पत्रकार, विद्वान्, कलाकर और नेता उनके मित्र परिचित या प्रशंसक थे। उनकी विद्वत्ता, मिलनसारी, चुहलबाजी, और परहिताकांक्षा की मनोवृत्ति ही ऐसी थी कि जो एक बार उनके सम्पर्क में आ जाता वह उन्हें अपना मान लेता था।"

वर्माजी का स्वर्गवास हुये २८ वर्ष व्यतीत हो गये। २८ वर्ष बाद यह ग्रन्थ उनके साहित्यिक श्राद्ध के रूप में प्रगट हुआ। वर्मा जी का साहित्यिक जीवन केवल ९ वर्ष ही रहा लेकिन इस अल्प काल में ही वे एक अत्यन्त प्रतिभाशाली लेखक के रूप में हिन्दी जगत के सामने आये। आचार्य पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी ने माधुरी में प्रकाशित उनके एक लेख पर मोहित होकर श्री बनारसीदास जी चतुर्वेदी को लिखा था कि आप बड़े भाग्यशाली हैं जो आपको ऐसा योग्य सहायक मिला। यह उनकी योग्यता ही थी जिसके कारण चतुर्वेदी जी ने विशाल भारत का सारा काम उनके ऊपर छोड़ दिया था। चतुर्वेदी जी का विश्वास था कि वर्मा जी के सुपुर्द जो कार्य किया जायगा वे उसे उतनी ही क्षमता से संपादित करेंगे जितनी से कि वे उसे स्वयम् करते।

वर्मा जी के जीवन के सम्बन्ध में श्री बनारसीदास जी ने 'भूमिका' में और श्री श्यामसुन्दर खत्री ने 'निवेदन' शीर्षक के अन्तर्गत कुछ विशेष घटनाओं का उल्लेख किया है। दोनों वृत्तान्तों में घटनाएँ कुछ एक सी हैं। वर्मा जी की विनोदप्रियता के नमूने, सास बहू का मामला, वर्मा जी की बर्मा यात्रा, उनके अविवाहित होने से उत्पन्न हास्य-व्यङ्ग का एक वातावरण दोनों वर्णनों में करीब-करीब एक ही है।

पुस्तक को पढ़ कर हम तो इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि वर्मा जी एक बहुत ही सफल जीवनी-लेखक थे। इस पुस्तक के अधिकांश निबन्ध ऐसे हैं जो किसी न किसी विशिष्ट पुरुष के व्यक्तित्व अथवा कृतित्व से सम्बन्धित हैं। वर्मा जी की भाषा जोरदार' मुहाविरेदार और अत्यन्त सजीव है। उसका प्रवाह वैसा ही है जैसा कि उनके साहित्यिक गुरु आदरणीय बनारसीदास जी चतुर्वेदी की भाषा का है। चतुर्वेदी जी चरित्ररेखाङ्कन के लिये जग प्रसिद्ध हैं, वर्मा जी ने कदाचित् उन्हीं के चरणों में बैठकर उनके इस गुण को प्रभूत मात्रा में आत्मसात् कर लिया था। वर्मा जी की भाषा इतनी प्रवाहमयी और आकर्षकहै, उनके घटनाक्रमों का वर्णन इतना व्यवस्थित और मनोहारी है कि निबन्ध को पढ़ना शुरू करने पर जब तक वह पूरा न पढ़ लिया जाय छोड़ने को जी नहीं करता।

वर्मा जी ने कविता भी बहुत लिखी। वे तो एक नोटबुक रखते थे और ऐसा कौनसा दिन जाता जिस दिन वे दो चार कविता उसमें अङ्कित न कर देते। उनकी कविताएँ जिनके कुछ नमूने प्रस्तुत ग्रन्थ में भी उपलब्ध हैं हास्यरस और व्यङ्ग से परिपूर्ण होती थीं। हमारी दृष्टि में इस पुस्तक में 'अदृश्य घाव' उनका सर्वश्रेष्ठ निबन्ध है। अनुवाद होते हुये भी वह एक दम मौलिक सा प्रतीत होता है। वर्मा जी ने कहानी को अपनी भाषा और अपने भावों में अभिव्यक्त किया है। उत्कृष्टता के लिहाज से दूसरा नम्बर हम ग्यारहवें निबन्ध 'पति की खोज' को देते हैं। 'हमारा पेशवा', 'हमारा सेनापति', 'स्वर्गीय पं० ब्रज नारायण चकबस्त' ये तीन निबन्ध भी और निबन्धों से बढ़िया हैं। इस नम्बरबाज़ी का यह अर्थ नहीं कि उनके अन्य लेख घटिया हैं, कदापि नहीं। वर्मा जी के सभी लेख उत्कृष्ट हैं। इस उत्कृष्ट साहित्य को विस्मृति के गर्त में से निकाल कर लाने के लिये श्री बनारसीदास जी और प्रकाशित करने के लिये ज्ञानमण्डल वाराणसी हिन्दी जगत के धन्यवादार्ह हैं।

वर्मा जी उर्दू के भी अधिक ज्ञाता थे, यही कारण है कि वे अगाध शब्द भण्डार के स्वामी थे। 'उर्दू कविता में इस्लाह' उनका अत्यन्त पाण्डित्यपूर्ण लेख है, उसे पढ़ कर यही कहा जायगा कि वर्मा जी आलिम फाजिल भी थे। सर्वतोमुखी प्रतिभा वाले व्यक्ति की नाईं उनकी चित्रकला में भी अभेद्य गति थी। इसके बड़े मनोरञ्जक दृष्टान्त पुस्तक में उपलब्ध हैं।

पुस्तक के अन्त में चार परिशिष्ट हैं। उन्होंने निस्संदेह पुस्तक की उपयोगिता में वृद्धि की है। परिशिष्टों में वर्मा जी के जीवन सम्बन्धी अलभ्य सामग्री है। परिशिष्ट १ में वर्मा जी के कुछ पत्रों का संग्रह है और उनके अन्तिम पत्र का ब्लाक है। परिशिष्ट २ में वर्मा जी के प्रति कुछ श्रद्धांजलियाँ हैं जिनमें कुछ पद्यात्मक और कुछ गद्यात्मक हैं। इसी परिशिष्ट में सर्वश्री श्रीपति पाण्डेय, रामधन राम और श्रीराम शर्मा के द्वारा लिखित वर्मा जी के कुछ संस्मरण हैं जिनसे वर्मा जी के व्यक्तित्व की शालीनता का पता चलता है। परिशिष्ट ३ में कोई खास बात नहीं है। परिशिष्ट ४ में स्वर्गीय कृष्णबल्देवजी वर्मा के सम्बन्ध में एक बहुत ही सुन्दर और मार्मिक लेख श्री बनारसीदास जी चतुर्वेदी का है। इसी परिशिष्ट में स्वर्गीय कृष्ण बल्देव जी वर्मा पर संस्मरणात्मक दो एक लेख और हैं और इस तरह यह पुस्तक समाप्त होती है।

प्रस्तुत पुस्तक बहुत ही अच्छी बन पड़ी है। अनेक बीमारियों से मारे हुए, बैसाखियों के सहारे चलने वाले अपाहिज मनुष्य के अन्दर ऐसा प्रखर मस्तिष्क, जीवन की हास्यमय फिलासफी और अटूट मानवता भरी पड़ी है इसका कारण चतुर्वेदी जी के शब्दों में उस मनुष्य की दृढ़ इच्छा शक्ति ही हो सकती है जिसने कि समस्त दुर्बलताओं पर विजय प्राप्त की। पुस्तक का विवरण इस प्रकार है।

साहित्य सौरभ : लेखक श्री ब्रजमोहन वर्मा, सम्पादक श्री बनारसीदास चतुर्वेदी। मुद्रक और प्रकाशक ज्ञान मण्डल लिमिटेड, वाराणसी। प्रथम संस्करण सम्वत् २०२३ मूल्य रु. १२.५० पैसे। पृष्ठ संख्या ३२० के लगभग। जिल्द और अति सुन्दर आवरण से युक्त।

भारतीय लोक कला मंडल द्वारा प्रकाशित ग्रन्थ

१. **लोक-कला निबन्धावली भाग १ व २** :—राजस्थानी लोक कलाओं तथा मध्य भारतीय आदिवासियों की कला-संस्कृतियों से सम्बन्धित अधिकारी विद्वानों द्वारा खोज पूर्ण सामग्री, (अप्राप्य)

२. **लोक-कला निबन्धावली, भाग ३** :—राजस्थानी लोक-कलाओं, लोक-गीतों, लोकानुकृतियों आदि से सम्बन्धित अधिकारी विद्वानों द्वारा प्रस्तुत खोज और अध्ययन-पूर्ण सामग्री, पृष्ठ ११० मूल्य ३) रुपया,

३. **लोक-कला निबन्धावली, भाग ४** :—लोक नाट्यों के विकासक्रम तथा राजस्थानी ख्यालों पर वैदुष्य पूर्ण निरूपण, पृष्ठ ९०, मूल्य ३) रुपया,

४. **राजस्थान के लोकानुरंजन** :—राजस्थानी लोक-जीवन में प्रचलित नृत्य और अभिनय आदि की खोज और अध्ययन पूर्ण सचित्र विवेचन, लेखक:—श्री देवीलाल सामर, सहायक श्री गींडाराम वर्मा, मूल्य १) ५० पैसे ।

५. **राजस्थान का लोक-संगीत** :—राजस्थानी लोक-संगीत का खोज और अध्ययनपूर्ण विवेचन, लेखक—श्री देवीलाल सामर, सहायक—श्री गींडाराम वर्मा, पृष्ठ १५२, मूल्य ३) रुपया,

६. **राजस्थानी लोक नृत्य**:—राजस्थानी लोक नृत्यों का अध्ययन पूर्ण सचित्र विवेचन, लेखक—श्री देवीलाल सामर, सहायक—श्री गींडाराम वर्मा पृष्ठ ७६, मूल्य २) रुपया,

७. **राजस्थानी लोकनाट्य** :—राजस्थान में प्रचलित लोक नाटकों का अध्ययनपूर्ण विवेचन, लेखक—श्री देवीलाल सामर, सहायक—श्री गींडाराम वर्मा, मूल्य २) रुपया,

८. **राजस्थानी लोकोत्सव** :—राजस्थान में प्रचलित त्यौहारों और उत्सवों का अध्ययन-पूर्ण विवेचन, लेखक—श्री गींडाराम वर्मा मूल्य २) रुपया,

९. **राजस्थान स्वर-लहरी, भाग १** :—राजस्थान में प्रचलित अत्यन्त लोक प्रिय ३२ पारिवारिक लोक गीतों का, उनकी स्वर लिपि एवं भावार्थ सहित, सरस संग्रह, पृष्ठ ११२, मूल्य ३) रुपया,

लोक रंग मंचीय कलाओं की अपने प्रकार की एक मात्र पत्रिका:—'लोक कला के ग्राहक बनिये। वार्षिक मूल्य ४) रुपया।

लोक कला के पुराने अंक भी प्राप्य। प्रति अंक ३)५० पैसे।

प्रकाशन विभाग

भारतीय लोक-कला मंडल,

उदयपुर, (राजस्थान)

१-हमारे जवानों के शौर्य ने शत्रु के मनसूबे धूल में मिला दिए।

२-हमारे यहाँ बने हथियारों के सामने अमरीकी हथियार कामयाब न हो सके।

३-हमें अपने को अन्नोत्पादन में भी आत्म निर्भर होना है।

४-अमरीका या अन्य देशों का मुँह ताकना धोखा दे सकता है।

देश का हर व्यक्ति राष्ट्र की इस सबसे बड़ी समस्या में अपना योग दे सकता है। जिला सहकारी बैङ्क में अपना धन आप जमा करें जहाँ वह पूर्ण सुरक्षित है, ब्याज दूसरे बैङ्कों से आपको ज्यादा मिलेगा और किसानों के अन्नोत्पादन के कार्य में आपके धन का उपयोग होगा।

जिला निवासियों के लिये हमारी शुभ कामनाओं के साथ हम आशा भी करते हैं कि आप अपने ही सहकारी बैंक को अपनाकर अपना तथा इस बैंक का और अपने राष्ट्र का सदैव हित करेंगे।

ब्याज की दरें

सेविंग खाता पर	४	प्रतिशत	वार्षिक
कौल डिपौजिट पर	३।।।	,,	,,
६ माह की अमानत पर	५।।	,,	,,
१ साल की अमानत पर	६।	,,	,,
२ साल की अमानत पर	६।।	,,	,,
३ साल की अमानत पर	६।।।	,,	,,
४ साल की अमानत पर	७	,,	,,
५ साल की अमानत पर	७।	,,	,,
७ साल की अमानत पर	७।।	,,	,,

मथुरा जिला सहकारी बैंक लि०, मथुरा

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अपनी सम्पूर्ण बचत आज ही

उत्तर प्रदेश कोअपरेटिव बैंक लिमिटेड

प्रधान कार्यालय लखनऊ में

जमा कर अपनी आर्थिक स्थिति सुदृढ़ कीजिये

उक्त बैंक सहकारी आन्दोलन के अन्तर्गत सरकारी साझेदारी तथा बैंकिंग संस्थान अधिनियम के अन्तर्गत सरकार द्वारा निरीक्षित एक मात्र एवं विश्वसनीय बैंकिंग संस्था है

शाखाएँ — आगरा, अल्मोड़ा, बरेली, फैजाबाद, डी० ए० वी० कालेज कानपुर, गोंडा, पीलीभीत, कानपुर, रामपुर, सीतापुर, वाराणसी।

क्षेत्रीय कार्यालय—आगरा, गोरखपुर, कानपुर, बरेली।

हमारी विशेषताएँ

१—राज्य की समस्त कृषि योजनाओं के लिए जिला एवं केन्द्रीय सहकारी बैंकों के माध्यम से आर्थिक सुविधाएँ प्रदान करना।

२—प्रत्येक प्रकार की बैंकिंग सुविधायें प्रदान करना।

३—अल्प सामयिक एवं मियादी अमानतें आकर्षक दरों पर स्वीकार करना।

आप भी राष्ट्र निर्माण योजनाओं की पूर्ति, उसकी स्मृद्धि के निमित्त अपना धन लगाकर सहयोग प्रदान कर राष्ट्र निर्माण में हाथ बटाएँ।

अन्य जानकारी

क्षेत्रीय अधिकारी, शाखा प्रबन्धक या मुख्य कार्यालय से प्राप्त कीजिये

गत ५ वर्षों में बैंक की प्रगति के कुछ आंकड़े

	३०—६—६०	३०—६—६५
१—पूँजी	२५४·७६ लाख	५३८·७६ लाख
२—अमानतें	७४७·४६ लाख	२०६०·०८ लाख
३—सहकारी संस्थाओं को ऋण दिया गया	१३०५·९५ लाख	३३३६·२५ लाख
४—लाभ	१६·०५ लाख	३७·०२ लाख

गङ्गासिह चूड़ामणि
आई० ए० एस०
अध्यक्ष

मथुरा सिंह
उपाध्यक्ष

ए० आर० खान
सामान्य प्रबन्धक

किसानों के लिये स्वर्ण अवसर

यानमार पावर टिलर

(पी० के० ए० २० एन० टी० ६५ के०)

(७-१०.५ अश्व शक्ति का)

प्रयोग कर

कृषि उत्पादन में अभूतपूर्व वृद्धि का महत्वपूर्ण साधन

छोटे किसान के लिए ट्रैक्टर जो संसार प्रसिद्ध १०.५ बी० हा० पा० यानमार डीजल इञ्जिन एवं निम्न उपयन्त्रों से युक्त है :–

न्यूमैटिक रब्बर ह्वील्स, राटार टिलर स्टैण्डर्ड टूल किठ माउन्टेड डीजेल इञ्जिन यानमार माडेल एन० टी० ६५ के० आयरन ह्वील्स वाटर फिल्ड राइडिंग लापरेट्स सेडल तथा न्यूमैटिक रीयर ह्वील एक्स्टेंशन ऐटरी तथा कवर, स्वायल हीपिंग बोर्ड लाइट इक्विपमैण्ट डायनेमों के साथ दो साइड राइडर टीम स्पेशल रौटरी ब्लेड्स, ड्रम के साथ, फोर्क राटार टाइन्स तथा दो स्टैग प्लाउ।

किसानों के कृषि सम्बन्धी प्रत्येक कार्य जुताई, हेंगाई, पटेला पानी निकालना व छिड़काब आदि।

विशेष जानकारी के लिये–कृपया सम्पर्क स्थापित करें :–

उत्तर प्रदेश

कोआपरेटिव फैडरेशन लिमिटेड,

६ कैंपर रोड, लखनऊ।

(उत्तर प्रदेश के लिये एकमात्र वितरक)

फोन नं० : २४८५२, २५८६४, २३५६३, २७७६०, २८०३३

ब्रज संस्कृति परिषद्,

प्रधान कार्यालय, मथुरा ।

१. ब्रज मण्डल के कुञ्ज-निकुंज, सर-सरोवर, घाट, तीर्थादि का पुनरुद्धार करने,

२. ब्रजभाषा साहित्य का अनुसन्धान, सम्वर्द्धन अभिरक्षण करने,

३. ब्रजभाषा के विद्वानों, मनीषियों, साहित्यकारों का सम्मान करने,

४. ब्रज संस्कृति के कलाकारों, संगीतज्ञों, चित्रकारों, गीतकारों को प्रश्रय देने,

५. ब्रजभाषा और संस्कृति का एक विशाल पुस्तकालय स्थापित करने तथा

६. कृषि के उन्नयन में योग देने

को

कृत संकल्प है ।

चकलेश्वर सिंह
प्रधान मन्त्री
ब्रज संस्कृति परिषद्, मथुरा ।

नवाब सिंह चौहान
अध्यक्ष
ब्रज संस्कृति परिषद, मथुरा ।

मुद्रक तथा प्रकाशक : श्री किशन प्रसाद जैन, संयुक्त मन्त्री, अखिल भारतीय ब्रज साहित्य मण्डल, मथुरा के लिए राष्ट्रीय प्रेस, डैम्पियर नगर, मथुरा में मुद्रित ।

राजकीय संग्रहालय पुस्तकालय
4000
8.2.71
Museum Library, Lucknow